ओ३म्

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं ।
भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

गृहस्थ सुधार

लेखक

श्री महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज

प्रकाशक :
वैदिक भक्ति साधन आश्रम
रोहतक (हरियाणा)

नौवां संस्करण अप्रैल १९८४ २२०० प्रतियां

मूल्य : ८.०० रुपये

मुद्रक : व्यवसायाध्यक्ष,
गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी मुद्रणालय,
हरिद्वार पि.को. २४९४०४

उपहार

सेवा में श्री······ ······

यह पुस्तक "गृहस्थ सुधार" सप्रेम तथा सादर
समर्पण है। पढ़ें, आचरण करें ताकि
अपका गृहस्थ जीवन सुखमय तथा
उन्नत हो

अवसर··············

स्थान··············

भेंटकर्ता···········

पता·············

तिथि·············

परामर्श

प्रत्येक विवाहित नर-नारी को विवाह से पूर्व गृहस्थ आश्रम प्रवेशिका और विवाह के पश्चात् इस पुस्तक का स्वाध्याय कई-कई बार करना चाहिये। तदनुकूल अपना आचरण बनाने से चरित्र की रक्षा हो सकती है। फैशनपरस्ती और विलासिता की सामग्री से जीवन बचाया जा सकता है।

देश और जाति को पतन से बचाया जा सकता है। भगवान करे यह बात पाठकों के दिल में समा जाये कि देश का सुधार बच्चों के हाथ में चरित्र बनाने वाली पुस्तकों के देने से ही हो सकता है। विलासिता-पूर्ण मनोहर कहानियों के पढ़ने से और सिनेमा के गन्दे गानों से कभी नहीं हो सकता।

वैदिक भक्ति साधन आश्रम, रोहतक

❀ ❀ ❀

निवेदन

स्वर्गीय श्री महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज आधुनिक युग के परम तपस्वी, कर्मठ योगी एवं वैदिक मिशनरी थे जिन्होंने अपना सारा जीवन गायत्री अनुष्ठान, वेद, यज्ञ तथा योग के प्रचार-प्रसार में लगा दिया। आपकी प्रेम भरी वाणी बड़ी कोमल, मधुर तथा सरल थी और लेखनी अत्यन्त प्रभावशाली। जटिल से जटिल तथा गूढ़ विषयों को महात्मा जी ने बड़ी सुगम तथा रोचक भाषा में सुलझाया है। यही कारण है कि सर्व साधारण ही नहीं, विद्वान भी आपकी रचनाओं का सम्मान पूर्वक अध्ययन करते हैं।

श्री महाराज जी १६-३-६७ ई० को ब्रह्मलोक सिधार गये हैं किन्तु उनका साहित्य आज भी हमारा पथ-प्रदर्शन कर रहा है। महाराज जी कृत लगभग ६ दर्जन पुस्तकों में आध्यात्मिक मार्ग का निरुपण किया गया है तथा हर पुस्तक के कई-कई संस्करण छप चुके हैं और मांग सदा बनी रहती है। इन पुस्तकों का मूल्य लगभग लागत मात्र रखा गया है ताकि सर्वसाधारण इससे अधिकाधिक लाभ उठा सकें। हमारा ध्येय धर्म-प्रचार है, धन कमाना नहीं।

अष्टम संस्करण श्री वेदव्रत गुप्ता के सहयोग से प्रभु आश्रित धर्मार्थ औषधालय के संचालक श्री लखपति शास्त्री ने औषधालय के कोष से सम्पूर्ण छपाई का खर्चा ५०००) वहन किया है। हम उनके इस पुनीत कार्य के लिए आभारी हैं।

—:o:—

प्रकाशक का धन्यवाद

गृहस्थ सुधार ग्रन्थ महाराज जी का एक अद्वितीय मार्गदर्शक ग्रन्थ है। जिसमें गृहस्थ की सम्पूर्ण मर्यादाओं को सरल भाषा में कहानी रूप में प्रश्नोत्तर सहित दर्शाया गया है। अनेकों परिवार अपना जीवन इसके स्वाध्याय से सफल कर चुके हैं। इसकी बढ़ती मांग को देखते हुए डिलाइट सेफ (कुतुब रोड तथा M. M. रोड) दिल्ली के संस्थापकों सर्वश्री वी. एम. भाटिया तथा श्री दर्शन कुमार कुक्रेजा ने अपने संस्थान के वार्षिक यज्ञ प्रथम अप्रैल के दिन अपने पुरोहित पं० लखपति शास्त्री की प्रार्थना पर इसे छपवाने में अपना सहयोग प्रदान किया। यह संस्थान अग्निहोत्री परिवार के श्रीमती शान्तिदेवी धर्मपत्नी श्री गणेशदास जी अग्निहोत्री के आशीर्वाद से यज्ञ-यज्ञादि में इतनी श्रद्धा रखता है कि भगवान की इस परिवार तथा संस्थान पर अपार कृपा है। उसी परिणामस्वरूप यह ग्रन्थ आपके हाथ में स्वाध्याय के लिए है इसके पठन-पाठन से नव-दम्पति अवश्यमेव गृहस्थ को स्वर्गमय बना सकेंगे। भगवान डिलाइट परिवार तथा अग्निहोत्री परिवार पर अपनी कृपा कर वरद हाथ रक्खें।

हितेच्छु
म. दयानन्द
अधिष्ठाता-वैदिक भक्ति साधन आश्रम, रोहतक

श्री पूज्य महात्मा प्रभु आश्रित जी की रचनायें

१ मनोबल	—	४-५०
२ जीवन उत्थान	—	०-४०
३ गायत्री कुसुमाँजलि सजिल्द	—	०-७५
४ एक अद्‌भुत किरण	—	०-५०
५ भाग्यवान गृहस्थी	—	०-५०
६ मतलब की बातें	—	०-७५
७ पावन यज्ञ प्रसाद	—	०-६५
८ स्वप्न गुरु तथा देवों का शाप	—	२-००
९ अध्यात्म सुधा	—	५-००
१० गायत्री रहस्य	—	८-००
११ यज्ञ रहस्य	—	७-००
१२ दुर्लभ वस्तु	—	०-४०
१३ पथ-प्रदर्शक	—	२-५०
१४ प्रभु का स्वरूप	—	३-००
१५ सेवा-धर्म	—	२-५०
१६ डरो वह बड़ा जबरदस्त है	—	२-००
१७ अमृत के तीन घूंट	—	०-७५
१८ प्रगति पथ	—	१-५०
१९ सन्ध्या सोपान	—	४-५०
२० उपदेश	—	२-५०
२१ कर्मभोग चक्र	—	७-००
२२ गृहस्थाश्रम प्रवेशिका	—	४-००
२३ व्रत अनुष्ठान प्रवचन	—	१-५०
२४ गृहस्थ—सुधार	—	८-००
२५ निर्गुण-सगुण उपासना	—	३-००

॥ ओ३म् ॥

दिवि धाऽइमं यज्ञमिमं यज्ञं दिवि धाः।
स्वाहाऽग्नये यज्ञियाय शं यजुर्भ्यः ॥

॥ यजु० ३८-११ ॥

पदार्थ :—हे स्त्री वा पुरुष ! तू (यजुर्भ्यः) यज्ञ कराने हारे वा यजुर्वेद के विभागों से (स्वाहा) सत्यक्रिया के साथ (अग्नये) (यज्ञियाय) यज्ञ कर्म के योग्य अग्नि के लिए (दिवि) सूर्य्यादि के प्रकाश में (इमम्) इस (यज्ञम्) संग करने योग्य गृहस्थाश्रम व्यवहार के उपयोगी यज्ञ को (शम्) सुखपूर्वक (धाः) धारण कर (दिवि) विज्ञान के प्रकाश में (इमम्) इस परमार्थ के साधक संन्यास आश्रम के उपयोगी (यज्ञम्) विद्वानों के संगरूप यज्ञ को सुखपूर्वक (धाः) धारण कर।

भावार्थ—जो स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य के साथ समग्र विद्यायुक्त उत्तम शिक्षा को प्राप्त होकर वेद-रीति से कर्मों का अनुष्ठान करें वे अतुल सुख को प्राप्त होवें ॥

हन्तो नु किमाससे प्रथमं रथं कृधि ।
उपमं वाजयु श्रवः ॥

ऋ० ८.८०-५ ॥

शब्दार्थ—(हन्तो) तो फिर (इन्द्र) हे इन्द्र ! तुम (नु) अब (किं) क्यों (आससे) बैठे हो ? (नः) हमारे (रथं) रथ को (प्रथमं) सबसे आगे, प्रथम स्थान पर (कृधि) कर दो (वाजयु) वाज (बल ज्ञान) चाहता हुआ (श्रवः) ऐश्वर्य तो (उपमं) तुम्हारे पास विद्यमान ही है ।

हरेक मनुष्य पूर्ण होने के लिए उत्पन्न हुआ है जो कार्य कोई भी एक मनुष्य कर चुका है वह मैं भी अवश्य कर सकता हूं । सर्व श्रेष्ठ बनाने के जो साधन है वह सब तुम्हारे पास विद्यमान हैं. मेरे लिए 'वाज को चाहता हुआ 'श्रवस्' तुम्हारे पास उपस्थित है । तुम यदि चाहो तो अपने 'श्रवस' द्वारा ऐश्वर्य द्वारा मेरे जीवन में 'वाज', बल और ज्ञान प्रदान करके मुझे अधिक उन्नत कर सकते हो ।

तो फिर, हे इन्द्र ! अब क्या देर है ? तुम अब क्यों बैठे हो ? उठो, आज्ञा करो, कृपा करो मेरे रथ को सबसे आगे कर दो, प्रथम स्थान पर पहुंचा दो । हां सचमुच मैं सर्वश्रेष्ठ मनुष्य बनूंगा, सर्वप्रथम बनूंगा ।

भूमिका

श्री पूज्यपाद महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज लिखित पुस्तक गृहस्थ आश्रम प्रवेशिका अन्य पुस्तकों की भांति जनता ने बहुत पसन्द की है। हिन्दी तथा उर्दू के कई कई संस्करण निकलने पर भी माँग उसी प्रकार बनी रहती है।

२. गृहस्थ आश्रम प्रवेशिका के पाठकों ने बहुत आग्रह किया कि इसका दूसरा भाग भी श्री महात्मा जी महाराज जरूर लिखें। स्वर्गीय श्री म० रामचन्द्र जी मनचन्दा जो लाहौर में श्री महात्मा जी की पुस्तकें छपवाते थे उनकी भी विशेष प्रेरणा थी, परन्तु श्री महात्मा जी महाराज अपने विशेष व्रतों के समय में प्रभु प्रेरणा से ही पुस्तकें लिखते है। चुनांचे यह पुस्तक "गृहस्थ सुधार" भी अपने व्रत १९९८ सं० (९ मई १९४१ से ८ जुलाई १९४१ तक) आर्य नगर (वानप्रस्थ आश्रम)ज्वालापुर में लिखी और श्री भक्त सोनूराम जी बो०ए० वी०टी० ने शीर्षक बनाये। कातब ने उर्दू में लिख कर शुद्ध करने के लिए डाक द्वारा भेज दो परन्तु पार्सल गुम हो गया। कोशिश करने पर भी न मिला। बहुत काल के बाद आखिर प्रभु कृपा से पार्सल मिल गया। परन्तु अन्तिम पृष्ठ, जो पुस्तक की जान (Finishing touch) थे, गुम पाए गये। श्री महात्मा जी ने वह पृष्ठ दुबारा लिख दिये। परन्तु बहुत संक्षेप से, केवल सिलसिला पूरा करने के लिए। अब कागज का प्रबन्ध न हो सका अतः पुस्तक न छप सकी।

श्री म० देवेन्द्रजी की कृपा से जब कागज मिला तो किताबत खराब हो गई थी अतः फिर दुबारा किताबत कराई गई। इसी कारण से यह पुस्तक जितनी जरूरी थी उतनी ही देर से पाठकों को मिली।

—:०:—

इस पुस्तक में क्या है ?

इसके विषय में हम इतना लिखना पर्याप्त समझते हैं कि सीधी सादी आकर्षक भाषा में श्री महात्मा जी के हृदय की गहराई से निकले हुए भाव हैं जो पाठक के मन पर प्रभाव डाले बगैर नहीं रह सकते। स्वयं श्री महात्मा जी लिखते-लिखते बहुत बार रो पड़े और फिर भी कभी देखते तो अनायास अश्रु बहाते थे। यही कारण है कि जिन-जिन- व्यक्तियों ने इस पुस्तक को पढ़ा है सबकी यही हालत हुई। बार-बार पढ़ने को जी चाहता है और हर बार पाठक अश्रु बहाता है।

यह पुस्तक भी श्री महात्मा जी की अन्य पुस्तकों की भांति जनता अपना रही है। अतः हम आशा करते हैं कि इसमें लिखित शिक्षाओं के अनुसार जनता आचरण करके जीवन को उन्नत तथा सफल बनायेगी।

इस पुस्तक की उपयोगिता का यह प्रमाण है कि पाठकों की मांग को पूरा करने हित इसका नोवां संस्करण प्रकाशित करना आवश्यक हो गया है।

—प्रकाशक

—o—

॥ ओ३म् ॥

गृहस्थ सुधार

विषय सूची

प्रथम भाग—कुमारी शिक्षा

अध्याय पृष्ठ

१. विवाह उद्देश्य १७–२२

२. कन्या जन्म का लक्ष्य, नैमित्तिक तथा स्वाभाविक सम्बन्ध, सत्सङ्ग, परमात्मा की प्राप्ति, कर्म रहित भोग अथवा कर्म का वास्तविक स्वरूप, जातीय सुधार का अधिकार, कन्या के जन्म की माता, पिता के गृह में स्थिति, मातृशक्ति, तीन प्रकार की मति । २३–३४

३. समाहर तथा संकिर, अपनी पाई, अपनी कमाई, पसीने की कमाई कब प्यारी पाई । ३५–४०

४. गृहस्थ शिक्षा की आवश्यकता, मैं कौन हूं ? यह स्वार्थ क्यों ? गृहस्थ और ब्रह्म-विद्या, उत्तम फल, अनुचित लज्जा तथा अज्ञान का पाप, एक उत्तम परामर्श । ४१–४८

५. मनुष्य विशेषता, प्रार्थना का फल, मर्यादा का पालन, विनीत भाव, परोपकार के नियम, सच्चा सांचा, संकट भी एक पाठशाला है । ४९–६४

६ जीवन आश्रम, जातीय उत्थान–देशोत्थान–प्रजा प्राण ६५–७२

७. विद्यार्थी रूप, सादा तथा तपस्वी जीवन, बनावट तथा सजावट से अवश्य गिरावट आ जाती है, सीधी माँग सम्न्वध सादा—तपस्वी जीवन। ७२–८५

८. सम्मति, सहमति, सद्गति, कामवासना ही सब पापों का मूल है। ८६–१०१

९. 'तू भी फलक बदल कि जमाना बदल गया' मासिक धर्म गृहस्थ सम्बन्धी शरीर रचना ज्ञान, शरीर रचना का भेद, एकान्तवास का महत्व, सन्तान सुधार, भोजन का प्रभाव, विचार और रहन-सहन, प्रसन्नता की आवश्यकता १०२-१२२

१०. त्रिमत, परिवार, प्रजा, परलोक, चार छाननियाँ, वच्चे की माता। १२३–१०५

११. पर निन्दा, दुर्गुण और अवगुण, वाणि की महिमा शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति की कई बातें। १०६–१३५

द्वितीय भाग—नारी शिक्षा

१२. रसोई—रसाई—रुसवाई, निकम्मापन, त्याग, निकम्मेपन का बखेड़ा, रसोई से रसाई और रसायन, अभिवादन, स्त्री का हाथ, पति का कन्धा, गृहपत्नी कर्म, गृहपत्नी गुण, पवित्रता, शुद्धता, गोपालन। १३६–१५८

१३. पतिव्रता, स्त्री, कामी पुरुष का प्रयत्न सदा निष्फल, स्त्री धर्म, गुरु— शिल्प गुरु—विद्या गुरु संस्कार गुरु, सुख प्राप्ति का सुगम उपाय, क्या जगत मिथ्या है ? संसार सागर को पार करने की भय रहित नौका १५९-१७१

१४. आशीर्वाद, सफलता शिशु सुधार, संयम का जीवन, क्रोध चाण्डाल है, पुरुष कमाये स्त्री शुद्ध करे, ईर्ष्यालु बालक का सुधार, माता के आधीन काम माता पिता के सांझे काम। १७२-१८१

१५. पवित्रता, वीरता, स्त्री जाति का सुख मूल—बालकों को शिक्षा कैसे दें, प्रत्येक इन्द्रिय का नेत्र से सम्बन्ध, माता पिता की जिम्मेदारी, पवित्रता का महत्व, पवित्रता के साधन, स्त्री के चार धर्म, महावीर कौन है ? १८२-१९२

१६. सफल कमाई—मोह शक्ति—पंच महायज्ञ १९३-२०८

१७. शंका समाधान २०९-२१४

१८. भक्ति का अधिकारी—विधवा का उपकार २१५-२२८

१९. एकान्तवास–भयानक बुद्धि–भोग–पाप प्रायश्चित–गृहस्थ का अधिकारी–ओघट घाटी–पश्चाताप–पाप मोचन–सन्तान के प्रति पिता का उत्तरदायित्व–पवित्रता का ओज और तेज २२९-२४३

२०. जात कर्म संस्कार–प्रसूता की प्राण रक्षा–नवजात बालक–जात कर्म, ओ३म् नाम रस, दुग्धपान शिक्षाएं, बन्द मुट्ठी, जन्म दिन, संस्कारी जीव। २४४-२५७

तृतीय भाग—गृहस्थ सुधार

२१. किये पाप का प्रायश्चित, ब्रह्मचर्य का साधन, वाम पार्श्व बचाव का उपाय, वीरवत् जीवो, एक नहीं दो कारदार की चतुराई। २५८–२७४

२२. ईश प्राप्ति, विश्व कुटुम्ब, केवल एक सम्बन्ध, ज्ञान और भक्ति की तुलना, भगवान भक्त के वश में, अन्न का प्रभाव। २७५–२८५

२३. सुधार–संवार–बेड़ा पार, भाव का परिवर्तन। २८६–२९७

२४. वेश्या धन–दोषी मन, वद करदारी–किस्मत मारी। नौ सौ चूहे खाकर बिल्ली हज को चली, वेश्या के भाग पलटे। २९८–३२३

२५. मोतियों की श्रृंखला, बालक व माता पिता, पारिवारिक प्रसन्नता, धरोहर और सम्पत्ति, कौन किसका कच्चा, स्त्री धन, प्राणनाथ, स्वाधीन कौन है, मासिक धर्म के समय एकान्त सेवन, मातृ शक्ति के निरादर का फल, गृह स्थान, रसोई की सामग्री। ३२४–३३०

२६. नाम अग्नि, होनी होली, राख से लाख। ३३१–३५२

२७. आवश्यक शिक्षाएं–प्रलोभन–अन्वेषण–आशीर्वाद, गुमनाम निवेदन पत्र। ३५३–३६४

२८. प्रेम का विवाह, पौराणिक विवाह में वैदिक रंग, अभिमानी वर, अभिमान का सर नीचा। ३६५–३७६

२९. अतिथि पूजा, साधु सेवाध्यान योग्य शिक्षा। ३७७–३८०

३०. बेमेल विवाह, सुहागरात अथवा..., अत्याचार, निर्दोष का त्याग, अभागिन वियोगिन की विदा, पुनः माता की प्रेम भरी गोद में। ३८१–३९०

३१. गृहस्थ इच्छा–सन्तान कामना–पुत्र वा पुत्री ? ३९१–३९२

३२. वियोगिन प्रेमा, धन मद, भेंट, नया सम्बन्ध, तर्जना, आशा का अन्त। ३९३–३९८

३३. शुभ परामर्श, संकोच और सोच विचार, सन्तोष कुमारी की लगन, दुखिया के मन की, स्वप्न या भविष्यवाणी वैराग, भावना भरी बातें प्रेमलता का स्वप्न, पतिलोक की तैयारी नियम विरूद्ध हार शृंगार क्यों ? यज्ञशाला में सन्तोष कुमारी का देहान्त, माता और पुत्री दोनों का दाह संस्कार वैदिक रीति से। ३९९–४१२

३४. प्रभु आश्रित धमार्थ औषधालय ४१३–४१४

३५. परिशिष्ट ४१५

॥ ओ३म् ॥

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं ।
भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

लेखक
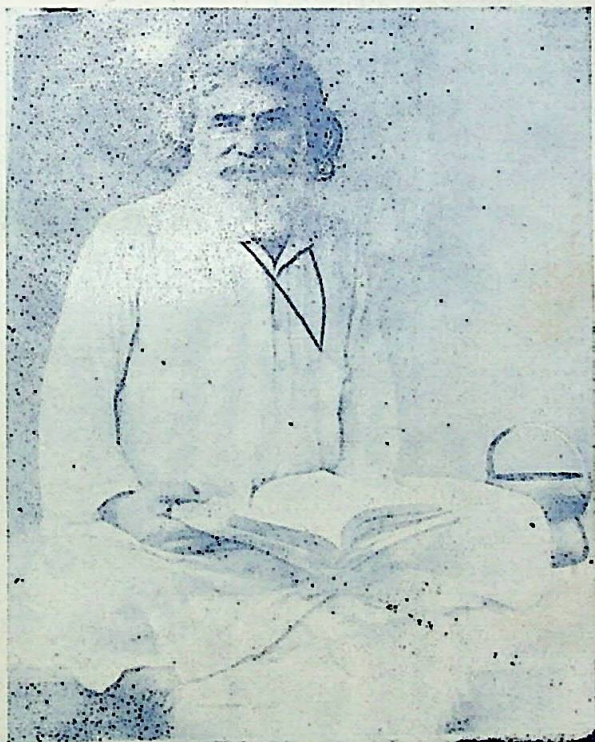
श्री महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज

गृहस्थ सुधार

प्रथम भाग—कुमारी शिक्षा

प्रथम अध्याय

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥
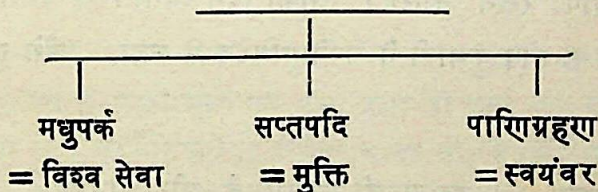
महाशय ज्ञानप्रकाश, सत्यव्रत, सन्तोषकुमारी तथा उसकी सास ये चार ही जीव इस गृह के वासी हैं । दोनों पिता पुत्र नित्य कर्म आदि से निवृत होकर घर से बाहर, दुकान पर अथवा

अपने क्षेत्र में चले जाया करते और शेष दो स्त्रियां घर में रह जातीं। घर में भोजनादि की तैयारी के काम से मध्याह्न तक निवृत्त हो जातीं। सत्यव्रत की माता भी कर्मपरायण थी। वह भी बेकार बैठकर विश्राम करना न चाहती थी और सन्तोष तो पढ़ी-लिखी कन्या थी। माता से बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर रखी थी और परमेश्वर ने उसकी बुद्धि भी बड़ी तीव्र बनाई थी। हृदय की उदार थी। अपने जीवन, विवाह तथा गृहस्थ के लक्ष्य को जान चुकी थी। उससे बिना विशेष कार्य के सारा दिन कठिनता से व्यतीत होता।

सत्यव्रत था तो बी.ए. (ग्रेजुएट) परन्तु बड़ा सरल और बहुत मेल-मिलाप रखने वाला। उसका दिन व्यतीत हो जाता। एक रात्रि को सन्तोष कुमारी ने अपने पतिदेव से कहा, "कैसे गुजरती है ?"

सत्यव्रत—"बहुत अच्छी गुजरती है, और आपकी ?"

सन्तोष—"मुझे तो दिन पर्वत के समान हो जाता है। मध्याह्न तक तो भले गौ सेवा तथा चौके के कार्य में निमग्न रहती हूं, तत्पश्चात् क्या करूं ? माता जी तो मुझे काम करने नहीं देती, वह स्वयं ही दिन भर लगी रहती हैं, कभी किसी जीर्ण वस्त्र का सुधार कर रही हैं, कभी वस्त्र धो रही हैं, कभी अनाज साफ कर रही हैं, तो कभी चर्खा कात रही हैं; कहां तक वर्णन करूं सब छोटे-मोटे काम स्वयं ही करती रहती हैं।

सत्यव्रत--तो फिर आप क्या करती हैं ?

सन्तोष--मुझे भी कोई काम करने को दिया जाय, ताकि मैं निकम्मी न बैठी रहूं और मेरा मन जुटा रहे। काम भी ऐसा हो कि जिससे अन्तःकरण भी पवित्र होता जाये और सिर से भार भी उतारता रहे।

सत्यव्रत--आपके सिर पर कौन सा भार अभी से पड़ गया जिसके उतारने की चिन्ता लग रही है और अन्तःकरण तो प्रभु स्मरण से पवित्र होगा। बेकार तो हो ही, दिन भर प्रभु भक्ति में लगी रहो।

सन्तोष--आपको इस भार का ज्ञान नहीं, तो आपका जीवन कैसे अच्छा वीतता है ? आप क्या काम करते रहते हैं ?

सत्यव्रत--काम-वाम तो कुछ भी नहीं करता, सब पिता जी ही कर लेते हैं, कभी भूमि का काम हुआ तो वहाँ चले गये, कभी नगर में कोई फर्यादी अथवा पीड़ित आया तो उसकी सुनी-सुनाई लेन-देन की बात हुई तो वह मिटा दी। पिता जी का तो प्रायः सारा समय नगर की जन-सेवा में ही बीतता है। कभी किसी दीन-दुःखी की सुधि लेने जा रहे हैं और कभी विधवाओं की और कभी-कभी तो पंचायती कार्यों में ही दिन बीत जाता है। मैं कभी उनके पास बैठा रहता हूं, कभी मित्रों के पास चला जाता हूं। इस प्रकार दिन कट जाता है।

सन्तोष--शोक !

सत्यव्रत--यह क्या ! कुशल तो है ?

सन्तोष—शोक न करूं तो क्या करूं? जिसका अर्द्ध अंग अर्थात् आधा शरीर और वह भी अधिक बलवान भाग निकम्मा तथा शिथिल हो जाये, इस अधरङ्ग के रोगी का शरीर किस काम का ?

सत्यव्रत—आपकी यह बात तो एक पहेली है, इस बात से अधरङ्ग रोग का क्या सम्बन्ध है ?

सन्तोष—भगवन् ! मैं आपकी अर्धाङ्गिनी हूं, मैं और आप दोनों बराबर मिलकर यदि कार्य करें तो समस्त शरीर का कार्य होगा। अर्द्ध भाग क्या संवार सकता है ? न अपना संवार सकता है न पराया। यदि ऐसे (चैन) विश्राम से गुजारनी थी तो फिर विवाह क्यों किया ? ऐसे पहले भी गुजार रहे थे, मेरा भार सिर पर क्यों लिया ?

विवाह का अर्थ—वि—विशेष, वाह—चलना, वहना, वर्ताव अथवा व्यवहार करना अर्थात् विवाह का अर्थ है वह विशेष चलन (आचरण)जो न ब्रह्मचारियों में, न वानप्रस्थियों में, न संन्यासियों में ही पाया जाये, इसकी पूर्ति के लिए ही विवाह किया जाता है।

इस आश्रम में विशेष नियम अथवा मर्यादायें आश्रम को चलाने अथवा व्यतीत करने की होती हैं। अनेक प्रकार की जिम्मेदारियों की प्रतिज्ञायें हम कर चुके हैं, वे जिम्मेदारियां ही भार हैं, इनको हम अभी से उतारना आरम्भ न करेंगे तो और कब समय आयेगा ?

स्त्री प्रकृति है, पति पुरुष है। इन दोनों में जो प्रेम होता है, वह ब्रह्मचारी का वानप्रस्थी गुरु से अथवा संन्यासी का संसार से भी नहीं हो सकता। पति के सामने एकान्त में जैसे स्त्री प्रेम की

मूर्ति बनकर नग्न तक अपना सर्वस्व (गुप्त तथा प्रकट) दिखला देती है, ऐसे ही प्रकृति भी पुरुष के सामने नग्न है परन्तु अन्य किसी को यह प्रतीत नहीं होता।

संसार में जितने भी पदार्थ हैं वे सब परोपकार करते हैं। वे सब बढ़कर ही तथा फलकर ही उपकार कर सकते हैं। वृद्धि के बिना कोई भी उपकार नहीं कर सकता। मनुष्य भी वृद्धि प्राप्त करके ही उपकार कर सकता है, परन्तु मनुष्य की वृद्धि गृहस्थ आश्रम से ही गिनी जाती है, इसी से वह उपकार कर सकता है। आपने अभी जीवन निर्वाह का भी कार्य आरम्भ नहीं किया तो पितृ ऋण से कैसे मुक्त हो सकेंगे ? हम दोनों ने, आपको स्मरण होगा, यही प्रतिज्ञा की थी कि आप अपना निर्वाह शुद्ध कमाई से करेंगे और उस समय सन्तान उत्पन्न करना अपना उद्देश्य बनायेंगे अर्थात् यह कि कैसी सन्तान उत्पन्न की जाये ?

उद्देश्य इस विशेष आचरण में तीन उद्देश्यों को पूरा करने के लिये विवाह किया जाता है (१)वंशवृद्धि (२)राष्ट्रीय सेवा (३) प्रभु प्राप्ति। शेष तीन आश्रमों में तीनों उद्देश्यों की पूर्ति नहीं हो सकती।

(१) वंश वृद्धि से पितृ भक्ति होती है। पितृ ऋण पूरा होता है।

(२) राष्ट्रीय सेवा से देव-ऋण और देव पूजा होती है और

(३) प्रभु प्राप्ति से ऋषि ऋण उतरता है।

वैदिक विवाह में तीन क्रियायें मुख्य होती हैं—

(१) मधुपर्क (२) पाणिग्रहण (फेरे) और सप्तपदी। इन तीनों क्रियाओं से यह तीन उद्देश्य पूरे करने के लिए विशेष साधन सिखाये जाते हैं।

(क) मधुपर्क से अभिप्राय ऊपर-नीचे, पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण के प्राणियों की 'सेवा' है। वह सेवा भी मधु की तरह प्रेम से मीठी बनाकर, घी की न्याईं शरीर में बल धारण कराने वाली दधि के समान एक चित्त अर्थात् एकाग्र होकर अथवा जम कर राष्ट्र की अथवा संसार की सेवा करनी चाहिए।

(ख) पाणिग्रहण से वंश वृद्धि का अभिप्राय है, यज्ञ की वेदी संसार की नाभि होती है, इसके चारों ओर परिक्रमा करने का भाव यह है कि अपनी वंश वृद्धि ऐसी हो जो संसार में चारों ओर विस्तार करने वाली हो। अर्थात् क्षत्रिय हो तो उसका राज्य चारों ओर विस्तृत हो। वैश्य हो तो उससे व्यापार करने वाली प्रजा चारों ओर फैले और यदि ब्राह्मण हो तो उसके प्रकाश, ज्ञान, विद्या का चारों ओर विकास हो।

(ग) सप्तपदी का अभिप्राय ईशान कोण है, जहां पूर्व और उत्तर के प्रकाश का योग है। ध्रुव की स्थिरता, निश्चलता उत्तर दिशा में है, (उपासना) सूर्य का प्रकाश और (ज्ञान) पूर्व दिशा में अर्थात् ये दोनों ज्ञान और उपासना वेदी से एक होकर अर्थात् सांसारिक व्यवहारों से पृथक् होकर मुक्ति के लिए ज्ञान की ये सात

भूमिकायें प्राप्त करनी, जिससे प्रभु प्राप्ति हो यही मर्म सप्तपदी का है। वे सात भूमिकायें ये हैं—

(१) अन्तःकरण की शुद्धि (२) वैराग्य (३) मन की स्थिरता (४) उपासना (५) दुःखों की निवृत्ति (६) आनन्द की प्राप्ति और (७) मुक्ति।

सत्यव्रत ने जब यह बात अपनी धर्म पत्नी से सुनी तो अपना समय निष्फल बितने पर पश्चाताप करने लगा और बोला बहुत अच्छा!' साथ ही उसने दिल में विचार किया कि अब कल पिता जी से इसका वर्णन करूंगा। तत्पश्चात् दोनों पृथक् हो गये।

* * *

द्वितीय अध्याय
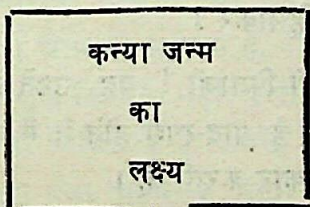
प्रातःकाल का समय है। घर वाले सब सो रहे हैं। महाशय ज्ञानप्रकाश जी सत्यव्रत के विवाह के पश्चात् से अपनी दुकान या चौबारे में ही सोया करते थे, जब उठकर आये तो देखा किवाड़ बन्द हैं। अभी कोई शब्द तक सुनाई नहीं देता। द्वार खटखटाया और सत्यव्रत को पुकारा। उसने उत्तर दिया और तुरन्त ही नीचे आ गया। दरवाजा खोला और पिता के चरणों में नमस्कार किया। ज्ञानप्रकाश ने कहा, पुत्र! यह सोने का समय तो नहीं। आओ, वायु सेवन करें, इतने में सब की निद्रा खुल गई। सत्यव्रत ने माता के चरणों में जाकर नमस्कार किया और ये दोनों वायु सेवन को चल पड़े। मधुर वार्तालाप करने लगे।

ज्ञानप्रकाश—क्या प्रतिदिन ऐसे ही जागते हो या आज देर हो गई ?

सत्यव्रत—नहीं पिता जी ! वह बहुत सवेरे जगा देती है। रात्रि को देर तक वार्तालाप होता रहा इसलिए आज देर हो गई है।

ज्ञानप्रकाश—सन्तोष तुम्हें कैसे जगाती है ? पुकारकर, भुजा हिलाकर या सिर हिलाकर।

सत्यव्रत—नहीं पिताजी ! वह उठते ही अपना मस्तक मेरे चरणों में टेक देती है, पाद-स्पर्श होने से मैं जाग जाता हूं फिर वह हाथ जोड़कर नमस्कार करती है।

ज्ञानप्रकाश—(मन में बड़ा प्रसन्न हुआ कि सन्तोष पुत्री वस्तुतः एक आर्य देवी है) तो क्या रात को व्यवहारिक वार्तालाप होती रही अथवा किसी विषय पर तर्क चलता रहा अथवा संसार के

कल्याण, वंश के हित या अपने लाभ का कोई विचार करते रहे ?

सत्यव्रत—सबसे प्रथम प्रश्न यह था कि कैसी गुजरती है। मैंने उत्तर दिया, अच्छी गुजरती है। फिर मैंने पूछा तो उत्तर मिला कि मुझे तो दिन पर्वत के समान भारी हो जाता है। इसी प्रकार वाद-विवाद होता रहा और मुझे तो बहुत लज्जित होना पड़ा।

ज्ञानप्रकाश—क्यों ?

सत्यव्रत ने सारा वृत्तान्त शब्दशः सुना दिया, पिता जी सुनकर कुछ क्षण के लिए मूक हो गये। फिर सत्यव्रत ने कहा आप मौन क्यों हो गये ? क्या सन्तोष कुमारी के शब्दों से आपको घृणा या रोष हुआ !

ज्ञानप्रकाश—नहीं पुत्र! नहीं, मैं तो उसकी बुद्धि की सराहना करता हूं। उसके भाव कितने ऊँचे हैं और हमारे वंश को कितना ऊँचा उठाने वाले हैं। देखो पुत्र संसार में जितने भी सम्बन्ध हैं वे दो प्रकार के हैं। एक नैमित्तिक, दूसरे स्वाभाविक (सीधे)।

नैमित्तिक तथा स्वाभाविक सम्बन्ध

नैमित्तिक सम्बन्ध को तो जाने दो। वे तो सब बाह्य अस्थायी सम्बन्ध हैं, वे सम्बन्धी हों अथवा न हों कुछ बिगड़ता नहीं, परन्तु जितने सम्बन्ध बिना किसी निमित्त के हैं अर्थात् स्वतः सिद्ध हैं, उनमें राजा प्रजा गुरु-शिष्य, माता पुत्र, स्त्री पति, मित्र, का सम्बन्ध बड़ा है, परन्तु राजा तथा प्रजा का सम्बन्ध वास्तविक तथा बड़ा नहीं है। कल और राजा था आज कोई और बन जाता है। गुरु और शिष्य का सम्बन्ध यद्यपि वास्तविक है परन्तु विचारों के

परिवर्तन पर अथवा अनेक शिक्षाओं के कारण गुरु एक नहीं रहता कई बन सकते हैं। मित्र और मित्र का सम्बन्ध भी बिना वसीला है। एक मनुष्य के अनेक मित्र होते हैं। मेरा जो मित्र है, वह मुझे भी मित्र मानता है और उसका दूसरा भी कोई मित्र है, इसलिए यह सम्बन्ध भी नित्य रहने वाला और स्थायी नहीं है।

सच्चा संग

वास्तविक सम्बन्ध वह है जिसमें एक का सब कुछ उस दूसरे के लिए हो, जिससे उसका सम्बन्ध है। वह बिना प्रेम और सच्चे प्रेम के स्थिर नहीं रह सकता और न ही निभ सकता है। इसलिए माता पिता पुत्र और स्त्री-पति का सम्वन्ध ही संसार में वास्तविक सम्बन्ध है, परन्तु माता-पिता का सम्बन्ध भी शारीरिक है। जिस माता-पिता ने पुत्र को जन्म दिया है उसके जीवन तथा नाम के साथ ही उन माता-पिता का सम्वन्ध रहेगा, दूसरे का नहीं बन सकता। परन्तु स्त्री का एक पति और पति की एक स्त्री विवाह से निरन्तर आयु पर्यन्त और नाम के साथ वही रहेगी और इन दोनों सम्वन्धों में केवल प्रेम का ही एक सम्वन्ध है। स्त्री का सब कुछ पति के लिए और पति का सब कुछ स्त्री के लिए है। माता की सारी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी पुत्र है और पुत्र के मालिक माता पिता हैं।

परमात्मा की प्राप्ति

परमात्मा की प्राप्ति के भी यही दो द्वार हैं, जिन से प्रविष्ट हो कर साधक प्रभु तक पहुंच सकेगा। जिस प्रकार पुत्र को माता की गोद में बैठने के लिए न तो किसी प्रार्थना की आवश्यकता होती है न किसी सिफारिश वसीला की। इसी प्रकार स्त्री

को भी पति से प्रेम करने के लिए कोई प्रार्थना अथवा वसीला की आवश्यकता नहीं ।

इनकी साधना दो प्रकार की होती है—एक निष्काम कर्म से, दूसरी निष्काम उपासना से । माता-पिता-पुत्र का सम्बन्ध बनाने अर्थात् पुत्र बन कर प्रभु (माता) की गोद में बैठने के निष्काम कर्म (संसार के प्रानियों के दु:ख-दर्द मिटाने के लिए खुली सेवा) की आवश्यकता है, जैसे पुत्र सब के सामने अपनी माता की गोद में दौड़ कर जा बैठता है, ऐसे ही निष्काम कर्म भी संसार का उपकार करने के लिए सब के सम्मुख ही किया जाता है, परन्तु स्त्री व पुरुष के प्रेम का स्थान (निज स्थान) एकान्त में मौन से, बिना बतलाए, बिना दिखलाए होता है अतः वह उपासना का द्वार है। जो साधक भक्ति के द्वार से प्रविष्ट होकर प्रभु प्राप्ति करना चाहता है वह स्त्री के समान उस परम पति परमेश्वर से प्रेम और भक्ति करे ।

यह बातें करते करते दोनों जंगल पहुंच गये । सत्यव्रत शौच को चला गया और ज्ञानप्रकाश जी कुएं पर गये, दोनों ने दातुन किया, स्नान किया और गृह की ओर लौटे । गृह आँगन पर्याप्त रूप से विशाल था, एक कोने में छोटी-सी यज्ञ वेदी बनी थी। दोनों यज्ञशाला में पहुंचे । यज्ञ-हवन सामग्री वहां सुन्दर क्रम से धरी थी । संतोष कुमारी और उसकी सास बैठी थी । दोनों ने उठकर बड़ी श्रद्धा और नम्रता से ज्ञान प्रकाश जी के चरण स्पर्श करके नमस्ते की और आशीर्वाद प्राप्त कर अपने-अपने स्थान पर जा बैठीं । पहले सब ने मिलकर बड़े प्रेम से विधिपूर्वक सन्ध्या

की, तत्पश्चात् प्रार्थना मन्त्र पढ़े, आचमन आदि सब क्रियाएं श्रद्धा-पूर्वक समाप्त करके हवन आरम्भ किया। हवन के पश्चात् प्रार्थना की और सन्तोष कुमारी ने अपनी प्रार्थना में प्रभु के दरबार में ये शब्द भी कहे "प्रभो ! हमारा जीवन आदर्श जीवन हो, निष्कलंक जीवन हो, पाप वासनाओं से रहित जीवन हो" और अन्त में कहा कि "हमने अनेक प्रकार की प्रतिज्ञाएं की हैं, हम अपूर्ण हैं, आप परिपूर्ण हैं, हमारे व्रतों की रक्षा करो और हमारी प्रतिज्ञाओं को पूर्ण करो"।

भजन और आरती गाकर वेद-कथा की। जब नित्य-कर्म समाप्त हो गया तो ज्ञानप्रकाश जी ने इस प्रकार वार्तालाप आरम्भ की।

कर्म रहित भोग अथवा योग

ज्ञानप्रकाश—पुत्री सन्तोष ! आज मैं तुम से जो पूछना चाहता हूं उसके उत्तर में अपने दिल की बात स्पष्ट रूप से निःसंकोच हो कह देना। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में कोई न कोई त्रुटि अवश्य होती है, कहीं ऐसा न हो कि हमने जो तुम्हारी जिम्मेदारी ली है और हमने तुम्हें और तुम्हारी माता को आश्वासन दिया है, उसमें हम से कोई चूक हो जाए ? जो कर रहे हैं तुम्हें हमारे वर्तमान जीवन शैली से पूरा-पूरा सन्तोष तो है ? अथवा इसमें कोई त्रुटि दिखाई देती है ?

सन्तोष कुमारी—पिता जी ! आपकी छत्र-छाया में कौन सा ऐसा सुख है जिसे मैंने प्राप्त नहीं किया, मुझे माता जी, आपकी

तथा पतिदेव जी की हर प्रकार की स्वतन्त्रता है और सर्व प्रकार से सुख मिल रहा है। मेरी पवित्रता में कोई भी बाधक नहीं, आप जैसे धर्मात्मा, आर्य श्रीमान् के गृह को, जहाँ कोई भी न्यूनता नहीं, प्राप्त करके यदि मेरा जन्म सफल नहीं हुआ तो मैं अपने कर्मों अथवा प्रारब्ध को ही दोष दूंगी।

ज्ञानप्रकाश—अच्छा पुत्री! कहो जिस प्रकार से तुम्हारा जन्म सफल हो सकता हो, हम वही करने को उद्यत हैं। यदि तुम्हारा जन्म सफल न हुआ तो सत्यव्रत का जन्म भी सफल नहीं हो सकता और यदि हमारी सन्तति का ही जन्म अकार्थ गया तो हमारा जन्म भी अकार्थ ही है।

सन्तोष कुमारी—पिताजी मनुष्य जन्म दुर्लभ योनि है। मैं केवल भोग ही भोग रही हूं, यद्यपि वे बहुत ही उत्तम हैं, पर हैं तो भोग ही, जैसे किसी राजा के हस्ती, अश्व तथा कुत्ते ने अत्युत्तम पदार्थ खा लिए। इतने मास बीत गये मैंने कोई भी कर्म नहीं किया जिससे मैं अपने जीवन को सफल समझ सकूं।

कर्म का वातविक स्वरूप

ज्ञानप्रकाश—पुत्री ! सन्ध्या तुम करती हो, हवन तुम करती हो, पति, सास, श्वसुर की सेवा तुम करती हो, गृह-कार्य सारा तुम ही करती हो, कोई अतिथि अभ्यागत आ जाये तो उसकी सेवा में भी तुमको बड़ी श्रद्धा है काक, कुत्ते को भोजन-ग्रास भी डालती हो, साधु, भिक्षुक, भंगी को भी यथाशक्ति दे देती हो, गौ सेवा भी करती हो, कौन सा ऐसा कर्म है जो तुम नहीं करती ?

सन्तोष कुमारी—सन्ध्या और हवन तो मेरा एक प्रकार से प्रायश्चित कर्म है, मेरी सन्ध्या से संसार को क्या लाभ ? मेरा हवन तो मेरे अपने शरीर के मल से जो दुर्गन्ध उठती है और संसार को हानि पहुंचाती है उसका एक प्रकार से प्रतिकार ही है जिससे उसे कोई विशेष लाभ नहीं। शेष रही आपकी सेवा, यह कोई सेवा नहीं क्योंकि यह तो केवल कुल और वंश की मर्यादा बनाये रखने के लिए ही है, श्रद्धासे करूंगी आपका आशीर्वाद प्राप्त करूंगी न करूंगी तो कुछ न पाऊंगी। यह भी मेरा अपना स्वार्थ ही है। अतिथि, गौ, काक कुत्ते, भिक्षुक, भंगी की सेवा भी तो आपकी ओर से है, मेरा तो इसमें कुछ भी नहीं, चाहे किसी नौकर ने कर दी अथवा मैंने कर दी एक ही बात है। इस प्रकार के काम करने से मेरी आत्मा में बल नहीं हो सकता।

ज्ञान प्रकाश—वह हमारी ओर से कैसे है ? यह गृह और गृह की सारी सम्पत्ति तुम्हारी नहीं तो किसकी है ?

सन्तोष कुमारी—माता-पिता की सम्पत्ति माता-पिता की है, यदि आज आपको वैराग्य हो जाये अथवा आपको किसी शुभ कार्य में यह सम्पत्ति लगा देने में हमें देने की अपेक्षा अधिक लाभ प्रतीत हो तो फिर आपके ऐसा कर देने पर यह सम्पत्ति हमारी कैसे होगी ? माता-पिता की सम्पत्ति तो केवल एक आश्रय ही है, कमाई तो सब को अपनी-अपनी ही करनी चाहिए।

स्त्री अपनें पति की अर्धाङ्गिनी होने से उसकी सर्व सम्पत्ति की स्वामिनी हो सकती है। हम पितृ-ऋण से उऋण हो ही नहीं

सकते, जब तक हम स्वयं कमाकर आपकी सेवा न करें। आपके धन से यदि आपकी सेवा की तो वह सेवक के कार्य के बराबर है। यदि हम अपनी कमाई करके आपकी सेवा करें तो वह हमारी वास्तविक सेवा और भेंट है, यही पुत्रों की सेवा है और यही पितृ यज्ञ है।

ज्ञान प्रकाश––तो कौन सा कार्य तुम्हें दिया जाय जो तुम्हारी अपनी कमाई हो।

सन्तोष कुमारी––स्त्री जाति को तो धनोपार्जन करने की आवश्यकता नहीं जब उसके सिर पर कमाने वाले हों। स्त्री के लिए तो केवल सेवा ही आज्ञा है।

ज्ञान प्रकाश––तो तुम्हारा भाव यह है कि सत्यव्रत कोई कार्य जातीय सुधार करे और धनोपार्जन करे और तुम उस धन से का अधिकार सेवा करो।

सन्तोष कुमारी—जी हां! वह तो धर्मयुक्त व्यवहार करके धनोपार्जन करें और मैं अपनी जाति की निष्काम सेवा करूं। अर्थात् स्त्री जाति (कन्याओं को इस योग्य बनाऊं कि वे गृहस्थ को स्वर्ग धाम बनाने वाली बनें)।

ज्ञानप्रकाश—पुत्री! विचार तो तुम्हारा बहुत ऊंचा है परन्तु अभी तो तुम स्वयं ही कन्या हो। निःसन्देह तुमको सुशिक्षा मिली है और विधाता ने तुम्हें बुद्धि भी तीव्र प्रदान की है और चित्त भी उदार दिया है। अच्छा! मैं तुमसे एक प्रश्न करता हूँ, यदि तुमने

ठीक उत्तर दे दिया तो मैं समझूंगा कि तुम अभी से इस योग्य हो कि जाति का सुधार करो और मैं अपना भी अहोभाग्य समझूंगा ।

प्रश्न

कन्या के जन्म की मात पिता के गृह में क्या स्थिति (दरजा) है ?
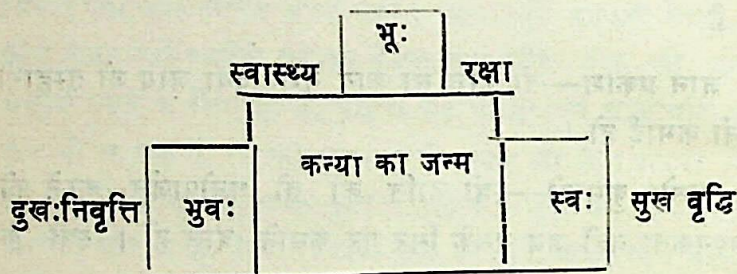
सत्यव्रत—पिताजी ! मैंने आपके इस प्रश्न को नहीं समझा, स्थिति से क्या अभिप्राय है ? यही कि कन्या जन्म क्यों लेती है अथवा कुछ और ?

ज्ञानप्रकाश—माता पिता के घर यदि पुत्र उत्पन्न हो तो उसका अधिकार स्वामी का है, वह अपने माता-पिता की सब संपत्ति का उत्तराधिकारी बनता है परन्तु कन्या नहीं बनती । संसार में दो ही दरजे हैं, एक स्वामी का दूसरा सेवक का । अतः कन्या सेविका होती है या स्वामिनी अथवा, कुछ और ?

माता जी—कन्या का जन्म तो ऋण उतारने लिए होता है इसलिए माता-पिता उसे दान कर देते हैं ।

सत्यव्रत—कन्या माता के पास एक अमानत(धरोहर)होती है ।

संतोष कुमारी––(कर जोड़े बड़े विनम्र भाव से)कन्या कुमारी अवस्था में अपने माता-पिता के घर में न तो सेविका

मातृशक्ति का स्थान ही रखती है और न स्वामिनी का ही। वह केवल शिक्षा के लिये माता-पिता के घर में जन्म लेती है, वह एक विद्यार्थिनी है ताकी गृहस्थ आश्रम चलाने के लिए निपुण हो जावे। अतः माता पिता का कर्त्तव्य है कि उसे न केवल पूर्ण माता ही बनाये अपितु वास्तविक पत्नी बनाने की भी शिक्षा दें ताकि पति-गृह में स्वामिनी ही नहीं, अपितु गुरु भी बन सके।

ज्ञानप्रकाश—शाबास पुत्री, शाबास ! (धन्य हो पुत्री धन्य !) अच्छा फिर कन्या गुरु माता बन कर क्या करेगी, वह पुनः माता और गुरु कैसे बनेगी ?

संतोष कुमारी––एक तो १६ वर्ष की आयु तक माता बनने के योग्य शिक्षा पाकर अर्थात् वह अपनी सन्तान को सुमति देने वाली बन जाये, माता को प्रथम गुरु इसीलिए कहा। माता अर्थात् मति देने वाली अथवा मति बनाने वाली को ही गुरु का स्थान दिया जाता है, केवल जन्म दाता को नहीं। इसलिए पशु की माता अपनी संतान की गुरु नहीं कहलाती, केवल मनुष्य की माता ही गुरु बन सकती है, फिर वह किस प्रकार की मति दे और मति की आवश्यकता ही क्या है ?

मनुष्य सामाजिक प्राणी है, अतः उसे परस्पर सम्बन्ध और व्यवहार के लिए मति की आवश्यकता होती है, बिना मति के वह कोई भी व्यवहार नहीं कर सकता। अतः माता को चाहिए कि वह ऐसी मति दे कि जिससे सन्तान सदा यश और बल को प्राप्त करती हुई शान्ति और सुख का प्रसार कर सके।

(क) यश—शुभ कर्मों के करने से होगा ।

तीन प्रकार की गति बल—प्रभु भक्ति से बढ़ेगा।
शान्ति—ज्ञान से प्राप्त होगी और शान्ति सुख फैला सकेगी ।

(ख) जब कन्या तीन प्रकार की मति प्राप्त कर ले तब ही वह माता बनने की अधिकारिणी बन जाती है अर्थात् १. भूः-जिससे आयु और स्वास्थ्य बढ़ सकता है । २. भुवः-जिससे दुःख दूर किये जा सकते हैं, दुःखों से कैसे संग्राम किया जा सकता है ? और (३) स्वः–जिससे सुख प्राप्त किया जा सकता है ।

ज्ञानप्रकाश—पुत्री ! मैं इन उत्तरों से बहुत प्रसन्न हुआ हूं। अब यह बताओ किस प्रकार का प्रयत्न कर दूं ।

संतोष कुमारी—मैं चाहती हूं कि मेरे यह श्वास प्रभु की सेवा और शुभ कार्यों के अर्पण रहें । जो शिक्षा मुझे माता ने दी है अथवा जो कुछ मैंने मंगनीकाल में स्वाध्याय से प्राप्त किया है और अब इतने मास में आपके चरणों में रहने का सौभाग्य प्राप्त होने पर जो विचार मुझे सूझे हैं, वह मैं अपनी उन बहिनों (कुमारी कन्याओं) को अभी से सिखा और समझा दूं, जो युवती हैं और जिन का विवाह कुछ समय में होकर उनके सिर पर गृहस्थ की जिम्मेदारी का भार पड़ना है, ताकि वह सब उनके लिए तैयार हो जावें और सर्व प्रकार से सावधान रहें, क्योंकि केवल विद्या प्राप्त करने लिए किसी को इसलिए भी साहस न होगा कि संसार अभी लोक-लज्जा में निमग्न है, अतः मेरी इच्छा है कि कन्याएं हिन्दी रत्न, भूषण, प्रभाकर की निःशुल्क विद्या प्राप्त करने के लिए आयें, मैं उन्हें सब विषय

भी पढ़ा दूंगी और धर्म शिक्षा के रूप में गृहस्थ जीवन की शिक्षा भी दूंगी ।

इस पर ज्ञानप्रकाश जी ने कहा, अच्छा हम प्रबन्ध कर देगें । तत्पश्चात् सब शान्ति पाठ करके अपने-अपने व्यवहार को ले गये ।

❋❀❋
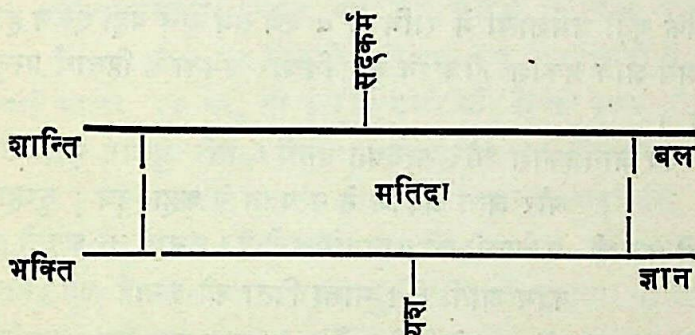
ओ३म्

तृतीय अध्याय

समाहार तथा संकिर—प्यारो अपनी पाई

ज्ञानप्रकाश का नगर की पंचायत में भी बड़ा मान था । सम्पत्तिशाली गृह का स्वामी था । जनता की निष्कामभाव से सेवा करने वाला था, अतः सर्वजन प्रायः उसकी सम्मति का मान करते थे और उसी से ही है नगर-निवासी अनेकों परामर्श लेते तथा पूछ-ताछ करते थे । ज्ञानप्रकाश ने नगर मुखिया के समीप जाकर प्रार्थना

की कि "सब नगर निवासी एक स्थान पर एकत्र हों, मैं नगर तथा जाति के कल्याणार्थ कुछ सुझाव सम्मुख रखना चाहता हूं।" मुखिया ने स्वीकार कर लिया। रात्रि का समय नियत किया गया। पंचायत के प्रसिद्ध व्यक्तियों तथा नगर-निवासियों को सूचना कर दी गई कि बड़ी धर्मशाला में रात्रि के ८ बजे सब जन वहां एकत्र हों। महाशय ज्ञान प्रकाश जी अपने कुछ विचार जनता के हितार्थ प्रस्तुत करेंगे।

अब ज्ञानप्रकाश और सत्यव्रत दोनों अपनी दुकान पर बैठे हैं

अपनी कमाई

और ज्ञान प्रकाश ने सत्यव्रत से कहा—पुत्र ; तुम्हारी धर्मपत्नी की बात तो खरी है। कमाई तो अपनी ही काम आती है। माता पिता की कमाई की आशा मनुष्य को आलसीं बना देती है। मैंने यह बात अब तक इसलिए तुमको न कही थी कि नौकरी का समय नहीं। पराधीन मनुष्य अपने जीवन को जीवित नहीं रख सकता। फिर तुम मेरे इकलौते पुत्र हो। यह दुकान का किंचिन्मात्र लेन-देन तथा साहूकारा है, कुछ भूमिहारी भी है, मैं जब वानप्रस्थ-आश्रम में चला जाऊंगा तो यह तुम्हें सर्वत्र संभाल दूंगा।

तुम ही अन्ततः इसके स्वामी हो। अपने गृहस्थ की संभाल तथा निर्वाह करते रहना, तुम्हारे भोग को बहुत है। यदि संतोष से निर्वाह किया तो किसी के पराधीन न बनोगे। किसी के चार पैसे ऋण भी नहीं लेना पड़ेगा, मान भी बना रहेगा और निर्वाह भी चलता रहेगा। स्वतन्त्रता से अपना जीवन भी बिता सकोगे और दूसरों का भी परोपकार करते रहोगे परन्तु तुमको अभी कुछ अयोग्य देखकर मुझे कुछ समय पर्यन्त घर पर ही रहना पड़ गया। अतः मेरे

मन में कभी यह विचार उपजा ही नहीं कि तुम कोई व्यवहार अथवा जीवन निर्वाह के लिए काम करो। परन्तु अब संतोष की वार्तालाप को श्रवण करके जो उस गत रात्रि को तुमसे कही मैं उसे बड़ी गम्भीर तथा युक्तियुक्त समझता हूं।

अपनी प्यारी पाई

एक कथा आती है कि एक बड़ा धनी आदमी था उसके चार पुत्र थे। सब विवाहित हो गए। एक दिन स्त्रियों में कलह हो गई, तो उन्होंने अपने पतियों को पृथक् हो जाने के बाधित किया। एक बालक जो किञ्चिमात्र भी काम न करता था उस की स्त्री ने कहा—कि पिता जी हमें पृथक् करदो। वह चकित हो गया! जब रात्रि को सब इकट्ठे हुए तो पिता ने कहा कि पुत्रों! मैं तो चाहता था कि मेरे जीवन काल में तुम्हारे में से कोई पृथक् न हो, परन्तु यह बालक तङ्ग करता है। अब मेरी आज्ञा यह है कि पहले प्रत्येक बालक बारी-बारी से कमाकर घर का खर्च चलाकर दिखावे तब जुदा करूंगा और सम्पत्ति बांट दूंगा।

जब सब बालकों ने बारी-बारी से एक-एक सप्ताह कमा कर खिलाया और उसकी बारी आई तो वह तो केवल खेलना ही जानता था। काम करना तो जानता ही न था। सारा दिन समझ में न आया कि क्या करूं? सायं हुई तो हताश होकर घर आया। माता ने पूछा तो रो पड़ा। माता ने अन्दर से एक अशर्फी निकाली और उसे दे दी। वह तुरन्त उसे अपने पिता के पास ले गया। पिता ने कहा कि इसे कुएं में डाल आओ। वह तुरन्त गया और अशर्फी कुएं में डाल आया। दूसरा दिन हुआ और सारा दिन फिर बीत गया। सायं काल को अत्यन्त उदास और व्याकुल था। माता कहीं बाहर गई हुई थी।

बहिन ने देखकर पूछा तो रो पड़ा। बहिन ने एक रुपया निकाल कर उसे दे दिया। वह दौड़कर रुपये को पिताजी के पास ले गया। पिताजी ने कहा इसे भी कुएं की भेंट कर दो। चुनांचे वह भी उस कूप में डाल आया। अब तीसरा दिन हुआ। माता बाहर गई थी बहन भी चली गयी। विचारने लगा अब पैसा तो कहीं से नहीं मिलेगा।

दिन चढ़ता गया। धूप कड़कती पड़ने लगी। दोपहर हो गई कमाने का कोई साधन न बना। शहर से बाहर निकल गया। साय होने को आई। किसी व्यक्ति के पास कुछ समान था। उसे कहने लगा कि मैं उठा दूं, आप कुछ दे देना। उसने सामान दे दिया। सिर पर रखा। पहले कभी भार उठाया नहीं था। सिर बैठने लगा, गर्दन मुड़ने लगी और हाथ काँपने लगा। पाँव डगमगाने लगे और टांगें लड़खड़ाने लगी। पसीना पसीना हो गया। बड़ा व्याकुल हो गया और आंखोंसे अश्रुधारा वहने लगी। चलना जारी रखा। अन्त में उसके मकान तक पहुंच गया और उसने गठरी उतरवा ली। एक आने के पैसे दे दिये। इसी को सोभाग्य समझ कर पिता पास ले आया।

पिता ने कहा कि इसे भी कुएं में डाल आओ, तो कहने लगा, मेरा शरीर अब तक कांप रहा है। इतना भार था कि शायद मर ही जाता। पसीना-पसीना होकर एक आना कमाया है आप कहते हो कि इसे भी कुएं में डाल दो। मैं नहीं डालता। अपनी सम्पत्ति अपने पास रखिए। मैं कमा कर खाऊंगा।" कहानी का तात्पर्य यही है कि अपनी थोड़ी-सी कमाई भी दूसरे से बिना प्रयत्न और कष्ट उठाये हाथ आये हुए बहुत धन की अपेक्षा ज्यादा प्यारी लगती है। सच है, पसीने की कमाई, सबसे प्यारी पाई। अब बतलाओ कि

तुम क्या काम करोगे ?

सत्यव्रत—जो आप उचित समझें, मैं करने को तैयार हूं।

ज्ञानप्रकाश—पुत्र ! इस तरह से तो कुछ भी नहीं कमा सकते, अपनी रुचि और दिल का शौक भी तो होना चाहिये।

सत्यव्रत—नौकरी को तो आप कहते हैं कि समय नहीं। पराधीनता हो जाती है और नौकरी खोज करनी पड़ेगी, न जाने कब मिले ? अतः मेरे लिए भी पाठशाला में अध्यापन कार्य कराने का प्रबन्ध कर दें। यह कार्य तो मैं कर ही सकता हूं।

ज्ञानप्रकाश—इसमें भी बड़ी कठिनाई है। सन्तोष का उद्देश्य तो सामने है। उसके दिल में तड़प है और वह निष्काम सेवा करना चाहती है, जनता भी शीघ्र मान जायेगी क्योंकि जब उनको पाई-पैसा न देना पड़े और निःशुल्क सुधार हो जाये तो वह क्यों न मानेंगे। सन्तोष अपनी आत्मा का कल्याण करेगी, हमारा भी नाम उज्ज्वल करेगी, परन्तु तुम्हें आर्थिक कमाई करनी है। अपने स्वार्थ सामने रखकर लोगों को हरे-हरे बाग दिखाना एक तो पाप है, दूसरे सफलता भी न होगी।

सत्यव्रत—आर्थिक कमाई की आवश्यकता है, प्रभु ने दे ही रखा है। मैं भी जब निष्काम सेवा करने लग जाऊंगा, बिना शुल्क पढ़ाऊंगा, तो फिर सन्तोष कुमारी को इसमें आपत्ति ही क्या होगी ?

ज्ञानप्रकाश—उसे तो प्रसन्नता होगी, वह येन-केन प्रकारेण अन्य स्थानों से पैसा पैदा करने के लिए तो नहीं कहती, उसका उद्देश्य तो मैं समझ चुका हूँ, परन्तु तुम क्या पढ़ाओगे ? पढ़ाने

के लिए तो तुम सब विषय पढ़ा सकते हो, परन्तु यह शिक्षा तो पहले भी राज्य की ओर से दी जा रही है। सन्तोष कुमारी ने हिन्दी रत्न आदि श्रेणियों का पढ़ाना तो एक साधन बनाया है, उसका साध्य तो कन्याओं को गृहस्थ की शिक्षा देना है। वह चिकित्सा जानती है और यह भी जानती है कि कन्याएं बड़ी होकर दोषों से गृहस्थ में दुःखी रहती हैं। गृहस्थ क्यों नरक बन जाता है तुम तो यह नहीं जानते कि बालकों तथा युवकों का सुधार कैसे हो? और वे किन रोगों तथा दोषों में ग्रस्त हैं?

सत्यव्रत—आप मुझे बतलाते रहेंगे और मैं उनको बतलाता तथा सिखलाता रहूंगा।

ज्ञानप्रकाश—पुत्र! बड़े सरल हो। यह तो विचारो कि ताजा लिया हुआ ज्ञान तुम्हारे आचरण में कैसे आवेगा? अच्छा! पहले यह बताओ कि पुत्र के जन्म लेने, विद्या पढ़ने और विवाह करने का क्या उद्देश्य है? यदि तुमने इन तीनों प्रश्नों का समाधान कर दिया और ठीक-ठीक उत्तर दिया तो मैं समझूंगा कि तुम भी नवयुवकों का सुधार कर सकोगे, अन्यथा नहीं।

सत्यव्रत बड़ी देर तक मौन रहा, अनेकों उत्तर उसके मन में आये परन्तु संशय हो जाता कि शायद पिताजी इसे अशुद्ध कह दें। यह देख ज्ञानप्रकाश ने कहा, "अच्छा, चिन्ता न करो। सन्तोष ने अपने प्रश्न का उत्तर कितनी शीघ्रता से दे दिया था। उसका कारण यह था कि उसकी रुचि उपकार, सुधार तथा संसार सेवा में है। परन्तु पुत्र! तुम्हारा ध्यान अभी इस ओर आकृष्ट नहीं हुआ वरन् तुम तो उससे अधिक पठित हो। अच्छा! रात्रि पर्यन्त इस

पर खूब मनन करलो, यदि किसी पुस्तक को देखना चाहो तो वह भी देख लो। कल फिर बता देना।"

❁❁❁

॥ ओ३म् ॥

चतुर्थ अध्याय

गृहस्थ शिक्षा को आवश्यकता

दिन सबको काम-काज करते बीत गया। सायं हुई तो बहुत से लोगों के दिल में शौक हुआ कि अब धर्मशाला चलना चाहिये। महाशय ज्ञानप्रकाश के विचार बहुत उत्तम होते हैं, अतः बहुत सी जनता आवेगी। जनता को उनके पास पहले ही चलकर बैठना चाहिए। धर्मशाला के सेवक ने भी स्थान को बहुत सुन्दर और साफ बना दिया। सायंकाल से ही जनता आनी शुरू हो गई। लगभग आठ बजे तक सारा पण्डाल भर गया। प्रकाश का भी अच्छा प्रबन्ध था। जब समय हो गया तो नगर के मुखिया ने उठकर थोड़े से शब्दों में आज के एकत्रित होने का कारण बतलाया और महाशय ज्ञानप्रकाश जी से प्रार्थना की कि आप अपने विचारों को जनता पर प्रकट कीजिये।

ज्ञानप्रकाश जी उठे। बड़ी नम्रता से हाथ जोड़कर सब जनता को नमस्ते कही और प्रभु दरबार में वेद मन्त्र पढ़ कर प्रार्थना करने के बाद बोले—"माननीय सज्जनो!

मैं कौन हूँ

यह तो 'मैं जानता हूं कि मैं हूं' मगर यह नहीं जानता कि 'मैं कौन हूं।' जैसे मैं पढ़ा, लिखा और वयोवृद्ध अनुभव रखते

हुए भी नहीं जानता, वैसे ही एक बालक भी कहता है कि 'मैं हूं' परन्तु इस बात को वह भी नहीं जानता कि 'मैं कौन हूं।' इस बात में हम दोनों समान हैं। परन्तु इससे भी आगे बढ़कर एक पागल भी यही कहता है कि 'मैं हूँ' और इस बात को वह भी नहीं जानता कि 'मैं कौन हूं'। इस प्रकार मेरा स्थान उस समय तक पागल से ऊंचा नहीं है, जब तक मैं यह नहीं जानता कि, 'मैं कौन हूं'।

बड़े-बड़े मौलवी, पण्डित और विद्वान् इस समस्या को हल करने के लिये घण्टों भाषण दे सकते हैं, परन्तु वे भी नहीं जानते कि 'मैं कौन हूं'?

बालक अभी ग्यारह दिन का होता है जब कि पिता उसका नामकरण संस्कार कराता है। उस समय पिता बालक की नासिका पर हाथ धर कर यही प्रश्न करता है कि 'तू कौन है और कहां से आया है'?

पशुओं के बच्चे भी पैदा होते हैं, परन्तु वे यह भी नहीं जानते कि हम हैं। इसका कारण यह है कि पशु को किसी ने यह नहीं बताया कि 'मैं हूं'। परन्तु मनुष्य के बच्चे को यह 'मैं' माता ने सिखाई है।

यह स्वार्थ क्यों ?

आप जानते हैं कि माता जब बालक को अन्न खाना सिखाती हैं, उससे पहले बालक केवल दुग्धाहारी होता है, अन्न खाना नहीं जानता। उस समय माता उसे गोद में उठाये हुए तक हाथ में रोटी की कोमल सी टिकिया लिए हुए उसका एक छोटा सा ग्रास तोड़कर उसे देना चाहती है, परन्तु वह नहीं लेता। तो माता उसकी किसी

बहिन अथवा भाई को बुला कर कहती है कि तुम सामने हाथ बढ़ाकर कहो, 'मैं मैं, और कभी उसे दिखाकर ग्रास उठाकर स्वयं भी 'मैं, मैं, कहती है—इससे बालक की पूर्व जन्म की वृत्ति जाग उठती है और बालक भी जब कोई वस्तु लेने आता है, 'मैं, मैं' करता है, परन्तु इससे आगे की शिक्षा माता स्वयं भी नहीं जानती, इसलिए बता भी नहीं सकती कि 'मैं कौन हूं'। अतः बालक इसी संस्कार के आधीन भोग प्राप्त करने के लिए 'मैं, मैं' करके दौड़ता है, इसलिए उनको समस्त विद्या तथा परिश्रम केवल अपने भोग प्राप्त करने के लिए होता है और वे दूसरों को नहीं देना चाहते। इससे उनका जीवन स्वार्थमय बन जाता है और संसार में अशान्ति, जाति, समाज और परिवार में अशान्ति, फलतः चारों दिशाओं में अशान्ति ही अशान्ति है।

इस लिए कहा है कि माता ही बालक के लिए सबसे बड़ा गुरु है। माता वही होती है जो सन्तान की मति बनावे। बालक सर्व प्रकार की विद्या प्राप्त करते हैं, अंग्रेजी, फारसी, उर्दू, संस्कृत, गणित, भूगोल विज्ञान। तरखान, लोहार, दर्जी, नाई, कुम्हार आदि सर्व प्रकार की शिल्प विद्या यहां तक कि उन्हें दुकानदारी, मुनीमी, हलवाईगीरी भी सिखलाई जाती है। यहां स्त्रियों को भी झाड़ू, लेपन, सीना पिरोना, भोजन बनाना और सब काम सिखाये जाते हैं परन्तु उन्हें दो विद्यायें नहीं सिखाई जाती, जो अत्यावश्यक और महत्वपूर्ण हैं।

गृहस्थ और ब्रह्म-विद्या

संसार में दु:ख का बड़ा कारण गृहस्थ और ब्रह्मविद्या की शिक्षा का न होना है। मनुष्य शेष सब ही कामों की जिनसे वह अर्थ पैदा करता है शिक्षा लेता है, परन्तु जिससे शरीर, मन, आत्मा, सदाचार की दृढ़ता का सम्बन्ध है ऐसी शिक्षाओं को वह कहीं लेता ही नहीं। यदि इन दोनों विद्याओं की शिक्षा भी ली जाये, सिद्धान्त और नियम को समझ कर विवाह हो, गृहस्थ व्यवहार हो और ब्रह्म विद्या का ज्ञान भी हो तो संसार में सर्वत्र स्वर्ग ही स्वर्ग दीखे। विवाह होने पर गृहस्थ में स्त्री पुरुष से डरती है और ब्रह्म-विद्या में भक्त भगवान से भय खाता है। जगत में सबसे अधिक कठिन कार्य यही दोनों हैं। गृहस्थी का सम्बन्ध बाहर से है, ब्रह्म-विद्या का अन्दर से, इसलिए पठित और सुशिक्षित गृहस्थी और साधक अन्दर और बाहर दोनों ओर पवित्र हो जाते हैं।

उत्तम फल

गृहस्थी का उत्तम फल सन्तान गिनी जाती है। सन्तान ही सच्ची सम्पत्ति है। यदि फल मीठा स्वादु हो, तो भी सभी उसकी कामना करते हैं और उसका तथा वृक्ष का मूल्य बढ़ जाता है। यदि फल खट्टा अथवा कटु हो तो प्रत्येक व्यक्ति उसे फेंक देता है और कोई उसे स्वीकार नहीं करता, जिह्वा से भी लगाना नहीं चाहता और न उसकी किसी को कामना ही होती है। इसी प्रकार जिस गृहस्थी ने अपनी सन्तान को मधुर बना दिया यह सन्तान सर्वत्र पूजी जायेगी और उसके कुल तथा माता-पिता का आदर से नाम लिया जाता है।

आप देखते हैं आज कल विद्या पहले की अपेक्षा अधिक है। धर्म प्रचार भी पर्याप्त है। धन भी अधिक है, परन्तु फिर भी पाप

दुःख फूट, अशान्ति और अविश्वास की वृद्धि है, प्रेम सुख तथा शान्ति नाम मात्र को नहीं। इसका कारण केवल यही है कि माता पिता अज्ञान अन्धकार में हैं। उन्हें विषय, विलास और धन कमाने की पड़ी रहती है। कन्याओं को जिन्होंने माता बनकर सर्व मर्यादाओं को पुनर्जीवित करना होता है, गृहस्थ धर्म आरम्भ से नहीं समझाया जाता। इसलिए पुत्रियां जब गृहस्थ में जाती हैं तो न तो उन्हें गृह तथा पाक-विद्या आती है और न ही घरवालों से उचित व्यवहार करना आता है। वे केवल आजकल के फैशन में ठाठ बाट बनाये रखती हैं, न सन्तान ही पैदा करना जानती हैं न उसे रखना, सम्भालना तथा पालन-पोषण करना ही जानती हैं। वे स्वयं ही अनेक प्रकार के रोगों जैसे सिरदर्द, कमर पीड़ा, गठिया, हिस्टीरिया, प्रदर आदि में ग्रस्त होती है। हिस्टीरिया तो सर्वत्र फैल गया है। प्रायः लोग उसे भूत प्रेत समझकर बड़े व्याकुल होते हैं। उसका कारण भी माता की बेसमझी, अवहेलना तथा अनुचित लज्जा है।

मैं आपको एक सच्ची घटना सुनाता हूं जो मैंने पढ़ी है। एक अमरीकन डाक्टर लिखता है कि एक उच्च परिवार के सज्जन अपनी कन्या को उसके मासिक धर्म के समय में पीड़ा से अत्यन्त पीड़ित होने पर चिकित्सार्थ मेरे पास लाये। कन्या को उस समय तीव्र और असह्य पीड़ा हो रही थी। रक्तस्राव बहुत ही कम था, उसकी तीव्र वेदना (दुःख) के कारण का मुझे कोई विशेष परिज्ञान नहीं हुआ। कन्या की आयु लगभग १७-१८ वर्ष की थी। वह कुमारी थी, इसलिए स्वाभाविक लज्जावश उसने यथार्थ बात भी

अनुचित लज्जा तथा अज्ञानका पाप

मुझे न बताई। जो औषधि दी गई, उससे कोई लाभ न हुआ। एक दिन जब उसकी दशा बहुत बिगड़ गई तो मुझे पुनः बुलाया गया। मैं गया, देखा तो उसकी अवस्था तो बड़ी शोचनीय थी। वह बेचारी बुरी तरह कराह रही थी। उसी कराहने की दशा में अचेत हो गई। थोड़ी देर में जब सचेत हुई तो उसने उचित लज्जा त्याग कर मुझ से कहा डाक्टर! यदि आपके पास इस रोग की कोई भी औषधि नहीं है तो विष तो है? न्यून से न्यून विष की ही एक मात्रा मुझे दे दो।"

उसके यह करुणा जनक वचन सुनकर मुझे अपने ऊपर अश्रद्धा तथा अपने कार्य पर अत्यन्त क्रोध आया। परन्तु इस क्रोध से क्या हो सकता था? उस कन्या को यह रोग एक वर्ष से था। कई डाक्टरों की औषधि भी सेवन कर चुकी थी, विचार करके मैंने इसके पिता से कह दिया कि इसका विवाह शीघ्र ही कर दीजिये तभी इसके स्वस्थ होने की आशा है। दैववशात् कुछ माह उपरान्त उस कन्या का मेरे ही साथ विवाह हो गया। उचित उपचार से उसका रोग दूर हो गया। रोग के कारण के विषय में जब मैंने पूछा तो देवी ने कहा कि मैं १५ वर्ष की थी, तो मैं समझती थी कि रक्तस्राव पति के संयोग हो जाने पर ही हुआ करता है और यदि इससे पूर्व हो जावे तो समझना चाहिये कि कन्या आचरणहीन है। इसलिए दो वर्ष पहले रक्तस्राव आरम्भ हुआ तो मैं डर गई। यद्यपि में जानती थी कि मैं पवित्र हूं, परन्तु मैंने सोचा कि मेरे सम्बन्धी क्या कहेंगे। इसलिए मैंने निरन्तर छः मास पर्यन्त बरफ के टुकड़े रख-रखकर और ठण्डे-ठण्डे जल के टब में बैठ-बैठ कर इसको रोकना चाहा।

दो मास तो रक्तस्राव बहुत अल्पमात्रा में ही हुआ और पुनः सर्वथा बन्द हो गया। नवें मास में बड़े वेग की पीड़ा होकर पुनः थोड़ा-थोड़ा रक्तस्राव होने लगा, परन्तु अब मैं उसे न छिपा सकी।

एक उत्तम परामर्श

यह घटना सुनकर सब लो उफ! ओह ! पुकार उठे। महाशय ज्ञानप्रकाश जी ने अपना भाषण जारी रखते हुए कहा तो भाइयो ! इस प्रकार की अनेक भूलें होने से पुत्र पुत्रियों के शरीर रोगी, उनके गृहस्थ जीवन नरकमय और उनकी सन्तान कृष (मरियल) पैदा होने से हम सब दुःखी हो रहे हैं। मैं अपने आपको बड़ा भाग्यशाली समझता हूँ कि मेरे घर जो मेरी पुत्रवधु आई है वह बहुत ही धर्मात्मा, शरीरिक चिकित्सा जानने वाली और विदुषी है। उसे अपनी वहिनों का बड़ा दर्द और दुःख है। उसकी यह इच्छा है कि जो पुत्रियां हिन्दी रत्न भूषण या प्रभाकर की परीक्षा देना चाहें वह उनको सर्वथा निःशुल्क पढ़ायेगी और साथ ही उन्हें गृहस्थ के मर्म की बात जो शरीर और अन्तःकरण को उज्ज्वल तथा निरोग रखने वाली हैं, धर्म-शिक्षा के रूप में सिखायेगी। यदि आप लोग भी हमारी तरह इसे वास्तव में दुःख समझते हैं और इसके दूर करने की आवश्यकता को अनुभव करते हैं तो मेरी पुत्री की सेवा उपस्थित है। आप स्वयं विचार कर लें और जो भाई अपनी पुत्रियों को शिक्षा दिलाना चाहें, वे अपना-अपना नाम दे देवें फिर जिस तिथि से आप चाहें मकान का पृथक् प्रबन्ध कर लें अथवा मेरे गृह में बहू के कमरे में यह कार्य हो सकता है, इसके लिए कोई किराया भी आपको नहीं देना पड़ेगा।

यह सुनकर एक पुरुष जो बहुत बुद्धिमान था और नगर में माननीय समझा जाता था, उठकर कहने लगा।

"भाइयो! हमें महाशय जी का बड़ा धन्यवाद करना चाहिये, जिनका अपना जीवन तो पहले ही निष्काम सेवा में लगा हुआ है, अब उनकी पुत्रवधु भी आते ही निष्काम सेवा का भार ले रही है और वह भी अपने आप ही बिना किसी के प्रार्थना किये। निःसन्देह हमारे नगर के अहोभाग्य हैं। सर्वप्रथम मैं अपनी पुत्री का नाम देता हूं, यद्यपि उसका विवाह शीघ्र होने वाला है, परन्तु मैं एक वर्ष के लिए उसका विवाह स्थगित कर दूंगा और पहले उसे यह शिक्षा दिलाऊंगा। परन्तु इसके साथ ही एक और निवेदन भी है यदि महाशय ज्ञानप्रकाश जी अपने नवयुवक बालकों के सुधार का भी कोई प्रबन्ध कर दें तो उस पर जितना भी व्यय होगा हम सब मिलकर देने को तैयार हैं, क्योंकि नवयुवक बहुत आचारहीन, पतित, उद्दण्ड, व्यसनी और बहु-व्ययी होकर हर तरह बिगड़ रहे हैं।"

इसके पश्चात् एक और सज्जन उठा और उसने कहा, शायद मेरे भाई का संकेत सत्यव्रत जी की ओर है ताकि वह भी नवयुवक के सुधार में लग जाये और इस प्रकार महाशय ज्ञानप्रकाश जी का सारा परिवार नगर के ही अर्पण रहे, अपना कार व्यवहार न करें।

पहला भाई—नहीं, मेरा तात्पर्य यह नहीं है, परन्तु मैं नवयुवकों का सुधार जरूर चाहता हूं।

ज्ञानप्रकाश—अच्छा, कोई बात नहीं, इस पर भी विचार कर

लेंगे, पहले पुत्रियों का प्रबन्ध हो जाये फिर पुत्रों का भी देखा जायेगा ।

इस पर बहुत से पुरुषों ने अपनी-अपनी पुत्रियों के नाम दे दिये और स्थान का प्रश्न आगामी सलाह मशवरा पर स्थगित किया गया । तत्पश्चात् सभा विसर्जित हुई ।

* * *

॥ ओ३म् ॥

पंचम अध्याय

मनुष्य विशेषता

|

कर्म मार्ग

विद्यालय | विबाह लक्ष्य

गृहस्थ कर्म का मार्ग है

सत्यव्रत दिन में जब पिता के प्रश्नों और अमृत वचनों को सुनकर उनसे विदा हुआ तो उन पर विचार करने लगा और एक विचित्र उलझन में फंस गया। कभी मन में विचार आता कि अपनें इष्ट-मित्रों से पूछूं, कभी सोचता की आज का अवकाश तो है रात्रि को सन्तोष कुमारी से वाद-विवाद करूंगा, फिर यह विचार

आया कि यदि दिन यूं ही बीत गया और सन्तोष भी इस समस्या को हल न कर सकी तो प्रातः लज्जित होना पड़ेगा और यदि सन्तोष कुमारी ने हल कर भी दिये तो भी मेरा बड़ा अपमान है। पिताजी ने यदि यह पूछ लिया कि तुमने स्वयं हल किये हैं अथवा किसी और से करवाये हैं तब झूठ तो बोलना नहीं, परन्तु सच बोलने से सुबकी होगी (घटियापन जाहिर होग) और में अयोग्य सिद्ध होऊंगा। हाँ, यदि किसी पुस्तक से समाधान मिल जाये तो बहुत अच्छा होगा। पिताजी ने तो इसकी आज्ञा भी दे दी है, परन्तु अब यह नहीं सूझता कि इन तीनों प्रश्नों का समाधान किस-किस पुस्तक में मिलेगा।

दोपहर हो गई। कुछ समाधान न मिला। अब भोजन करने को भी दिल नहीं चाहता, क्योंकि चिन्ता लगी हुई थी। तब यह नगर से बाहर निकल जाता और एकान्त स्थान में बैठकर जप और प्रार्थना करने लगा है कि हे प्रभो! मेरा पथ प्रदर्शन करो, मेरा पथ-प्रदर्शक बनो! प्रभो! ऐसे योग्य पिता का पुत्र बनाया, ऐसी योग्य स्त्री प्राप्त करायी, इतनी ऊंची विद्या दिलायी, अब मेरे पिता और स्त्री क्या कहेंगे कि कोरा बुद्ध बी० ए० हुआ है इस शर्म से वह बड़ा दुःखी हुआ।

प्रार्थना का फल

जब इस तरह कुछ भी न बना तो बड़ा व्याकुल होकर रो पड़ा और ऐसा रुदन किया कि उसे अपनी सुधि ही न रही। उंघ आ गयी और उसमें एक स्फुरणा हुई कि जन्म तो पशुओं का भी होता है और मनुष्यों का भी। पशु भी मनुष्य के समान खाते-पीते श्वास

लेते तथा सन्तान उत्पत्ति आदि करते हैं। परन्तु न तो विद्या पढ़ते हैं और न वे दान करते हैं। विद्या और विवाह की ही मनुष्यों में विशेषता है और विद्या तो केवल मनुष्य ही पढ़ सकता है और विद्या का लक्ष्य जन्म और विवाह का महत्त्व समझना ही होगा। यदि सन्तानोत्पत्ति ही विवाह का लक्ष्य होता तो पशुओं की तरह मनुष्य का भी विवाह-संस्कार न होता, मन्त्र न पढ़े जाते तथा कोई और क्रिया भी न कराई जाती और न ही वधू की खोज में इतना कष्ट उठाना पड़ता। पशुओं की तरह विषय वासना पूरी करके ही सन्तानोत्पत्ति कर ली जाती, और फिर विद्वानों तथा मूर्ख मनुष्यों के गृहस्थ में भी तो बड़ा अन्तर होता है। अतः मनुष्य के गृहस्थ का मतलब पशु से कुछ न कुछ भिन्न अवश्य है। बस, प्रभु प्रेरणा से इतना विचार पैदा होते ही आंख खुल गई।

ये बातें याद आने लगीं तो धन्यवाद किया कि अब कुछ समझ में आने लगी अर्थात् विद्या पढ़ने का अर्थ है कि पशुता से ऊपर उठना, मनुष्य बनना। मनुष्य और पशु में यही अन्तर है कि पशु परमेश्वर को नहीं जान सकता। केवल मनुष्य ही जान सकता है और मनुष्य वही है कि जो ज्ञान रखता हो। अब रहा तीसरा प्रश्न—विवाह का लक्ष्य। यह तो सन्तोष कुमारी ने बतला ही दिया था। (१) वंश वृद्धि (२) लोक तथा राष्ट्र सेवा (३) प्रभु प्राप्ति। इन तीनों में वास्तविक उद्देश्य तो प्रभु प्राप्ति ही प्रतीत होता है, शेष तीनों ही अर्थात् मनुष्य जन्म, विद्या और विवाह इसके साधन दीखते हैं। फिर पिताजी ने यह भी कहा था कि प्रभु प्राप्ति के दो और साधन हैं—(१) माता-पिता का पुत्र से तथा

(२) स्त्री का पुरुष से सम्बन्ध। पहला सम्बन्ध निष्काम कर्म अर्थात् सेवा का सूचक है और दूसरा प्रेम जो कि भक्ति का द्वार है। राष्ट्र-सेवा भी एक प्रकार की मातृ-सेवा ही है क्योंकि राष्ट्र भी तो मनुष्य की माता ही है।

अब उसका हृदय गद्-गद् (प्रसन्न) हो गया और मुख पर प्रसन्नता के चिह्न दिखाई देने लगे। भूख भी कुछ लग आई। परन्तु इस खुशी में कि सवाल हल हो गया वह सीधा दुकान पर अपने पिताजी के पास ही पहुंचा। पिताजी ने उसका मुख देखकर कहा बड़े प्रसन्न मालूम होते हो। कहां गये थे जो इतनी देर लगा दी। सत्यव्रत ने कहा कि "बस इन्हीं प्रश्नों का हल सोचने के लिये शहर से बाहर एकान्त में जा बैठा था और अन्त में हल निकाल कर ही लाया हूं।" पिता ने कहा कि शाबाश! परन्तु पुत्र तुमने तो हल नहीं किये होंगे।"

सत्यव्रत—नहीं, पिताजी! सत्य कहता हूं, मैंने ही हल किये हैं।

ज्ञानप्रकाश—अच्छा, पहले तुम भोजन कर आओ। सन्तोष ने भी अब तक भोजन नहीं किया होगा। फिर तुम्हारे उत्तर सुनेंगे।

सत्यव्रत—नहीं, पिताजी! बड़ा परिश्रम किया है। इसलिये अभी तक भोजन नहीं किया। पहले उत्तर सुन लीजिए ताकि मुझे सन्तोष हो जाये। अब चार बजने वाले हैं, वह अभी तक भूखी कैसे रह सकती है। उसने भोजन कर लिया होगा।

ज्ञानप्रकाश—पुत्र! उसने नहीं किया होगा। पहले भोजन

फिर वार्तालाप। तुम मेरी आज्ञा का पालन करो। मैं भी यहां ही हूं और तुत भी यहीं हो। उत्तर भी तुम्हारे पास ही रहेगा, कहीं भूल न जायेगा।

सत्यव्रत निरुत्तर हो गया और पिताजी की आज्ञा मान कर घर चला गया। माता जी को नमस्ते की। सन्तोष कुमारी ने उठ कर बड़े शिष्टाचार पूर्व प्रेम से सिर झुका कर नमस्ते की।

माताजी—पुत्र ! आज बहुत देर कर दी। बेचारी सन्तोष भी अभी तक भूखी ही बैठी है। कुछ तो विचार कर लिया करो। क्या करते रहे ?

सत्यव्रत—माता जी ! आज बड़ा मैदान मारा। बड़ी विजय पाई (सन्तोष से), तुमने अभी तक भोजन क्यों नहीं किया ?

सन्तोष कुमारी—गृहस्थ धर्म की यही मर्यादा है। मर्यादा पालन करना पुण्य है और उसका उल्लंघन करना महापाप है। यह कह कर सन्तोष-कुमारी ने जल का लोटा और तौलिया उपस्थित किया। हस्त, पाद और मुख धुलाया। फिर भोजन परोस कर सामने धरी चौकी पर रख दिया।

मर्यादा पालन

सत्यव्रत भोजन तो खा रहा था परन्तु उसके मन में शेख-चिल्ली के विचार दौड़ रहे थे। भोजन करते ही वह बड़ी दक्षता (फुर्ती) से दुकान पर पहुँचा परन्तु पिताजी किसी परोपकार के कार्य से कहीं गये हुए थे। सायं तक प्रतीक्षा की परन्तु वह न आये। सायं का हवन यज्ञ करने के लिये घर चले गये और फिर

रात्रि को धर्मशाला में ही सारा समय लग गया। सभा की समाप्ति पर महाशय ज्ञानप्रकाश के साथ बहुत से व्यक्ति थे। बेचारे सत्यव्रत की दिल की दिल में ही रह गई। आखिर वह भी उनके पीछे-पीछे घर चला आया।

ज्ञानप्रकाश जी रात्रि को भोजन नहीं किया करते थे। वह संयम का जीवन व्यतीत करने वाले सज्जन थे। परन्तु दूसरे दिन प्रातःकाल वह अपने घर का कमरा देखने के लिए कुछ सवेरे ही आ गये। अभी अन्धेरा था। नीचे दरवाजे पर ही वेद मन्त्रों की पवित्र और मधुर ध्वनि सुनाई दी सन्तोष कुमारी और सत्यव्रत दोनों मिलकर प्रातःकाल जागने के मन्त्र बोल रहे थे—

ओ३म् प्रातरग्नि प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रा वरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम ॥१॥
ओ३म् प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्र मदितेर्यो विधर्ता।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगंभक्षीत्याह ॥२॥
ओ३म् भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमाँ धियमुदवा ददन्नः।
भग प्रनो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवंतः स्याम ॥३॥
ओ३म् उतेदानीं भगवंतः स्यामोत प्रपित्वऽ उत मध्ये अह्नाम्।
उतोदिता मघवन्त्सूर्य्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥४॥
ओ३म् भगऽएव भगवा अस्तु देवास्तेन वयं भगवंतः स्याम।
तं त्वा भग सर्वऽइज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह ॥५॥

॥यजु० ३४।३४-३८॥

ज्ञानप्रकाश जी मंत्र सुनकर गद्-गद् हो गये और प्रभु का धन्यवाद गाने लगे कि प्रभो ! आपने बड़ी कृपा की जो मेरे गृह में

एक सच्ची आर्य पुत्री को वास दिया। परमात्मा करे यह चिरंजीवी होकर अपने आदर्श जीवन से आदर्श देवियां बनाने वाली हो! प्रभो! इसकी सब कामनायें पूर्ण हों।

थोड़ी देर बाद दरवाजा खुला। सत्यव्रत और सन्तोष दोनों ने नमस्कार की। आशीर्वाद देकर ज्ञानप्रकाश जी ने पूछा, "क्या कोई स्थान यहां ऐसा बन सकेगा कि पुत्रियां यहां पढ़ सकें ?' अन्दर गये कमरे देखे। कोई विशेष कमरा तो उस योग्य न प्रतीत हुआ, अपितु निर्वाह मात्र एक कमरा था जो आवश्यकता पर काम दे सकता था।

दोनों पिता पुत्र बाहर चले गये तो सत्यव्रत ने पूछा पिता जी (विनीत भाव से) मेरे उत्तर सुनेंगे ?

ज्ञानप्रकाश—पुत्र! मैं समझता हूं कि तुमने प्रश्न हल कर लिए और उत्तर भी प्रायः ठीक ही होंगे, परन्तु तुम्हारे इन शब्दों में "आखिर इन्हें हल कर ही लाया हूं" अभिमान पाया जाता था। यदि तुममें ऐसी योग्यता होती तो तुम सन्तोष की तरह बिना विचारे उस समय ही उत्तर दे देते, परन्तु तुम्हें तो इतने घंण्टे लग गये, भोजन तक नहीं किया। नगर से बाहर निकल गये। एकान्त में जा बैठे, फिर भी क्या तुमको बैठते ही यह उत्तर सूझ पड़े ?

सत्यव्रत—(लज्जित होकर) जी नहीं, बड़ी देर तक बड़ा व्याकुल रहा, बड़ा रोया।

ज्ञानप्रकाश—किसके सम्मुख रोये ?

सत्यव्रत—प्रभु के सम्मुख।

ज्ञानप्रकाश—फिर ?

सत्यव्रत---मुझे सहसा अपनी सुध ही न रही। मस्तिष्क में पशु और मनुष्य को तुलना की एक स्फुर्णा फूटी।

ज्ञानप्रकाश---बस पुत्र! जब तुम्हें अपनी सुधबुध ही न रही तो जो स्फुर्णा तुम्हारे मस्तिष्क में फूटी, वह स्फुर्णा को पैदा करने वाला कौन था?

सत्यव्रत---परमात्मा ही होंगे।

ज्ञानप्रकाश---अच्छा! तो तुम्हें अभी तक यही सन्देह है कि परमात्मा ही होंगे। पुत्र वह परमात्मा ही सविनः देव अर्थात् हमारी बुद्धियों के गुप्त प्रेरक हैं। जब जीवात्मा परमात्मा के अर्पण हो जाता है तब उसे अपनी सुध-बुध नहीं रहती। योगी जन इसी तरह ध्यान समाधि में परमात्मा से प्रेरणा पाते रहते हैं। यह सब की सब ही प्रभु की कृपा है। प्रभु का प्रसाद है। मनुष्य जब तक अहंभाव बनाये रखता है, बहुत दुःखी होता है। परन्तु जब वह परमेश्वर का बनकर काम करता है तो उसे सफलता और सुख मिलता है। इस बात को गांठ दे लो।

परोपकार का प्रेरक

जगत् में जो परोपकार का जीवन बिताता है, उसके शुभ कार्य प्रभु की अपनी ही प्रेरणा से होते हैं। भाग्यशालियों को पश कर्म में वह स्वयं नियुक्त करता है। यजुर्वेद में एक मन्त्र आता है---

ओ३म् कस्त्वा युनक्ति, स त्वा युनक्ति।
कस्मै त्वा युनक्ति, तस्मै त्वा युनक्ति।
कर्मणे वां वेषाय वाम्॥ (यजु० अ० १। म० ६॥)

अर्थात् कौन तुझे सद् कर्मों, शुभ कर्मों में लगता है ? वही परमेश्वर आप लगाता है ।

परोपकार के नियम

तुम विद्या पढ़े हुये हो और 'विद्या ददाति विनयं' विद्या विनय (नम्रता) देती है, इसलिये तुम्हें भी विनीत भाव से रहना चाहिये । तुम यह बात भली प्रकार समझ लो कि परोपकार के लिये परमेश्वर का नियम क्या होता है ?

(क) जितने भी देवता हैं, वे सब परोपकार का कार्य करते हैं । देखो ! सूर्य समस्त संसार को प्रकाश देता है, परन्तु इतनी दूरी पर इतना ऊंचा होते हुए भी वह अपनी किरणों को न झुकाये तो प्रकाश हम तक कैसे पहुचावे ।

(ख) जल बिना हमारा जीवन ही नहीं रह सकता । कोई औषधि वनस्पति, अन्नादि बिना जल के पैदा ही नहीं हो सकती । परन्तु जल का स्वभाव भी नम्र है और वह नीचे को ही बहता है ।

(ग) कूप (रहट) के लौटे जिनके द्वारा जल भर कर आता है, वह भरते समय ही अपना सिर जल की शरण में जाकर झुका देते हैं और जब ऊपर आते हैं और क्षेत्रों को अथवा व्यक्तियों को सिंचित करना चाहते हैं, तो भी सिर को झुका देते हैं वरन् जल उनके अन्दर ही रह जाये ।

(घ) जिस घड़े से तुम प्रतिदिन जल पीते हो, वह घड़ा यदि अपना सिर न झुकाए तो तुम गिलास कैसे भर सकोगे ?

(ङ) पृथ्वी कितना परोपकार करती है । सब का आश्रय है, परन्तु देखो ! अपना स्थान सबसे नीचे ही रखा हुआ है ।

(च) जितने भी फलदार वृक्ष हैं, जब उनमें फल लगता है तो उनकी शाखायें और फल सब झुक जाते हैं और तभी लेने वाले भी उन्हें आदर से लेते हैं।

(छ) परन्तु अन्नादि कनक, जौ, ज्वार बाजरा भी परोपकार तो करते हैं। परन्तु उनके सिट्टे (गोसे) अकड़े रहते हैं तो देख लो, उनका सिर द्रांति (छुरे) से काटा जाता है। और बैलों के पाद तले कुचल-कुचल कर दाना उनसे जुदा किया जाता है। ऐसे ही जो उपकार करने वाले अकड़फूं (अभिमानी) होते हैं उनको यही फल मिलता है।

(ज) बेरी का वृक्ष भी फल देता है। चूंकि वह बेर देने से पहले बेर लेने वाले के शरीर को कण्टकों में छील देता है और उसके वस्त्र फाड़ देता है और सबको घायल कर देता है। इसलिए लोग और बालक भी उसका फल उसको ढेले और डंडे मार-२ कर लेते हैं। ऐसेही जो परोपकारी जन उपकार करते हैं, परन्तु तर्ज्ञो-तुर्ष (अनमने)होकर, उनके साथ भी ऐसा ही व्यवहार होता है।

(झ) और जो वृक्ष बेफल होते हैं, वे सदा सिर ऊंचा रखते हैं। परिणाम यह होता है कि वे कुल्हाड़े से ही काटे जाते हैं और मकानों की छतों के नीचे शहतीर आदि बनकर सदा दबे रहते हैं और आग में जलाये जाते हैं।

सत्यव्रत अपने पिताजी के ऐसे मनोहर वचनों से जो इतने सारगर्भित उपदेश से भरे हुए थे, सुनकर मन गद्-गद् होता हुआ मुस्कराता है और मन ही मन में प्रभु का धन्यवाद गाता हुआ यह प्रार्थना करता है कि प्रभो! तूने मुझे ऐसे पिता का पुत्र बनाया

जो बड़ा अनुभवी और तेरा पूर्ण विश्वासी भक्त है। मुझे भी अपने पिता के अनुकूल बनने की सामर्थ्य दे।

इतने में दोनों कुएं पर पहुंच गए और जंगल चले गए फिर दातुन स्नानादि करके घर पर आये। यज्ञशाला में सब सामान तैयार था। सन्ध्या, हवन, आरती, कथा करने के पश्चात् ज्ञानप्रकाश ने पूछा कि अब बताओ! प्रश्न क्या थे? और तुम्हारे उत्तर क्या हैं? ताकि तुम्हारी माता और सन्तोष भी सुन लेवें। सत्यव्रत ने प्रश्न दोहरा दिये।

(१) मनुष्य के जन्म लेने का (२) विद्या पढ़ने का और (३) विवाह करने का लक्ष्य क्या है?

ज्ञानप्रकाश—सत्यव्रत तो इन प्रश्नों का हल कर चुका है, पुत्री सन्तोष! क्या तू भी जानती है?

सन्तोष कुमारी—हां पिताजी!

ज्ञानप्रकाश—अच्छा, पहले तुम ही बताओ?

सन्तोष कुमारी—निरुक्तकार ने लिखा है—

मृतश्चाह पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः।
नाना योनि सहस्राणि मयोषितानि यानि वै ॥१॥
आहाराविविधा, भुक्ताः, पीत्वा नानाविधा स्तनाः।
मातरोविविधा दृष्टाः, पितरः सुहृदस्था ॥२॥
अवांङ् मुखः पीड्यमानो जन्तुश्चैव समन्वितः ॥३॥

(निरुक्त० अ० १४। ख० ६॥)

अर्थात् माता के गर्भ में उलटे लटके हुए जीवात्मा की प्रभु से यही एक पुकार अथवा विनय है कि प्रभो! मैंने अनेक प्रकार की सहस्रों और अनन्त योनियों में नाना प्रकार के आहार भोगे, नाना स्तनों का दुग्ध पान किया, नाना प्रकार के जल (रस) पान किए और नाना स्थानों पर अनेक प्रकार के माता-पिता को देखा तथा दोस्त, मित्र-यार भी देखे और बनाये। परन्तु सबसे बड़ा दुःख और आश्चर्य यह है कि मैं अपने छुटकारे अर्थात् त्रिविध ताप और जन्म मरण के दुःख से बचाव का कोई भी उपाय नहीं सोच पाया। हे करुणामय परमेश्वर! अब मुझे एक बार इस (कुम्भी नरक) योनि से बाहर निकालो। मैं इस छुटकारे के लिए अपना प्रयत्न तब तक न छोड़ूंगा जब तक कि तेरे महेश्वर पद को प्राप्त न कर लूंगा।

इसलिए मनुष्य जन्म का उद्देश्य तो आवागमन के चक्र से छूट कर प्रभु प्राप्ति ही है जो मनुष्य योनि के बिना और किसी योनि में नहीं हो सकती। विद्या इसका साधन है। विद्या से ही प्रकृति जीव और परमात्मा (नित्य, अनित्य, सत् असत्) जाने जा सकते हैं। मनुष्य योनि में ही विद्या प्राप्त की जा सकती है और किसी योनि में नहीं।

विद्या प्राप्ति का लक्ष्य ही अपनी पहचान और जीव प्रकृति और परमेश्वर का भेद जानना है। यदि विद्या पढ़ कर यह भेद नहीं जान सका तो यह विद्या भी उसकी अविद्या ही है।

अब रहा तीसरा प्रश्न–विवाह का लक्ष्य। गृहस्थ आश्रम इस पढ़ी हुई विद्या को आचरण में लाने के लिए ही है। इसलिए यह आश्रम कर्म मार्ग है। गृहस्थ में जैसे पति (पुरुष) और पत्नी

(प्रकृति) का मिलाप होता है और वंश वृद्धि व उनकी सेवा तथा पति के सर्व परिवार की सेवा होती है, ऐसे ही प्रभु के बनाये संसार की सेवा का कार्य क्रियात्मक रूप से करने का इसी गृहस्थ आश्रम में ही सुअवसर प्राप्त होता है। इसलिए वंशवृद्धि, राष्ट्र तथा संसार सेवा और प्रभु प्राप्ति ही हमारे मनुष्य जन्म का ध्येय है।

ज्ञानप्रकाश जी यह शब्द सुन कर बड़े गद्-गद् हुए और आंखों से प्रेम के अश्रु वह निकले। फिर 'शाबाश' कह कर सन्तोष को आशीर्वाद देते हुए बोले, अब पुत्र सत्यव्रत ! तुम्हारा उत्तर क्या है?

सत्यव्रत—पिता जी ! मैंने जो उत्तर सोचा है उसका भी सारांश यही है जो इन्होंने कहा है। परन्तु जिस रीति से वर्णन किया गया है, वह मैं अब इनके मुख से ही सुनकर समझा हूं, इस वर्णन पर अब कोई भी शंका अथवा प्रश्न शेष नहीं रहता। परन्तु मेरे उत्तर पर आप शायद कई प्रश्न करते और मुझे भी उन का उत्तर देना पड़ता अथवा शायद मुझसे कोई उत्तर बन ही न आता तो आपको ही समझाना पड़ता, परन्तु फिर भी मैं धन्यवाद करता हूं कि आपके इस प्रश्न करने से मुझे अपनी विद्या और योग्यता का भी पता लग गया। दूसरा सबसे बड़ा धन्यवाद इस बात का है कि मुझे ऐसे रहस्यपूर्ण प्रश्न हल करने का ढंग आ गया।

ज्ञानप्रकाश—पुत्र ! सबसे कठिन कार्य यदि संसार में कोई हैं तो वह मनुष्य को मनुष्य बनाना हैं। जैसा

सच्चा सांचा

सांचा होगा वैसी ही वस्तु बनेगी। जो व्यक्ति किसी दूसरे को मनुष्य बनाना चाहता है तो

उसे सर्वप्रथम स्वयं मनुष्य बनना चाहिए, तब ही वह दूसरे को मनुष्य बना सकेगा। इसलिए माता-पिता यदि वास्तविक रूप में मनुष्य बने हुए हों तो बालक भी वैसा ही बनेगा । परन्तु पशु माता पिता बच्चे को पशु ही पैदा करते हैं अर्थात् पाशविक गुण ही उनमें होते हैं और जब मनुष्य माता पिता भी पशु बालक पैदा करें तो सारा संसार पशु ही प्रतीत होगा। मनुष्य कोई भी न रहेगा ।

ज्ञानप्रकाश—देवी ! तनिक यह तो बताओ कि तुम्हारा यह ज्ञान पुस्तकाधार है, अपने अनुभव का है अथवा माता प्रदत्त है ?

संकट भी एक पाठशाला

सन्तोष कुमारी—जिस दिन मेरी मंगनी हुई, तब से माताजी ने कहा था कि अब तुम एक वर्ष में संस्कार विधि देख लो। मैंने संस्कार-विधि को बड़े ध्यान पूर्वक पढ़ा और ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका कुछ-कुछ पहले ही धार्मिक शिक्षा में पढ़ा करती थी। निरुक्त का यह श्लोक ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में श्री स्वामी जी महाराज ने उद्धृत किया है ।

सत्यव्रत—मुझे भी तब पिताजी ने संस्कार-विधि पढ़ने के लिए आज्ञा की थी और मैंने पढ़ी थी परन्तु कुछ विशेष रुचि से नहीं।

सन्तोष कुमारी—इसका कारण यह है कि आप माता-पिता की छत्र-छाया में अलबेले पले। पिता जी पर सब प्रकार से ईश्वर की कृपा थीं। धन-सम्पत्ति, पशु, मिलकियत, मान आदि सब वस्तु प्राप्त थीं। दूसरे आप को कालिज में पढ़ना पड़ा। माता-पिता से जुदा रहे। मुझे तो ११ वर्ष पर्यन्त चौबीसों घन्टे माता का ही सहवास

रहा। मुझे माताजी ने ही पाला, खिलाया, पिलाया, सुलाया और स्वयं ही सब कुछ समझा समझाकर पढ़ाया और जब अपने मन की दुःखद कथा सुनाई (जो गृहस्थ आश्रम प्रवेशिका प्रथमभाग, अध्याय दो में अंकित है) तो मैं और वे दोनों ही जी भर कर और गले चिमट कर रोईं। वह दिन मेरी आंखों के सामने चित्रित हो गये। इसलिए मैंने अनुभव किया कि मुझे मेरी माता जी ने पढ़ाया और आपको अनुत्तरदायी अध्यापकों ने पढ़ाया। मुझे घर का काम भी माता जी ने अपना उत्तरदायित्व समझकर सिखलाया है। क्योंकि मुझे पराये घर को अपना बनाना था. फिर हमने निर्धनता में असहाय और केवल प्रभु के ही आश्रित होकर जीवन व्यतीत किया इसलिए मुझे संस्कार-विधि बड़े गौर से पढ़ने की आवश्यकता हुई। आपको अपने ही घर में रहना था और जिसनेकि आपके घर आना था तो आपकी ही बनकर रहना था जिससे कि आपके स्वामित्व में कुछ भी न्यूनता नहीं पड़ती थी। ईश्वर की कृपा से खाने-पीने के लिए हर प्रकार की भोग सामग्री मौजूद थी। कुछ कमाने की चिन्ता न थी।

ज्ञानप्रकाश—मेरी अब यह सलाह हैं कि संतोषकुमारी की तो इच्छा पूरी हो गई। अब उसके लिए बहुत काम मिल गया। यह अपना और दूसरों का जीवन खूब संवार लेगी और हमारे कुल का नाम उज्ज्वल करेगी। अब तुम मेरा कार्य (चार्ज) संभालो। बहीखाता का काम सीख लो और जमीनों, कृषकों, भृत्यों तथा पशु आदि का चार्ज संभालो और अपने जीवन का कार्य-क्रम (Programme) बनालो। इस तरह एकतो तुम्हारी कमाई अपनी

हो जायेगी, दूसरा यह कि काम को संभाल कर तुम मेरे स्थानापन्न हो जाओ और मैं आसानी से मुक्त हो सकूंगा। फिर हमारा यह काम भी ऐसा है कि जितनी चाहो, प्रभु भक्ति भी कर सकते हो और देश सेवा भी। स्वाध्याय और सत्सङ्ग में कोई भी विघ्न नहीं पड़ता। ज्यों-ज्यों मनुष्य शुभ कर्म करता हैं उसका अनुभव और ज्ञान बढ़ता है। घर में ही रहोगे और स्वतंत्र भी। यों मेरे निरीक्षण में सब कार्य करते हुए मेरा परामर्श भी ले सकोगे। फिर मैं कुछ महीनों में सब कार्य तुम्हें सौंप करके जनता की सेवा, रात्रि वाले प्रस्ताव के अनुसार अर्थात् नवयुवकों के सुधार के लिए कोई आश्रम स्थापित करा दूंगा और उसके निरीक्षण आदि के लिए अपनी सेवा दे दूंगा।

सत्यव्रत, उसकी माता और सन्तोष सभी यह युक्ति सुन कर बड़े प्रसन्न हुए। फिर ज्ञानप्रकाश ने कहा कि अभी इसे अपने दिल में ही रखो, क्योंकि इसमें कई मास बीत जायेंगे। पहले सन्तोष कुमारी का कार्य आरम्भ हो जावे और लोगों की भी रुचि देख लेवें कि उन्हें अपनी सन्तान के सुधार का वास्तविक प्यार है अथवा यह सब केवल सोडा वाटर का ही उबाल है।

॥ ओ३म् ॥

षष्ठम अध्याय
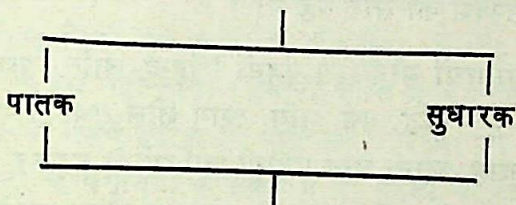
नगर के मुखिया तथा सब प्रतिष्ठित सज्जन भी जिन्हें कन्याओं की शिक्षा से वास्तविक रुचि थी, मकान ढूंढते रहे । अन्ततः शहर के मध्य में एक अच्छा विस्तृत मकान मिल गया जो उसके स्वामी ने परोपकार का कार्य समझकर निःशुल्क ही दे दिया । मकान की सफाई होने लगी तो प्रतिष्ठित सज्जनों ने विचार किया कि एक दिन निश्चित हो जावे जब कि मकान पर यज्ञ रचाया जावे, प्रार्थना होवे, सब नर-नारी आवें तथा सब की उपस्थिति में इस शुभ कार्य को प्रारम्भ किया जावे । चुनाँचे बृहस्पतिवार का दिन निश्चित किया गया । गीष्म ऋतु थी प्रातःकाल के लिए ढिंढोरा पिटवाया गया, दो दिन बीच में थे ।

बृहस्पतिवार की प्रातः को सब नरनारी और वे कन्याए जिन्हें हिन्दीरत्न और भूषण आदि की शिक्षा पानी थी, इस मकान में

एकत्र हो गये। सर्व प्रार्थना मन्त्रों, स्वस्ति वाचन और शान्ति-प्रकरण से यज्ञ की सब क्रिया आरम्भ हुई। यज्ञ होने के पश्चात् प्रार्थना हुई और संन्तोष कुमारी ने स्त्रियों को उपदेश दिया यज्ञ यह सब कार्यवाही स्त्रियों द्वारा ही हुई। पुरुष सब एक ओर पीछे बैठे रहे। उपदेश का सार यह था।

जातीय उत्थान

पूज्य माताओं और प्रिय बहनों! हिन्दु जाति यद्यपि संख्या बुद्धि, धन, भूमि, त्याग शील तथा दान आदि में अपनी अन्य पड़ौसी जातियों से बढ़कर है। धर्म, देश और जाति के नाम पर फांसी चढ़ने और जेल भरने तक के लिए भी खुशी-खुशी तैयार है, परन्तु फिर भी सबकी लताड़ और मार पछाड़ इस पर क्यों रहती है? कभी आपने मिल कर इस बात पर भी विचार किया? परन्तु ऐसे कामों के लिए तो हमें मिलकर बैठने की रुचि ही नहीं। हमारी वर्तमान अधोगति के कारण निम्न है :-

१. हिन्दु जब लाभ व हानि की सोचेगा तो केवल अपनी ही सोचेगा, जाति की नहीं। उसको लाभ हो जावे जाति चाहे गढ्ढे में जाये।

२. दया, सहनशीलता, रवा दारीं (सज्जनता) मे हटना तो पाप है, परन्तु उसमें अति करना भारी दोष है।

३. निरर्थक निन्दा तथा अपने किसी भाई के गुणों को सह न सकना।

४. कृतघ्नता।

इन कारणों से ही यह जाति मृत प्रायः हो गई है और इसका केवल अस्थि-पिंजर मात्र शेष रह गया है। एक जीवित शरीर के पांव में जब कांटा चुभता है तो तुरन्त उसकी सूचना सिर तक पहुंच जाती है और उसी समय हाथ उसको निकालने लिए जाता है। आवश्यकता पड़ने पर मुंह भी उसे दातों से निकालने का प्रयत्न करता है परन्तु किसी मृत शरीर में यदि छुरा भी घोंप दिया जाये तो वह टस से मस नहीं होता। हमारी जाति आज ऐसी ही मृत सी हो गई है मानों उसमें आत्मा ही नहीं रही। वरना जो गङ्गा आज बहती हैं वही ऋषिमुनियों के समय में भी बहती थी जिस हिमालय पर्वत की गुफाओं में ऋषि-मुनि तपस्या करते थे वे अब भी विद्यमान् हैं और जिस भारत माता ने ऊंचे से ऊंचे कोटि के ज्ञानी, दानी, शूरवीर और भक्त पैदा किये, आज भी वही भारत हमारा देश है, वही उसकी मिट्टी हैं, परन्तु हम उसका भी उपयोग अपनी इच्छानुसार नहीं कर सकते।

देशोत्थान—आज देश को तीन चीजों की बड़ी आवश्यकता है, जिनके विना हमारी उन्नति कभी नही हो सकेगी। चाहे कोई जप, तप, नमाज (प्रार्थना), रोजा, उपवास, व्रत, दान, पुण्य कितने ही क्यों न करता रहे—उनमें पहली चीज रहन सहन का ढंग, अर्थात् सफाई तथा स्वास्थ्य आदि के नियम जानना। परन्तु अवस्था क्या है ? मनुष्य गाड़ी में बैठता है, सामने लिखा है 'थूकना मना है' परन्तु इतना होते हुये भी अज्ञानी से अज्ञानी तथा बड़े से बड़ा सुपठित भी अन्दर थूक देता है और खा-पीकर वहां ही गंद (कूड़ा) डाल देता है। बालक घरों में शौच नहीं करते, अपितु

बाहर गली में, नाली में और जहां भी इच्छा होती है कर देते हैं। क्या घर, क्या दुकान, उपासनालय तक में सफाई और शुद्धि का विचार नहीं है। यह शिक्षा माता-पिता से ही क्रियात्मिक रूप में आरम्भ होती है।

दूसरी आवश्यकता है संतान को मनुष्य बनाने की। जाति की रक्षा युवकों से हो सकती है। यदि युवक दुश्चरित्र होंगे और युवतियां रोग ग्रस्त रहेगी तो वे किसी की क्या रक्षा करेंगे? रक्षा की जाती है आन की। मनुष्य-मनुष्य कहलाने का अधिकारी तब हो सकता है जब प्रत्येक देवी निर्भीक होकर भ्रमण कर सके और किसी भी युवक से अपने सतीत्व भंग होने का भय न हो, कि उस के वीर भाई उसकी रक्षा के लिए सर्वत्र उपस्थित हैं।

तीसरा कारण हमारी दुर्बलता, दासता तथा अशान्ति है। "स्त्रियों का फैशन।" क्योंकि डाक्टर हकीम, वैद्य केवल रोगों की चिकित्सा कर सकते हैं और पण्डित, मुल्लां दिमागी समझौते परन्तु इन स्त्रियों की फैशन परस्ती, जो आठ आने में तेल, आठ आने में पियर सोप और ऐसे ही पाऊडर क्रीम, लिवन्डर ले ले कर हम तो नष्ट हो रही हैं, परन्तु एक आने का दुग्ध और घी नहीं खा सकती। चाय, सोडावाटर पर जोर देती हैं, अथवा सिनेमा पर धन, निद्रा, विश्राम सब कुछ बलिदान कर देती हैं, परन्तु दान और सेवा के लिए यह एक कौड़ी भी नहीं दे सकतीं।

प्रजा प्राण एक बार ऋषि महाराज मनु के पास आये और तीन प्रश्न किये। (१) सर्व प्राणी किसके आश्रय जीवित हैं

(२) सुधार कौन कर सकता है ? (३) बिगाड़ किससे होता है ?

मनु महाराज ने उत्तर दिया कि सर्व प्राणी वायु [प्राण] के आश्रित हैं। प्राण क्या हैं। गृहस्थ आश्रम ही सब आश्रमों का प्राण है। इसके सुधार से ही सब संसार का उद्धार हो सकता है और इसी के बिगाड़ से ही सब संसार बिगड़ जाता है क्योंकि संसार के सभी प्राणी गृहस्थ के अन्न से पलते हैं और जैसा अन्न होगा वैसा ही मन बनेगा। ब्रह्मचारी, संन्यासी सब गृहस्थी ही पैदा करते हैं। गृहस्थ आश्रम को ज्येष्ठ और श्रेष्ठ आश्रम माना गया है।

परन्तु आजकल हमारे गृहस्थ जीवन की जो दशा है वह आप सब गृहस्थियों पर प्रकट है। कहीं सास बहु की नहीं बनती और कहीं पति-पत्नी से लाचार हैं, कहीं देवी चुड़ेल हैं, तो कहीं सन्तान निर्बल। मानो गृहस्थ जैसे स्वर्ग धाम को नरक धाम बना दिया गया है। कहीं स्त्रियां बेचारीं अनुचित अत्याचार से पीड़ित होकर आत्महत्या कर लेती हैं और कहीं पुरुष बेचारे नित्य नये कलह, उपद्रव से बचने के लिए विष खाकर अपना अन्त कर देते हैं। निर्लज्ज सन्तानें पैदा होकर अपने पूर्वजों को कलंकित और नष्ट कर रही हैं इन बुराईयों का कारण यह है कि कन्याओं को न तो शारीरिक सुधार की शिक्षा दी जाती है और न आत्मिक उन्नति की ही। जिस गृहस्थ आश्रम के अन्दर स्त्रियों को सारी आयु व्यतीत करनी है और अपने पुत्रों, पौत्रों, पुत्रियों तथा दुहितों की आयु भर रक्षा करनी है उनकी मर्यादा सिखानी है और इतनी वड़ी जिम्मे-

दारी का जीवन बिताना है, उस आश्रम के सम्बन्ध में उन्हें रत्ती भर भी शिक्षा नहीं दी जाती। आज का यह उत्सव केवल इसी अभिप्राय के लिए हुआ है जिस की पूर्ति के लिए पवित्र वेद मन्त्रों द्वारा भगवान् की आराधना और यज्ञ करके यज्ञ के देवता प्रजापति परमात्मा का आश्रय लिया गया है। गृहस्थी भी प्रजापति होता है। इस जगत में परमेश्वर का एक प्रतिनिधि वही है क्योंकि जैसे परमेश्वर उत्पत्ति करता, पालन-पोषण करता है और सारे संसार को नियम के अन्दर चलाता है ऐसे ही गृहस्थी भी परमेश्वर की नकल करता है। शास्त्रकारों का यह विश्वास और प्रतिज्ञा है कि यदि गृहस्थी मनुष्य अपने प्रजापति कर्त्तव्य को भली-भांति जानकर पूरा करे, तो उसकी संतान की आयु तीन सौ वर्ष तक हो सकती है। ऐसे गृहस्थी की पत्नी अपने पति के और माता अपनी सन्तान के वियोग को अपनी आंखों से नहीं देखतीं। आप सब नर नारी आशीर्वाद दें कि आज का लगाया हुआ ये पौधा एक महान् वृक्ष बनकर मीठे और स्वादु फल पैदा करने वाला हो जिससे संसार के सब प्राणी सुख भोगें।

* सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

---

* हे ईश सब सुखी हों, कोई न हो दुःखारी।
सब हों निरोग भगवान, धन धान्य के भण्डारी॥
सब भद्र भाव देखें, सन्मार्ग के पथिक हों।
दुःखिया न कोई होवे, सृष्टि में प्राणधारी॥

अर्थात् सब सुखी हों, सब रोग रहित हों, सब का कल्याण हो कोई भी दुःखी न हो।

मैं छोटी आयु की पुत्रियों को नहीं पढ़ाऊंगी जिन कन्याओं की आयु १३ वर्ष से ऊपर होगी, उनको ही शिक्षा दिया करूंगी। हां, यदि गृहस्थी स्त्रियां भी पढ़ना चाहें तो उन को भी पढ़ा सकूंगी। चूंकि यह शिक्षा निःशुल्क होगी, किसी पर रुपया पैसा का कुछ भी भार न होगा। इसलिए कोई भी पुरुष यहां न आ सकेगा। आप अपने घरों में अपनी कन्याओं तथा स्त्रियों से इस विद्यालय का सब वृतान्त जान सकते हैं। इसके काम में कोई हस्तक्षेप न कर सकेगा। प्रति मास सायं को स्त्री समाज लगा करेगी, जिसमें गृहस्थ सम्बंधी उपदेश दिए जाया करेंगे। उस दिन भले पुरुष भी आज की तरह आ सकेंगे परन्तु चुपचाप, आज की न्याईं सब कार्य-क्रम देखने तथा सुनने के लिए। इसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप करने के लिए नहीं। मेरी किसी भी त्रुटि, न्यूनता अथवा मतभेद के लिए वे मेरे धर्म पिताजी को प्रत्येक गिला दे सकते हैं अथवा सूचना दे सकते हैं और उचित सुधार करा सकते हैं।

अब चूंकि समय बहुत हो गया है, दिन बहुत चढ़ गया है, पुरुषों को अपनी दुकानों तथा देवियों को अपने घरों का काम करना है, इसलिए पढ़ने वाली कन्याएं अपना-अपना नाम तथा पूरा पता लिख कर दे जावें, कल प्रातः से पढ़ाई आरम्भ की जावेगी।

तत्पश्चात् शान्ति पाठ होकर सभा विसर्जन हुई।

❀

॥ ओ३म् ॥

सप्तम अध्याय

विद्यार्थी रूप

सींध, सन्धि, सम्बन्ध — सादा तपस्वी जीवन

सारे शहर के नर-नारियों में सन्तोष कुमारी के व्याख्यान की बहुत प्रशंसा हुई । उस दिन जो स्त्रियां नहीं आ सकी थीं उनके दिल में भी सन्तोष कुमारी के दर्शनों की अभिलाषा उत्पन्न हो गई और एक ही दिन में सारे शहर के लोग सन्तोष कुमारी से परिचित हो गये । अगले दिन प्रातःकाल ही सन्तोष कुमारी अपने घर का चौका, झाड़ू इत्यादि ऊपर के सब कामों से निवृत्त होकर और नित्य कर्म समाप्त करके विद्यालय के स्थान पर पहुंच गई । अपने ही घर से घड़ियाल, चौकी, दरी, आसन, कलम,दवात, कागज आदि सब आवश्यक समान ले आई । घड़ियाल उसने खुद ही बजाया और स्वयं ही सभी वस्तुएं ढङ्ग से रख दीं । दूसरी स्त्रियाँ तथा कन्याएं भी समय पर पहुंच गईं तथा उचित स्थान पर बैठ गईं । सन्तोष कुमारी ने पूछा—प्यारी माताओं ! आप कन्याओं के साथ इनको पहुंचाने आई हैं अथवा पढ़ने के लिए या वैसे ही पढ़ाई देखने । एक देवी ने कहा—मैं तो पढ़ने आई हूं । कई एक ने कहा हम तो आपके दर्शनों के लिए आई हैं । कुछ बोलीं—हम तो अपनी कन्याओं को पहुंचाने आई हैं । सन्तोष कुमारी ने कन्याओं का

चुनाव किया। छोटी आयु की लड़कियों को वापिस भेज दिया और बड़ी आयु की कन्याओं को रख लिया। पढ़ने वाली देवी को भी बिठा दिया और सब का नाम पूछना शुरू किया। मकान देने वाले की कन्या और उसकी माता भी आई हुई थी। इस कन्या का नाम प्रेमलता था। वह १६ वर्ष की हो चुकी थी। बहुत शर्मीली और नेक थी। उसकी मंगनी एक उच्च कुल में हो गई थी और अब उसका विवाह होने वाला था, परन्तु नए शिक्षणालय के कारण उसके पिता जी ने उसके विवाह को एक वर्ष के लिए और रोक दिया था।

सब लड़कियों ने हिन्दीरत्न की परीक्षा के लिए प्रार्थना की। १० लड़कियां उसके लिए चुनी गईं और पुस्तकें मंगवाने का प्रवन्ध किया गया। सन्तोष कुमारी ने कहा जब तक पुस्तकें नहीं आतीं, तब तक तुम्हें धार्मिक शिक्षा दिया करूंगी।

विवाहितदेवी का विवाह हुये कई वर्ष गुजर चुके थे, परन्तु अभी तक कोई सन्तान नहीं हुई थी। वह धनवान पुरुष की लड़की थी। ससुराल वाले अच्छे सम्पन्न व्यक्ति थे। परन्तु इसका पति सरकारी नौकर था अर्थात् वह एक वाबू की स्त्री थी। वस्त्र सुन्दर चमकिले तथा सूक्ष्म थे। सिरमें टेढ़ा चीर निकाला हुआथा तथा कलिप लगाया हुआ था। सन्तोष कुमारी ने बड़ी नम्रता से हाथ जोड़कर उससे पूछा बहिन जी! आप पढ़ना क्यों चाहती हो ? क्या पहले भी कुछ पढ़ी लिखी हो ? आपका नाम क्या है ?

विवाहित देवी---मेरा नाम लज्जावन्ती है। मैं सप्तम कक्षा

में पढ़ती थी जबकि मेरा विवाह हो गया और मुझे पढ़ाई छोड़नी पड़ी।

संतोष कुमारी—अब विवाहित होकर तुम पढ़ोगी तो घर का काम काज-कौन करेगा ?

लज्जावन्ती—घर सास है, जेठानी भी है और नौकर-चाकर भी हैं। मेरा विवाह हुए दो वर्ष हो चुके हैं, परन्तु मैंने घर का काम-काज नहीं किया। प्रायः मैं पितृगृह चली जाती हूं वहां भी पढ़ने के लिए पर्याप्त समय मिलता है।

सन्तोष कुमारी—बहिन जी! आपका पढ़ सकना बहुत कठिन है, क्योंकि पढ़ने व सीखने में झाड़-झड़प तथा दण्ड आदि सहना पड़ता है। इसलिए यह कन्याओं से ही निभ सकना है। वैसे आयु तो आपकी भी पढ़ने की है, कोई खास बड़ी नहीं, परन्तु आप के जीवन में जो परिवर्तन आ चुका है, उसको बदलना बड़े साहस का काम है।

लज्जावन्ती—मैं भी तो बहिन जी कुछ कमजोर नहीं हूं। जब मेरी आयु पढ़ने की है तो क्यों न पढ़ सकूंगी।

सन्तोष कुमारी—पढ़ सकना तो मस्तिष्क का काम है, दिल का काम है। शरीर का काम नहीं है। शरीर तो आपका अवश्य ही ईश्वर की कृपा से हृष्ट-पुष्ट है परन्तु हृदय भी ऐसा हृष्ट-पुष्ट हो और पढ़ने की रुचि भी हो तो बड़ी प्रसन्नता से पढ़िये। परन्तु इसके लिए आपको विद्यार्थी जीवन बनाने की आवश्यकता पड़ेगी यह साहस कर सकोगी ?

लज्जावन्ती—मैं सब कुछ कर लूंगी, आप मुझे स्वीकार कर लीजिए।

सन्तोष कुमारी—बहुत अच्छा, आपको मालूम ही है कि यह विद्यालय मैंने क्यों खोला है ?

लज्जावन्ती—हम लोगों के हित के लिए।

सन्तोष कुमारी—फिर जिस बात को देख कर मुझे दुःख होता है और उस दुःख को हटाने और सुख को बढ़ाने के लिए जो-जो बात मैं आपके हित की समझूंगी और आपसे कहूंगी, क्या आप उसे स्वीकार करेंगी ?

लज्जावन्ती—अवश्य, जब आप हमारी भलाई की बात कहेंगी तो मैं क्या इतनी मूर्ख हूं कि उसे न मानूंगी।

सन्तोष कुमारी—तब तो मैं आपको पढ़ाना स्वीकार करती हूं। परन्तु आपकी पुस्तकें मंगवाने से पहले मैं आपको विद्यार्थी रूप में देखना चाहती हूं।

दूसरी कन्याएं यह सब बातें ध्यान से सुनती रहीं। सन्तोष कुमारी ने फिर लज्जावन्ती से कहा—

सादा और तपस्वी जीवन

जब तक आप शिक्षा ग्रहण करती रहें केवल तब तक के लिए ही अपना जीवन सादा और तप का बना लें, बल्कि इसके पश्चात् भी अपने जीवन को गृहस्थ में ऐसा रखें कि आपके तपोमय जीवन का सारे परिवार में ही नहीं, अपितु सारे समीपवर्ती तथा गली-मुहल्ले वालों पर भी प्रभाव पड़े अर्थात् वस्त्र आदि इतने सादे

पहिनो कि कोई लुच्चा-लफंगा कुदृष्टि से न देख सके। जब एक स्त्री व पुरुष, चाहे वह जवान हो या बूढ़ा, अपने वस्त्र तड़क-भड़क के, केवल इसीलिए पहनता है कि मैं खूबसूरत व सुन्दर दिखाई दूं तो उसके दिल का भाव यही होता है कि दूसरे मुझे अवश्य देखें अगर दूसरे उसे देखें तो उनका क्या दोष। फिर उनके दिल में तो यह भाव होता नहीं कि मैं सभ्य पुरुषों को ही सुन्दर दिखाई दूं। क्योंकि हर एक सभ्य मनुष्य की दृष्टि, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, सदा नीचे ही रहती है। वह तो कभी किसी पराये को आंख उठा कर देखता ही नहीं, शेष रहे लुच्चे-लफंगे और बदमाश, उन्होंने कभी भी आंख नीची नहीं करनी। इसलिए जो भी किसी के रूप और सौन्दर्य को देखेगा, वह लुच्चा-लफंगा ही होगा। वरना सदाचारी स्त्री को तो अपने पुरुष और सदाचारी पुरुष को अपनी पत्नी के अतिरिक्त और कोई सुन्दर जंचता ही नहीं। जैसे माता अपने बच्चे के सिवाय किसी को सुन्दर नहीं समझती, वैसे ही सदाचारी पति को अपनी पत्नी तथा एक सदाचारी पत्नी को अपना पति ही सबसे अधिक सुन्दर दिखाई देता है। एक कथा है—

एक रानी का लड़का चाँद की तरह खूबसूरत था। एक दिन उसने एक उत्तम और प्यारी वस्तु अपनी सेविका को दी और कहा कि इसे पाठशाला में ले जाओ और जो बच्चा सबसे अधिक सुन्दर हो, उसे दे आओ। सेविका गई। उसका अपना लड़का भी उसी पाठशाला में पढ़ता था, परन्तु वह बहुत भद्दी आकृति का था। रङ्ग काला स्याह, आंख में फोला और वह भी बाहर निकला हुआ, दांत बाहर निकले हुए, नाक चपटी। सेविका ने सब लड़कों

पर दृष्टि दौड़ाई, मगर वह अपने काले-कलूटे लड़के पर ही आकर जमी। वह उसे ही वह चीज देकर चली आई। दोपहर को जब सब लड़के घर पर आये तो रानी ने राजकुमारों से पूछा कि अमुक वस्तु जो मैंने भेजी थी, खाई थी ? राजकुमार ने कहा कि मुझे तो किसी ने नहीं दी। रानी ने सेविका को बुलाकर पूछा कि तू वह चीज किसको दे आई थी, तो उसने उत्तर दिया कि आपकी आज्ञा के अनुसार जो सबसे अधिक सुन्दर लड़का मुझे दिखाई दिया उसे ही दे आई। रानी ने पूछा कि वह कौन था ? उसने उत्तर दिया कि मेरा लड़का। तो रानी ने कहा कि वह तो काला-कलूटा और बदसूरत है।

सेविका बोली—मेरी आंखों से देखो तो पता लगे। इसलिए विवाह में पाणिग्रहण के समय यह प्रतिज्ञा आती है—

(संस्कारविधि विवाह प्रकरण)

अहं विष्यामि मयि रूपमस्या वेददित्पश्यन्मनसः कुलायम्।
न स्तेयमद्मि मनसोद्मुच्ये, स्वयं श्रथ्नानो वरुणस्य पाशान्॥
अथर्व० का० १४। सू० १। म० ५७॥

अर्थात् पाणिग्रहण के समय दोनों स्त्री व पुरुष हाथ में हाथ लिए अग्नि के सम्मुख सारी भरी सभा में, माता-पिता, वृद्धों तथा सम्बन्धियों की उपस्थिति में परमेश्वर से प्रार्थना करते हुए प्रभु की वेद वाणी के द्वारा यह प्रतिज्ञा करते हैं कि मैं तेरे रूप, सुन्दर आकृति को बड़ी प्रीति से प्राप्त करके इसमें प्रेम से मुग्ध होता हूँ। वैसे ही तू मेरी स्त्री मेरे रूप में प्रेम से मुग्ध होकर धर्मानुसार अपना आचरण बना, मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं मनसे भी तुझसे कोई चोरी

नहीं करूंगा और तुझसे छिपाकर कुछ नहीं रखूंगा। स्त्री भी प्रतिज्ञा करती है कि तेरे रूप को अब मैं अपने मन और आंखों में बसा चुकी हूं। अब तेरे अतिरिक्त और किसी के रूप की मानसिक चोरी भी नहीं करूंगी और शुभ कार्यों में हस्तक्षेप करने वाले दुष्टों के बन्धनों को हटाती हूं।

लाहौर नगर में एक स्त्री बुरका ओढ़े परन्तु चमकीले-भड़कीले वस्त्र पहने जा रही थी। एक नवयुवक ने देखा तो मोहित हो गया। उसके पीछे चल दिया, गली के मोड़ पर उसने अपना बुरका उतारा और युवक ने आगे वढ़कर देखा तो८०सालकी बुढ़िया माता निकली, जिसके झुरियां पड़ी हुई थीं और सफेद बाल देखकर वह युवक लज्जित होकर वापिस लौट आया। यदि वह बूढ़ी माता ऐसे वस्त्र न पहनती तो नवयुवक के हृदय में बुरे भाव पैदा क्यों होते।

अतः प्रत्येक कुलीन नारी को अपना पतिवर्त धर्म पालन करने के लिए ऐसे साधन वर्तने चाहिएं जिनसे उनके सदाचार की स्वयं रक्षा होती रहे और कोई आंख उठाकर भी इस ओर न देखे।

बनावट तथा सजावट से अवश्य गिरावट आ जाती है

दूसरे विद्यार्थी जीवन में सुगन्धित वस्तु जैसे इतर फुलैल, साबुन आदि का प्रयोग उचित नहीं और कुमारी पुत्रियों के लिए तो महापाप है। गृहस्थियों के लिए शृङ्गार की आज्ञा है, परन्तु जो बहिन विवाहित होंगी, चूंकि उसको भी विद्यालय में दूसरी कन्याओं के साथ पढ़ना पड़ेगा, इसलिए यदि वह गृहस्थ का सा शृङ्गार करेगी तो उसे

कोई पाप नहीं परन्तु दूसरी कन्याओं पर उसका बुरा प्रभाव पड़ेगा, क्योंकि हार-श्रृङ्गार का जो सामान है, वह कामोत्पादक होता है। "विद्योपार्जन में कामजित" जितेन्द्रिय बनना परम आवश्यक है। इसलिए विवाहित बहिन के लिए कन्याओं की खातिर वह त्याग करना बड़ा पुण्य का कार्य होगा। उसे भी विद्या शीघ्र प्राप्त हो सकेगी। यह लाभ उसके लिए कोई कम नहीं।

तीसरी सिर के बाल साफ-सुथरे और मांघ सीधी हो, बाल बिखरे हुए न हों और सिर मैला न रखा जाये। मैला सिर रखने वाले की बुद्धि मलीन हो जाती है और उसे रोग भी कई प्रकार के लग जाते हैं। खारिस हो जाती है, फोड़े-फुन्सी आदि निकला आते हैं।

सीधी मांग सीधा चीर

लज्जावन्ती—बहिन जी! नगरों में तो सब स्त्रियां टेढ़ा चीर निकालती हैं, पठित देवियां भी ऐसा ही करती हैं। सीधी मांग न निकाली तो टेढ़ी निकाल ली।

सन्तोष कुमारी—टेढ़ा चीर (माँघ) निकालना हमारी प्राचीन आर्य सभ्यता के विरुद्ध है।

लज्जावन्ती—इसमें क्या दोष है? क्या यह भी पाप है?

सन्तोष कुमारी—दोष भी बड़ा है और पाप भी महान् है। पूछेंगी क्यों? परन्तु मैं आपसे ही एक बात पूछ लूं कि जब किसी पशु का बच्चा पैदा होता है तो जैसे उसके बाल होते हैं वैसे ही अन्त तक रहते हैं और माता-पिता पुत्रों के बाल तो मुण्डन के बाद भी कटवाते रहते हैं, परन्तु कन्याओं के बाल मुण्डन-संस्कार

के बाद प्रायः नहीं कटाते। केवल पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित जन अब कटवाने लगे हैं। अब तुम यह बतलाओ कि स्त्रियों के बाल लम्बे क्यों रखे जाते हैं ?

लज्जावन्ती—यह रीति चली आती है और स्त्रियां बालों से ज्यादा सुन्दर प्रतीत होती हैं।

सन्तोष कुमारी—भोली बहिन ! तो क्या माता-पिता पुत्रों की सुन्दरता नहीं चाहते और पुत्रियों को ही बालों से अधिक रूपवान देखना चाहते हैं। पुरुष और स्त्रियों के शरीर में प्रभु ने स्वाभाविक अन्तर रखा है। वह तो मैं फिर किसी समय बताऊंगी, परन्तु अब तो केवल इतना ही बतलाती हूं कि ऋषि दयानन्द जी महाराज से किसी भक्त ने प्रश्न किया कि "बालक की शिक्षा कब प्रारम्भ होती है ?" तो आपने कहा कि "बालक के उत्पन्न होने से १६ वर्ष पूर्व"। भक्त सुनकर चकित रह गया तो महाराज ने बताया कि बालक को पैदा करने वाली माता गर्भ में बालक को शिक्षा देती है और वह माता न्यून से न्यून १६ वर्ष पूर्व अपने माता-पिता से शिक्षा ग्रहण करती है। बस जिस कन्या को उसके माता-पिता ने कोई ऐसी शिक्षा नहीं दी जो बालक के लिए उपयोगी हो, वह कभी अपने बालक की माता नहीं बन सकती, वह कुमाता ही बनेगी, क्योंकि वास्तविक ज्ञान वह कभी नहीं दे सकती।

हमारे बालों का सम्बन्ध मस्तिष्क से है। बालों में कंघी फेरने से दिमाग ठण्डा रहता है, ठण्डा दिमाग ही सुविचार सोच सकता है।

सीमन्तोनयन संस्कार (सीम-अन्त-नयन)—सीमन्त का अभिप्राय पाँच ज्ञान इन्द्रियों की सन्धि के समीप अपने नयन पहुंचाना है, सन्धि का अर्थ है मेल-जोड़ सन्धि, शान्ति। नाक के अग्रभाग (नोक) की सीध में ब्रह्मरन्ध्र तक सीध निकालना। यह स्थान तालु, रन्ध्र अथवा मूर्धा ज्योति का स्थान है। माँघ निकालते हुए गर्भिणी को हर समय ज्योति का प्रकाश का ध्यान रखना चाहिए ताकि बालक के तालु रन्ध्र में ज्योति का प्रभाव पड़े। नाक का अग्रभाग प्राण का द्वार है और ब्रह्मरन्ध्र प्राण और ज्ञान का केन्द्र है। इसी स्थान पर कंघी स्पर्श करने से ब्रह्मरन्ध्र में क्रिया पहुँचती है। जो स्त्रियां प्रतिदिन माँघ निकालती हैं और बालक जब पैदा होता है तो इस तालु रन्ध्र के दो भाग होते हैं अर्थात् यह छिद्र अन्दर से खुला हुआ होता है, जब तक यह खुला रहता है नर्म होता है और टप-टप करता है। तब तक बालक को पूर्वजन्म स्मरण रहता है और वह योगी की भांति होता है। बड़ा होने पर वह छिद्र बन्द हो जाता है और उसके ऊपर की खाल सख्त पड़ जाती है। योगी फिर महान् तप और अभ्यास से खोलना चाहता है और वह ब्रह्मरन्ध्र में ही प्रभु के दर्शन करता है।

हमारी जाति की सभ्यता में सन्तान को केवल ब्रह्मप्राप्ति के लिए ही पैदा करना होता था और उसका सुगम और सरल साधन बालक के मस्तिष्क को गहरा बनाना था, ताकि वह सूक्ष्म से सूक्ष्म बात सुगमतपूर्वक समझ सके। मातायें कंघी से अपनें बालों को संवारते समय उन्हें लम्बा ले जाकर दिल में यह भाव

दृढ़ किया करती थीं, परन्तु आज मातायें इस रहस्य को नहीं जानतीं। यदि मातायें चीर ही टेढ़ी निकालेंगी तो सन्धि स्थान पर उसका कोई प्रभाव न होने से बालक भी इस विचार के पैदा नहीं हो सकते।

यदि गर्भिणी एकाग्र चित्त होकर अपने पवित्र अन्तःकरण की शुभ भावना से घृत* में अपनी छाया अर्थात् मुख देखने का यत्न करे जैसा कि शास्त्र आदेश करता है।

ओं यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि।
ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा॥
(ऋग्वेद म० २। सू० ३२। म० ५॥)

ओं येनादितः सीमानं नयति प्रजापतिर्महते सौभगाय।
तेनाहमस्यै सीमानं नयामि प्रजामस्यै जरदिष्ट कृणोमि।
(मन्त्र ब्राह्मण २५।२। गो २।७।४॥)

अर्थात् पति पूछे, हे वधु! 'किं पश्यसि!' इस खिचड़ी घृत के पात्र में क्या तू प्रजा को, मेरे लिए सौभाग्य को और मुझ पति के लिए चिरकाल पर्यन्त जीवन को देखती है?

स्त्री उत्तर देवे—प्रजां पशून् सौभाग्यं मह्यं दीर्घायुष्ट्वं पत्युः पश्यामि॥
(गोभि० गृ० २।७।३॥)

अर्थात् मैं इस खिचड़ी घृत के पात्र में आपके लिए प्रजा को पशुओं को सौभाग्य को और चिरकाल पर्यन्त जीवन को देखती हूं।

*संस्कार विधि—सीमन्तोन्नयन प्रकरण देखें।

कई जीव गर्भ में ऐसे आते हैं कि कंगाल, निर्धन माता-पिता जिनको पहले भोजन भी प्राप्त न होता था, बालक के आगमन से समृद्ध और निहाल हो जाते हैं। गृह धन-सम्पत्ति से भरपूर होने लगता है और दिनों-दिन उन्नति होती जाती है और कई जीव ऐसे होते हैं कि जिनके आने पर भी नाना प्रकार की आपत्तियाँ टूट पड़ती हैं अर्थात् धन, पशु सौभाग्य का वियोग होने लगता है। माता-पिता मर जाते हैं। यदि गर्भिणी माता बहुत सावधान रहने वाली हो तो अपने संस्कारी अथवा कुसंस्कारी बालक के भविष्य की घटनाओं से परिचित हो सकती है।

यह तो हुआ दोष। अब पाप यह है कि हमारे सिर में भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए भिन्न-भिन्न नाड़ियां हैं अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह उदारता, दान, वीरता, शूरता-कृपणता आदि-२ सबकी पृथक्-पृथक् नाड़ियां हैं। वाम पार्श्व में काम की नाड़ी है और बुद्धि का स्थान भी वही है। जो भी माता, कन्या बालक अथवा युवक, पुरुष टेढ़ा चीर निकालता है, वह अपनी काम की नाड़ी छेडता है। इससे बालक और युवकों के तो वीर्य का नाश हो जाता है और गृहस्थियों की काम वासना बढ़ जाती है। जिस किसी की काम वासना बढ़ जाती है वह सब पाप का मूल बन जाता हैं क्योंकि विषयी पुरुष सुमार्ग और सुपथ पथ पर कभी नहीं चल सकता और न सत्यवादी ही बन सकता है और न परमेश्वर में ही ध्यान लगा सकता है। भगवान् कृष्ण ने गीता में उपदेश दिया है—

काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम् ॥३-३७॥

रजोगुण से उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है । यही महाशन अर्थात् अग्नि के सदृश भोगों से न तृप्त होने वाला बड़ा पापी है इस विषय में इसको ही तू बैरी जान, यह पाप का मूल और भयंकारी है ।

इसलिये अपनी पुरानी सभ्यता के अनुसार सीधी माँग ही नारी जाति को निकालनी चाहिये ।

लज्जावन्ती—अब मेरी समझ में आ गया । मांग तो मैं सीधी निकाल लिया करूंगी । रहे वस्त्र, सो दहेज में जो बहुत से सूट मिले हैं वे सब ऐसे ही हैं, उनको क्या करूं ? शृङ्गार आदि की भी साधारण बात है, जैसा आप कहेंगी वैसा ही करूंगी ।

सन्तोष कुमारी—वस वहिन ! यही तो बात है । मैंने तो पहले ही कहा था कि विवाहित स्त्री के लिए पढ़ना ही कठिन है आपका यदि यही विचार है कि यह वस्त्र व्यर्थ हो गये तो इसका प्रतिकार हो सकता है । यदि यह विचार करो कि ओहो ऐसे सुन्दर वस्त्र माता-पिता के दिए हुए दहेज में मिले हुए मैं न पहनूं इस बारे में तो सब नई विवाहित वधुयें आनन्द लेवें और मैं अभागी वन जाऊं ? तब तो उसका कोई इलाज नहीं ? पहले आज अपने घरवालों से पक्की सलाह कर लो । अपने मन में भी पूरा-पूरा विचार कर लो कि अपना जीवन बनाने के लिए सब कुछ त्याग देना चाहिए अथवा जीवन को ही इन पदार्थों पर वार देना अच्छा है । समझ लो कि यह माया (जगत्) जल है और मन

दूध। जब दुग्ध जल में मिल जाता है तो साधारण मनुष्य के लिए उसको पृथक् करना कठिन हो जाता है बल्कि असम्भव हो जाता है। हाँ, जिन्होंने दूध को जमाकर मथ लिया वह बेशक जल में तैरता रहे जल उसे डूबा नहीं सकता और न अपने में ही मिला सकता है। वहिन जी! ऐसा करना तो बड़े वैराग्यवान् पुरुषों का काम है, हम सरीखे साधारण जीवों का नहीं। इसलिए आप निश्चय करके पहले एकचित्त हो जावें फिर प्रविष्ट हो जाना। अभी तो पढ़ाई में कई दिन हैं, पुस्तकें आने पर ही पढ़ाई आरम्भ होगी।

फिर सन्तोष सबको सम्बोधन करके बोली, यह बातें तुम सब कन्याओं ने सुन लीं अब यह समझ लो कि तुम्हें भी इन पर आचरण करना होगा। यह विद्यालय मास में चार दिन बन्द रहा करेगा। प्रति मास निरन्तर जब मुझे मासिक धर्म होगा उन दिनों में मैं न पढ़ाया करूंगी न कोई कार्य ही किया करूंगी। आपको यह भी ध्यान रहना चाहिए, पढ़ने वाली प्रत्येक देवी का जब यह काल आये तो एकान्त में अपने घर बैठे। पढ़ने के लिये भी न आये।

जो कन्यायें कुंवारी थीं, उनके माथे लज्जा से झुक गये और वह लज्जा करने लगीं और दूसरी बैठी माताओं को भी यह बात कुछ बुरी प्रतीत हुई तो सन्तोष कुमारी ने कहा कि मैं समझ गई परन्तु इस झूठी लज्जा ने ही हमारी जाति का पतन किया है। कल मैं इसके सम्बन्ध में कुछ और समझाऊंगी।

❀ ❀ ❀

अष्टम अध्याय

सम्मति—सहमति—सद्गति

लज्जावन्ती जब पाठशाला से अपने घर पहुंची, क्योंकि नव विवाहित थीं, पति सरकारी नौकर तथा कमाने वाला था, उसकी सास, जेठानी और देवरानी इत्यादि बहुत प्यार और इज्जत करती थीं तो उसे देख कर सब प्रसन्न हो गईं और उनमें से एक हंसती हुई बोली—बहिन ! जो कुछ पढ़ कर आई हो हमें भी पढ़ा दो।

लज्जावन्ती—आज तो बहुत कुछ पढ़ा और बहुत कुछ सुना। सन्तोष कुमारी तो सचमुच बहुत आदर्श देवी हैं। पता नहीं उसे माता-पिता ने क्या खा-पीकर जन्म दिया है। वह तो सात कुलों को तराने वाली देवी है।

जेठानी—कुछ तो सुनाओ, ताकि हम भी गांठ बांधें।

लज्जावन्ती—अच्छा, पहले मैं तो गांठ बांध लूं। फिर आप को भी बंधवा दूंगी। यह कहती हुई वह अन्दर चली गई और अपने कमरे जाकर उसने वे सब कपड़े उतार दिये और सादे वस्त्र पहन लिए। सिर के बालों को भी ठीक किया। कंघी से मांग सीधी कर ली। कान में इत्र का फाया था, उसे भी निकाल बाहर फेंका और वस्त्र से कांन को पोंछ कर बाहर आ गई। घर की सब देवियाँ उसका यह रूप देखकर चकित हो गईं। इतने बड़े कुल की नव विवाहित वधु ! हाय कैसे कपड़े पहन लिए और मांघ भी सीधी कर ली।

सास—पुत्री ! यह क्या कर आई हो। हम निर्धन तो नहीं हो गए। अच्छा पढ़ने गई। पहले ही दिन हमारी नाक काट दी

हो। कोई घर में आ जावे और तुम्हें इस रूप में और तुम्हारी जेठानी और देवरानी को इस रूप में देख ले तो वह क्या कहेगा, लज्जातन्ती के लिए इस घर में कुछ नहीं ? अथवा उसके माता-पिता ने उसके लिए कुछ नहीं दिया ? अथवा यह उनसे लड़ी बैठी है। पुत्री ! इससे हम किस-किसको उत्तर देंगे। तुम्हारे माता-पिता का नाम भी कलङ्कित होगा और हमारा भी। अभी तुम बच्ची हो और नव विवाहित हो। यही दिन तो खाने, पहनने और सुख भोगने के हैं। फिर जब बाल-बच्चे प्रभु की कृपा से हो गये, तब दिल बाल-बचों में लग जावेगा, उन्हीं को खिलाने पिलाने और सुन्दर बनाने से अवकाश नहीं मिलेगा। वह पुराना जमाना अब गया, अब नया जमाना है। जमाने के साथ चलना ही अच्छा होता है, नहीं तो जग हंसाई होती है। जाओ, फिर वही कपड़े पहन आओ और मांघ भी नई वधु की तरह निकाल आओ। मैं न तो तुम्हें ही सन्तोष कुमारी की ऐसी शिक्षा गांठ बांधने दूंगी और न तुम्हारी जेठानी-देवरानियों को ही गाँठ बांधने दूंगी। अच्छी सन्तोष कुमारी आई कहीं की। पहले-पहल हमारे ही घर को लग पड़ी। वह बेचारी तो सच्ची है। माता इसकी विधवा गरीब अध्यापिका, मामूली वेतन लेने वाली, मुश्किल से ही अपना पेट पाल सकी। न घर, न कोई जायदाद, न कोई वाली (मालिक) और न ही कोई बन्धु-बान्धव और जब विवाहित होकर आई तो ज्ञानचन्द महाशय के घर। जो आप खद्दर का मोटा कपड़ा पहनता है और अपने बेचारे लड़के तथा स्त्री को भी खद्दर ही पहिनाता है। बड़ा अमीर है, जमींदार है, परन्तु

भाग्य में नहीं कि अमीरी भोग सके। उसकी स्त्री बेचारी सारा दिन काम करती है। वस्त्र भी स्वयं धोती है और स्वयं भी सीती है। चक्की पीसकर उसको खिलाती है। चरखा कात कर उसके कपड़े बनाती है। गांय-भैंस के सभी काम स्वयं करती है। एक नौकर भी तो नहीं रख देता, ऐसे कंजूस हैं। निःसन्देह बड़ा धर्मात्मा है, परोपकारी है, दीन,दुखियों की सेवा करता है। अपने काम और समय की परवाह नहीं करता। ईश्वर न करे कोई आपत्ति आ जावे तो शहर के लिए जान दे देता है। बड़े-बड़े धनवानों की लड़कियां क्यों नहीं ली ? बस इसलिए कि मैं वधू को कुछ भी नहीं कराऊंगा ऐश। कुड़म और कुड़मणियां अपमानित करती रहेंगी, इसीलिए एक निर्धन विधवा की पुत्री को स्वीकार करके ले आया। यदि सादीं रहेगी तो इसकी माता निन्दा तो नहीं करेगी। इसी प्रकार सास के जो दिल में आया, एक व्याख्याता की तरह खूब व्याख्यान देती रही।

अब लज्जावन्ती हैरान थी और मन में पश्चाताप सा कर रही थी कि मैं कैसे प्रसन्न चित्त आई, कैसी प्रसन्नता से प्रत्येक शिक्षा को गांठ बांधा। सब बहिनों को भी मैं अपने जैसा बना लेती, परन्तु यहां तो खेती उगते ही पाला पड़ गया।

लज्जावन्ती बड़े लाड़-प्यार से माता-पिता के घर पली थी। यहाँ भी लाड-प्यार की कुछ न्यूनता न थी। किसी ने आज तक उसको मनमानी में हस्तक्षेप न किया था। बड़ी सरल और कोमल हृदय की थी। बेचारी फूट-फूट कर रोने लगी। जब सास ने देखा कि अभी तक यह वस्त्र बदलने नहीं गई, धृष्ट बनकर

बैठ गई तो उसने जरा कड़ी हो कर कहा। उसकी जेठानी अपने अपने स्थान से उठ कर अपनी सास की आज्ञा पालन करवाने के लिए उसे उठाने को आई तो क्या देखती है कि तो वह रो रही है।

जेठानी ने सास से कहा कि माता जी ! लज्जा तो रो रही है। सास उठकर आई तो सचमुच लज्जा की जोर से चीख निकल पड़ी। सब देवरानियां भी जमा हो गईं। उन्होंने उसे सान्त्वना दी और सास से कहा कि कोई डर नहीं। लड़की है, थोड़ी देर में रोटी खा-पीकर जब बाहर निकलेगी तो वस्त्र बदल लेगी।

चुनांचे सब चुप हो गईं और अपने चुल्हे के काम में लग गईं। परन्तु यह बेचारी अपने शोक गृह में चुप बैठी रही।

दोपहर का समय हुआ। श्वसुर रोटी खाने के लिए आया तो प्यार से पूछने लगा—"लज्जावन्ती ! आज पढ़ने गई थी ? क्या प्रविष्ट हो आई ? पुस्तकों के कितने रुपये देने हैं ? हमें स्वयं ही मंगवानी पड़ेगी अथवा अध्यापिका स्वयं ही इकट्ठी मंगवाएंगी।

लज्जावन्ती को चुप ही रहना था क्योंकि बहुएं श्वसुर के सामने नहीं बोलती, बिना बहुत ऊंचे धार्मिक विचार वालियों के। अतः उसकी सास ने कहा, हम तो ऐसी पढ़ाई से बाज आए। मैं इसे अब नहीं जाने दूंगी। आज ही हमारे लिए काफी पाठ सीख आई है।"

वह बड़े चकित हुए—पूछा—क्या बांत है ? कहने लगी भोजन कर लो फिर पूछ लेना। दूसरी बहुओं से पूछा कि क्या बात है तो वे भी सब चुप। क्योंकि सभी श्वसुरसे परदा करने वाली थीं। एक पुत्री घर में छोटी आयु की थी, जो उसकी पोती थी।

उससे प्यार से पूछा तो उसने कहा कि दादी क्रुद्ध हो रही थी। चाची रो पड़ी। फिर मेरी माता और दूसरी चाचियों ने उसे मनाया। वह कुछ न बता सकी।

इतने में ही उस पुत्री का पिता आ गया, जो लाला जी का सबसे बड़ा पुत्र बड़ा योग्य था, आते ही कहने लगा—' पिता जी! घर में देवियां चाहे पुत्रियां हों अथवा बहुएं, यदि हों तो सन्तोष-कुमारी जैसी हों। यह महाशय ज्ञानचन्द के कुल को तार देगी। महाशय स्वयं भी बड़ा धर्मात्मा आदमी है। यह सोने पर सुहागे का काम हो गया। मैं बाजार से आया तो प्रेमलता का पिता जिसने मकान दिया है, वह कह रहा था कि मैं घर भोजन करने गया। प्रेम और उसकी माता ने जो आज का समाचार दिया तो मैंने तो भाई! आज प्रतिज्ञा कर ली है कि मैं इतना बड़ा हजारों रुपये का मकान इस काम के लिए दान कर दूंगा, यदि सन्तोष-कुमारी हमारे नगर की कन्याओं और स्त्रियों का सुधार कर दे।

लज्जावन्ती के दिल की सूखी क्यारी को पानी मिल गया। दिल की मुरझाई कली खिल गई अब उसे बड़ा धैर्य हो गया और मन में प्रसन्न होकर प्रभु का धन्यवाद करने लगी। फिर दोनों पिता पुत्र में इस प्रकार बातें होने लगी।

पिता--तुम तो ऐसी प्रशंसा करते हो, परन्तु तुम्हारी माता कहती है कि मैंने पढ़ाना ही नहीं। आज का दिन हमें काफी हो गया।

पुत्र—पिताजी! माता तो वयोवृद्ध है, उसे जमाने का क्या पता? न कभी सत्संग में गई, न कोई उत्सव देखा, न पढ़ी लिखी। न कभी कोई समाचार-पत्रों को सुना। घर की चार

दीवारी में सारी आयु बीत गई। अब तो प्रकाश का युग है, बड़ी सावधानी से बोलने की आवश्यकता है। पढ़ी-लिखी कन्याएं न हों तो कोई लेता नहीं। पढ़े-लिखे पुत्र न हों तो कोई सूंघता नहीं। भला इससे पूछो, बृहस्पतिवार को सारे नगर की जो स्त्रियां आई थी, क्या वह भी गई। दूसरी बहुओं को भी नहीं जाने दिया। आप तो थे ही नहीं यहां, हम सब भाई गये थे। लज्जावन्ती भी गई थी। हम सब का विचार हो गया था कि लज्जा अवश्य पढ़े और तो न बनीं, यह तो घर में बन जावे। सन्तोष ने ऐसा अच्छा उपदेश दिया कि ज्ञानचन्द महाशय, जो स्वयं बड़ा व्याख्याता है, वह भी वाह! वाह! करने लगा।

पिता—अच्छा अब निर्णय कैसे हो? जब तुम्हारी माता नही मानती, पहले उसे मनाओ।

पुत्र—माता जी! कहिये क्या बात है?

माता—तुम अपना भोजन करो। दुकान व्यवहार सम्भालो। चौबीसों घण्टे तो काम से अवकाश नहीं मिलता। कभी भोजन भी दुकान पर मंगवाया करते हो, वहां ही खा लेते हो। तुम्हें स्त्रियों की मित-मर्यादा का क्या ज्ञान? नाक कटे तो हमारी। तुमको क्या कोई आकर गिला देगा। निन्दा करेगा। बाबा, स्त्रियों के काम बड़े नाजुक होते हैं। धी (पुत्री), बहिन और बधु परदा में अपने घर में ही रहें तो अच्छा है। हमें पढ़ा कर क्या कोई नौकरी करानी है? कोई हम निर्धन हैं? क्या तुम्हारे और तुम्हारे भाइयों की स्त्रियां जो बहुत पठित नहीं, अपने घर का कार्य व्यवहार नहीं सम्भाल रहीं, क्या उनसे तुम्हें कोई कष्ट पहुंचा है?

पुत्र—माता जी ! वास्तवबिक बात तो बताओ । यदि नाक कटती होगी तो फिर हम तुम्हारी आज्ञा मोड़ने वाले थोड़े ही हैं ।

माता—मैं कुछ नहीं कहती, तुम अपनी धर्म पत्नी से ही सब बात पूछ लो । यदि मैंने कुछ क्रोध किया हो अथवा कोई अनुचित बात कही हो तो सब वता देगी ।

पिता—अच्छा पुत्र ! अब भोजन कर लो तुम्हारी माता भी ठण्डी हो जावे । बहुएं चौका लिए बैठी हैं । मैं चला जाऊंगा तो पीछे अपनी स्त्री से और माता से सब कुछ पूछ लेना । रात्रि को जब हम सब घर पर होंगे, तो निश्चय कर लेंगे ।

(२)

दोनों पिता पुत्रों ने रोटी खाई । पिता बाहर चले गये। रास्ते में (बाजार में) चौधरी दीवानमल साहूकार (जिसने अपना मकान पाठशाला के लिए दिया था) अपनी दूकान पर तकिया लगाये बैठा था । उसने देखकर 'राम-राम' की और आदर सत्कार से बुला कर कहा, आइये सेठजी ! आइये तनिक विराजिये । सेठ साहिब बैठ गये । चौधरी दीवानमल ने कहा, सुना है कि आपकी छोटी बहू लज्जावन्ती भी दाखिल हो गई हैं । मैं तो यह सुन कर बड़ा खुश हुआ, हम यत्न करेंगे कि आपकी बहु की तरह सभी विवाहित पुत्रियां तो अवश्य दाखिल हो जावें । इससे हमारे नगर का बड़ा सुधार होगा । आज मुझे प्रेम और उसकी माता ने सुनाया कि वह कन्याओं को ऐसी वीर और पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली बनाना चाहती है कि सब को राम और सीता का युग याद आ जावे । दुष्ट उच्चका आँख उठा कर उनकी ओर न देख

सके । सब पुरातन युग को तरह अल्प व्यय, सादा भेष और स्वच्छ रहन-सहन से रहें और अपनी मित मर्यादा का ध्यान रखें ।

सेठ जी ने इसका विस्तार न पूछा, एक तो उन्हें अपनी दुकान पर जाने को उतावल (जल्दी) थी, दूसरे उसने समझा दीवानमल साहूकार स्वयं पढ़ा लिखा और बड़ा जिम्मेदार व्यक्ति है । उसकी अपनी पुत्री भी दाखिल हुई है । इसे जो अनुभव हुआ है, ठोक यही है, कहने लगा—लज्जावन्ती गई तो थी, परन्तु उसके दाखिल का निश्चय आज रात को करेंगे । घर में सब की सलाह हो जावे तो अच्छा ही है । मुझे जरा जल्दी है, अब आज्ञा दीजिए । चुनाँचे वह आज्ञा पाकर अपनी दुकान की ओर चल दिये ।

(३)

इधर पिता के चले जाने के पश्चात् पुत्र ने अपनी स्त्री से पूछा तो उसने सारी बात जो भी हुई थी कह सुनाई और कहा कि इसके वस्त्र और चोर को बदलने से ही सास जी ने बुरा मनाया और उसे लोक-लाज की बात भी समझाई और तो कुछ नहीं कहा । लज्जावन्ती अभी बच्ची है, उसे जमाने का क्या पता ? लोक-लाज क्या होती है ? बालकपन के कारण वह तनिक उदास हो गई । अब जब तक हम भी इस सारी शिक्षा का सार लज्जावन्ती के मुख से न सुन लें तब तक हम भी तो सास जी की बात लोक-लाज के ख्याल से ठीक ही मानती हैं । लज्जावन्ती से जब हम कुल समाचार सुनेंगी तो फिर कुछ कह सकेंगी । लज्जावन्ती बेचारी आपके सम्मुख मौन ही बोल सकती, आपसे पर्दा करती है, अभी कल की ही ब्याही है । आप जाएं तो हम सब पूछ रखेंगी । रात्रि को अथवा सायं

से पूर्व आप आकर मुझ से पूछ जाना, फिर निश्चय कर लेना, अथवा लज्जावन्ती का पति भी सायं को ४ बजे आ जावेगा, व स्वयं ही सब समाचार सुनकर आपको सुना देगा ।

(४)

आज लज्जावन्ती को ४ बजे सायं की बड़ी प्रतीक्षा थी । इत काल से उस बेचारी के दिल में अनेक प्रकार की तरंग उठीं । उस सोचा कि पता नहीं पतिदेव भी अपनी माता की बात मानेंगे अथव मेरा जीवन बनाने की उन्हें भी कुछ अभिलाषा है । कहा त उन्होंने स्वयं ही था अब देखना चाहिए कि क्या निश्चय होता है इत्यादि इत्यादि ।

आखिर चार भी बज गये और पांच भी बजने को हो गये परन्तु पतिदेव न आये । लज्जावन्ती दिल में कहने लगी 'दुःख क रात्रि भी कितनी बड़ी हो जाती है ।' वह यह विचारकर ही रही थ कि बाहर पतिदेव की आवाज किसी से वार्तालाप करने की अ गई. सुनकर प्रतिक्षा की बेचेनी दूर हुई, वह अन्दर आये सब नमस्ते की और बैठ गये । दफ्तर से थके हुए आये थे, बड़ी भाभ ने शीघ्रता से हाथ मुंह धुलाया और कुछ खाने को सामने रखा वह खाते-खाते कहने लगे 'लज्जावन्ती जो प्रातः गई थी क्या क आई ?' जेठानी ने कहा—अब लज्जावन्ती के भाग्य का निर्ण तुम पर ही निर्भर है ।

मां—अरे मुनीश्वर ! यदि तू मेरा पुत्र है तो मेरी नाक र ले । यह सब एक तरफ हो गये हैं । मैं जानती हूं अब मेरी दा गलने की नहीं । पहले मेरी बात को सुन ले । सब देवरानियों

सास के भय से लज्जावन्ती से कुछ भी न पूछा और यही विचार किया कि मुनीश्वर जाकर स्वयं ही पूछेगा तो हम सब सुन लेंगी।

मुनीश्वर—(लज्जावन्ती से) सुनाओ क्या बात है ? वह बेचारी चुपचाप बैठी रही। जेठानी ने जो कुछ सम्मुख हुआ था, सुना दिया। मुनीश्वर ने लज्जावन्ती से अब पूछा कि तुम वहां का समस्त समाचार अर्थात् जो तुम्हें शिक्षा मिली वह हम सबको सुना दो। यदि माता के पसन्द आई तो हम तुमको पढ़ायेंगे, नहीं तो हमें कोई नौकरी थोड़ी करानी है। अथवा कोई पढ़ने-पढ़ाने का ठेका लिया है।

मुनीश्वर पढ़ा लिखा चतुर नीतिज्ञ था। वह इतने में हीं सब ताड़ गया। नीति से सोचना उसने उचित समझा, वही किया। फिर मां से बोला—क्यों मां ! ठीक है न।

मां—हां ! ठीक है।

लज्जावन्ती—सन्तोष कुमारी ने पहले तो यह कहा कि तुम नहीं पढ़ सकोगी।

मां—(बात काटकर) देखा ! उसने भी आरम्भ से ही कह दिया। मेरी बात ठीक निकली न।

मुनीश्वर—मां पहले सारी बात तो सुन लो। वह बेचारी तो स्वयं ही ठीक-ठीक बिना किसी कमती बढ़ती के कह रही है। हाँ! फिर क्या कहा ?

लज्जावन्ती—फिर उन्होंने कहा, विद्यार्थी का जीवन सादा तपोमय जीवन होता है। तब वृत्ति एकाग्र हो सकती है और विद्यार्थी शीघ्र पढ़ सकता हैं। कुमारी कन्याएं तो इसलिए शीघ्र पढ़

लेती हैं कि वे सादा रह सकती हैं परन्तु विवाहित स्त्री ने तो हा शृङ्गार भी करना हुआ और तड़क-भड़क वाले वस्त्र भी पहनने हु और इत्र फुलैल, सुगन्धित तेल भी लगाना हुआ। इससे काम वासना बढ़ती है और गीता का यह श्लोक भी बोल कर सुनाया।*

यह काम-वासना ही सब पापों का मूल है। भड़कीले फैश के वस्त्र पहनने से दुष्ट, नीच आवारा की कुदृष्टि पड़ती है। सज्ज पुरुष लज्जा से आंखें नीचे रखता है। वह किसी का सौन्दर्य दे क्यों? और जो स्त्री फैशन बनाती है वह स्वय ही यह चाहती कि मेरे सौन्दर्य को सब कोई देखे तथा दुष्ट ही उसे देखेंगे और घ वालों को तो वास्तविक आकृति पसन्द होती ही है। कृत्रिम सौन्द तो बेगानों को दिखाने के लिए होता है। इससे स्त्री का पतिव्र धर्म भी भ्रष्ट हो जाता है और सदाचार भी कहां रह सकता है कुमारी कन्याओं को तो इत्र, फुलेल लगाना ही नहीं चाहिए। उन्

---

* ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायतेः।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥ २-६२ ॥
क्रोधाद् भवति संमोहः संमोहात्स्मृति विभ्रमः।
स्मृति भ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धि नाशात्प्रणश्यति ॥ २-६३

अर्थ--विषयों का ध्यान करते हुए पुरुष का उनमें सङ्ग होता है, सङ्ग से काम उत्पन्न होता है और काम से क्रोध उत्पन्न होता है। २-६२ ॥

अर्थ—क्रोध से मोह, मोह से स्मृति का नाश, स्मृति के नाश से बुद्धि का नाश होता है और बुद्धि के नाश से मनुष्य नष्ट हो जाता है। २-६३ ॥

लिए तो यह एक पाप है। विवाहित के लिए पाप नहीं, परन्तु पाठशाला में उसकी इस क्रिया का प्रभाव दूसरी कन्याओं पर भी पड़ेगा। टेढ़ा चीर बड़ा भारी पाप है क्योंकि वाम ओर काम की नाड़ी है, उसे खराश पहुंचने से काम की वासना बढ़ती है। ब्रह्मचर्य नष्ट होता है। सीधी मांग नाक की सोध में चोटी तक निकालने से ब्रह्मरन्ध्र में परमेश्वर के दर्शन होते हैं। शिशु (बालक) का जब तक यह स्थान कोमल और दोनों भाग पृथक्-पृथक् होते हैं, उसे पूर्व जन्म याद रहता है और वह योगी के समान रहता है। जो देवियां टेढ़ी चीर निकालेंगी, कई पीढ़ियों के बाद उनकी सन्तान निर्बुद्धि पैदा होगी। वस्त्र अच्छा परन्तु सादा और स्वच्छ पहनना चाहिये, जिससे देखने वाले माता और बहिन की दृष्टि से देखें अथवा उनका इधर ध्यान ही न जाये।

मां—फैशन तो मैं भी पसन्द नहीं करती।

सब बहुएं—माता जी! बातें तो सभी अच्छी कही हैं। हम देखती हैं कि युवा-बालिकाएं जो बड़े बनाव शृङ्गार करती हैं, अंग्रेजी पढ़ने वाली, ऊंची ऐड़ी के बूट पहन कर खड़-खड़ करती हैं, सिर नंगे, बाहु नंगे, मेमों की तरह गौन पहनकर चलती हैं तो कई नवयुवक बालक उनके पीछे हो लेते हैं और मखौल उड़ाते हैं। हमें तो लज्जा आ जाती है, परन्तु आजकल के फैशन और अंग्रेजी की शिक्षा ने उसका तो सत्यानाश ही कर दिया।

मां—इसी लिए तो मैं कहती हूँ, फैशन आजकल का मुझे अच्छा नहीं लगता।

मुनीश्वर—फिर माता जी! अब बताएं। इनमें से कौन सी बात तुम्हें अस्वीकार है।

मां—मैं तो यही कहती थी कि पढ़ना-लिखना छोकरियों का काम होता है। अब यह विवाहित हो गई है। कुछ खा पहन लेती ऐसे घर में सुख पा लेती और काम करने वाली भी है, इसे काम भी नहीं करना पड़ता। अब बाबा जैसी तुम सब की इच्छा हो वैसा करो। मैं क्या किसी को रोकती हूं।

मुनीश्वर—तो बस, अब पढ़ने दो।

इतना कह कर मुनीश्वर दुकान को चला गया। बड़े भाई ने हाल पूछा तो कहा, 'मैं तो माता जी से मनवा आया हूं'। रात्रि को जब सब घर पर इकट्ठे हुए तो फिर बात आरम्भ हुई।

मां--(अपने पति से सम्बोधन करके) फिर लज्जा का क्या विचार किया?

पिता--सुना है तुमने आज्ञा दे दी है, मान लिया है। हम तो पहले ही खुश हैं, वह पढ़ लेवे। अभी उसे कोई बन्धन भी नहीं कुछ पढ़ जावेगी, घर के सब बच्चों को बताएगी, सिखाएगी।

मां–सब जो यही चाहते थे तो मैं अकेली क्या करती? परन्तु यह दहेज के वस्त्र इसके माता-पिता ने इतने मूल्यवान सूक्ष्म, अनेक प्रकार के दिये हैं, इनको अब कौन पहनेगा? यह गल-सड़ जायेंगे और इनके लिए नये मोल लेने पड़ेंगे।

पिता—हां, यह प्रश्न भारी है। (पुत्रों से) भाई, इसे भी हल कर लो।

मुनीश्वर—मेरी भावज पहन लेंगी अथवा पाठशाला से जब वापिस घर आयेगी तो घर में पहना करेगी अथवा एक दो वर्ष पश्चात् इस्तेमाल कर लेगी, कौन सी बड़ी बात है? एक दो वर्ष में गलते थोड़े ही हैं।

भावजें—हम तो अब बिल्कुल वैसे कपड़े नहीं पहनेंगी। हमें तो अपने वस्त्रों की ही चिन्ता लग गई है। वह पिछले क्या करेंगी। हमने तो उसी समय अपनी मांग सीधी कर ली। जब हमें ज्ञान न था तब तक तो हम सब कुछ करती थीं, परन्तु अब तो हम भी पुरातन युग की स्त्रियों की तरह अपना रहन सहन रखेंगी। इनके पढ़ने से हमें तो बहुत लाभ होगा। जो-जो बात यह सीख कर आती रहेगी, हमें भी बतलाती रहेगी। जब यह कहती है कि इस बात से पाप लगता है तो हम भी पाप क्यों करें और पापी क्यों बनें?

मां—तनिक और पढ़ाओ। यह तो एक दिन का हाल है। अब सारे कुटुम्ब के कपड़े जिन पर सैंकड़ों रुपये लगा रखे हैं, रह जायेंगे और चौड़-चौपट हो जायेंगे। उन्हें क्या मैं बूढ़ी पहनूंगी? अथवा मेरी कोई पुत्रियां बैठी हैं जो उनको दे दूंगी। मुनीश्वर कहता है घर पहन लिया करेंगी। इसे तो इतनी समझ नहीं कि सिलमे-सितारे जरी किनारी के कपड़े क्या घर में बैठ कर पहनने के हैं या बाहर पहनने के? यह तो शान और मान बढ़ाने के लिए और दिखावे के लिए होते हैं। इनको कोई सारा दिन-रात थोड़े पहने रहता है? मुझे तो अब यह चिन्ता लग रही है कि इसके माता-पिता क्या कहेंगे?

ज्येष्ठ भ्राता—इसी दिखावे ने तो हमारी जाति को नष्ट कर दिया है। जिस सफेदपोष के पास धन नहीं उसे भी दिखावे के लिए ऋण उठाना पड़ता है, सम्पत्ति गिरवी रखनी पड़ती हैं। इसी फैशन ने हमारे देश को कङ्गाल और बेहाल कर दिया है। घर में

रोटी खाने को न हो परन्तु नाक जरूर रह जाए। स्त्रियों की नाक को पता नहीं क्या हो जाता है मां! अब तो यह कड़वा घूंट भरना ही पड़ेगा।

मुनीश्वर--मां! लोगों ने तो इस स्वदेश रक्षा के लिए बड़े-बड़े त्याग किये। बड़े-बड़े धनाढ्य कारावास में कष्ट झेल रहे हैं। लाखों लोगों ने अपने वस्त्र जला दिये। देखती न थी उन दिनों जब कांग्रेस का प्रचार वेग से था तो वस्त्रों की होली की जाती थी। तू भी पड़े रहने दे, देखा जावेगा जैसा समय होगा वैसा कर लेंगे।

मां--(चिड़कर) हराम का धन लगा हुआ है न? अच्छा अपने सास-ससुर को क्या उत्तर दोगे?

मुनीश्वर--माता जी! वे तो पहले ही इस विचार के हैं। वे तो न चाहते थे कि ऐसे वस्त्र देवें परन्तु तुम्हारी निन्दा के भय से उन्होंने ऐसे वस्त्र दिये। उनकी चिन्ता न करो, मैं उन्हें स्वयं समझा दूंगा।

मां--तो क्या अब खद्दर के कपड़े पहन जाया करेगी, जो ग्रामों के अनपढ़ जाट पहनते हैं? वह क्या सुन्दर लगेगी?

मुनीश्वर--अब तो खद्दर भी बहुत सुन्दर नमूने के बनने लगे हैं। देख कर पहचान न कर सकोगी। सब प्रकार के वस्त्र अब सुन्दर-सुन्दर बन गये हैं। मोटे और बारीक भी, जैसे कोई चाहे वैसे ही ले सकता है। बारीक जरा मंहगे होते हैं और मोटे सस्ते।

पिता--पुत्र! तुम तो ऐसी बातें करते हो जैसे हम कोई

कोष के स्वामी हों। एक धन व्यर्थ किया हुआ व्यर्थ कर दो, दूसरा लगाकर नया ख़रीदो और फिर देखा देखी सब घरवालों के लिए यह विचित्र बात है।

ज्येष्ठ भ्राता—पिता जी इतने बड़े धैर्यवान और उदार चित्त होकर सहस्रों, लाखों रुपये का व्यापार करने वाले ! सहस्रों रुपयों की आसामियां रह जाती हैं। कौड़ी तक वसूल नहीं होती। सहस्रों रुपयों का व्यापार में घाटा पड़ जाता है। कभी जायदाद ले लेते हैं, मूल्य कम हो जाता है। इन सब बातों को सहारा जा सकता है तो क्या इन साधारण वस्त्रों की हानि को नहीं सहारा जा सकता ? क्या यह अच्छा है कि हमारी देवियां ऐसे वस्त्र पहन-कर और बन-ठन कर बाहर जायें और दुष्ट, उच्चके उन पर कुदृष्टि डालें ? आये दिन बड़े-बड़े नगरों में इन्हीं फैशनों और वस्त्रों के कारण कुमारी कन्याओं के अपहरण किये जाने के प्रायः इस समाचार पढ़ते व सुनते रहते हैं। बड़े शहरों में बड़े नगरों में और फिर यहां से ग्रामों में यह फैशन का रोग घुस रहा है। यह तो सोलह आने सत्य है कि आचार बिगाड़ने वाली यदि कोई चीज है तो स्त्रियों का फैशन है। ईश्वर की हम पर बड़ी कृपा है कि सब कुछ रखा है, कोई कमी नहीं। मां चाहेगी तो किसी निर्धन के विवाह में इनसे ही सहायता कर दिया करेगी। मेरी गृहपत्नी और मेरी भरजाईयों का विचार तो आपने सुन ही लिया, उनको भी अब घृणा हो गई है। जब उनको इनके पहनने से प्रसन्नता नहीं होती, बलात्कार उनको इसलिए पहनाना कि हमारी रकम व्यर्थ न जाये, यह भी तो उन पर अनुचित दबाव डालना है।

पिता—अच्छा, हम तो कुछ दिन के मेहमान हैं तुम्हारी मां अथवा मैं, हानि लाभ धन सम्पत्ति सब तुम्हारी ही है। हम साथ ले जायेंगे ?

मुनीश्वर—नहीं पिता जी ! यदि आपको भ्राता जी की युक्तियुक्त और अच्छी न जंचती हो तो हम वैसा करेंगे जैसा आज्ञा देंगे। यश, अपयश, वंश का नाम और कीर्ति तो आ नाम पर है, हम तो बालक ही हैं।

पिता—नहीं पुत्र ! तुम्हारे भ्राता ने सब बात ठीक कही और जंचती भी है। चलो धन का क्या है, आनी-जानी वस्तु है आदर मान के लिए ही तो धन जोड़ा जाता है, ऐसे ही सही कोई बात नहीं।

निश्चय हो गया। लज्जावन्ती को देवरानियों ने मुस्कराते कहा बहिन ! बधाई हो, और वह भी हंस पड़ी।

❀ ❀ ❀

॥ ओ३म् ॥

नवम् अध्याय

तू भी फलक बदल कि जमाना बदल गया।

मासिक धर्म—गृहस्थ सुधार

गृहस्थ सम्बन्धी शरीर-रचना ज्ञान

पाठशाला में प्रातःकाल का घड़ियाल बज रहा था। कन्या और देवियां एकत्र हो रही थीं। थोड़ी देर में सन्तोष कुमारी

आ गईं। सब कन्याओं और देवियों ने उठकर सम्मान किया। सन्तोष ने बहुत सी कन्यायें देखकर देवियों से पूछा, आज ये और कन्यायें किस लिए आई है ? यहां पढ़ने वालीं तो दस ही थीं। छोटी पुत्रियां जो आज फिर यह देखने आ गई हैं कि क्या होता है, उनको फिर वापिस भेज दिया गया। शेष कन्याओं ने कहा, हम भी पढ़ना चाहती हैं। उनमें से कई की मातायें और कईं देवियां दर्शनार्थ भी आयी थीं। चूंकि अभी पुस्तकें नहीं आयी थीं, इसलिए आज भी सन्तोष कुमारी को धार्मिक शिक्षा देने का सुअवसर मिल गया परन्तु पूर्व इसके कि वह कुछ कहे एक बूढ़ी माता बोल उठी—

पुत्री सन्तोष ! है तू पढ़ी लिखी, परन्तु फिर भी कन्या ही है। बुरा न मानना। किन्तु अभी मेरी पोती समान हो, मैं तुझे मर्यादा और लोक लज्जा की बात बताना चाहती हूं।

सन्तोष कुमारी—माता जी ! मैं तो बड़ी खुश हूंगी, आपके चरण चूमूंगी। जो बात मैं अपनी अज्ञानता से धर्म विरुद्ध कह बैठूं तो कृपा करके मुझे अवश्य समझा दीजिए और भी जो बहिनें मुझे कुछ समझायेंगी मैं उनका बड़ा उपकार मानूंगी। मैं तो माँ ! उस गुरु की शिष्या हूं जिसका उद्देश्य है कि 'सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागनें में सर्वथा उद्यत रहना चाहिए।

मां—कुमारी कन्यायें गौएं होती हैं। उनके सामने रजोदर्शन की गुप्त बातें न कहनी चाहियें। लज्जा अच्छी होती है। कन्याओं को निर्लज्जा नहीं बनना चाहिए। विवाह होने पर अपने

आप ही सब कुछ समझ आ जाता है। यह काम माताओं का नहीं सास का होता है। मैं इतनी बूढ़ी हूं कि आज मैंने किसी अपनी पुत्री, पोती दोहती को कुछ नहीं समझाया। आजकल की दुनियाँ बड़ी सयानी है। माताओं को समझाते हुए लज्जा भी आनी चाहिए। खोटा युग है। कभी हमारे समय और इससे पहले भी हमारी सास, माता, दादी के समय में भी कन्यायें माता-पिता के घर रजस्वला न हो पाती थीं। कुमारी कन्याओं को रजोदर्शन में देख लेने से माता-पिता को नरक का पाप लगता है। ऐसा हम सदा सुनती चली आयीं हैं, इसलिए छोटी-छोटी का ही विवाह हो जाता था। अपने ससुराल में ही जब विवाह होने पर पुष्पावती होती थी, तो ससुराल में जो वयोवृद्ध होती थी वह अपने आप ही सब कुछ समझा देती थी। यह भी तो सदैव सास की आज्ञा पालन करती थी। गृह का सारा कार्य करती और मित मर्यादा रखती थी। सास-श्वसुर की आज्ञा के बिना एक पग भी बाहर न होती थीं। यहां तक कि आटा भी गूंधना होता था तो बहू सास से पूछती थी कि माता जी कितना आटा गूंधूं? दाल निकाल कर सामने रख देती थी, कितनी चढ़ाऊं माता जी? जल कितना डालूं? यह नहीं कि एक ही दिन पूछती और यह भी नहीं कि स्वयं भी न जानती हो कि घर में कितने जीव हैं? कितना आटा, कितनी दाल लगेगी? फिर भी प्रातः की प्रातः सायं की सायं प्रत्येक बहू अपनी सास से पूछ कर सब कार्य करती थीं। केवल घर के अन्दर मर्यादा मान रखने के लिए। पूर्वज देवियां भी अपनी मान-मर्यादा की इतनी पक्की होती थी इसलिए

घर में कलह उपद्रव भी न होता था। सब घरों में सब प्रकार की सुख-शान्ति होती थी। सास और बहू प्रतिदिन मिलकर चक्की पीस लेती थीं, परन्तु आज इस पढ़ाई का स्यापा आन पड़ा कि कन्याएं बड़ी आयु तक अपने घर में बैठी रहीं समझदार हो गयीं। बस अपनी इच्छा से खाना-पीना, स्वच्छन्दता से सोना, बैठना। माता भी कुछ नहीं कर सकती, बस धृष्ट हो गयी और पाप, (रजोदर्शन का) भी लगा। इस पाप का फल माता-पिता भी अपने स्थान पर भोग रहे हैं और सास-श्वसुर भी। जब बहू ब्याही आती है तो सास से नहीं बनती। कन्या बड़ी हो गई, स्वतन्त्र रह देखा, अब वह मानती ही नहीं। सास शासन करना चाहती है, अपने स्वत्व में रखना चाहती, सास समझती है मेरे जाय (पुत्र) की स्त्री है। वह कहती है कि मैं अपने माता-पिता की जाई हूं। अब तुम एक नया स्यापा खड़ा कर रही हो, पुत्री ! क्रोध न करना। मैंने पहले ही कह दिया था और आई थी इसलिए तुम्हें समझाने के लिए। कल कई देवियां मेरे घर आयीं और कहने लगीं, "सन्तोष है तो अच्छी पुत्री, अच्छे पितृकुल कीं, परन्तु कन्याओं के सामने ऐसी बातें अच्छी नहीं लगती। तुम सबसे पुरानी स्त्री हो, बड़ी हो, हम सब स्त्रियां तुमसे ही परामर्श लिया करती हैं। बच्चों की औषधि भी आपसे ही कराया करती हैं। आप यह कहने का भी कष्ट करें।" पुत्री ! न तो मेरी पुत्री पढ़ती है और न पोती। अब तो मुझे दूसरी देवियों ने भेजा है। मेरी पोतियां हैं परन्तु मैंने उनको पढ़ने नहीं दिया। घर का काम खूब करती हैं। मैं स्वयं ही अपने घर की देखभाल करती और सम-

झाती रहती हूं।

संतोष कुमारी--(सब को परस्पर बातें करते देख कर) माताओं, बहनों, तनिक आप सब ध्यान देकर बात सुनना। (सब मौन हो गयीं) जो बात धर्म की है और अनिवार्य है, भला उसके समझ लेने अथवा समझा देने में लज्जा की कौन सी बात है? इस अनुचित लज्जावश आज हमारी लाखों युवती बहिनों का जीवन सुख शरीर से सर्वदा के लिए उड़ गया है। रजस्वला होने के दिनों में की हुई असावधानियों से प्राय: स्त्रियों को कमर दर्द, गठिया, सिर दर्द, हिस्टीरिया, मिर्गी, उन्माद और सर्व प्रकार के प्रदर आदि रोग हो जाया करते हैं, इसलिए मासिक धर्म के समय किस प्रकार से रहना चाहिए और क्या न करना चाहिए आदि सर्व आवश्यक बातों का अनुभव और शास्त्रीय विधान स्त्रियों विशेषकर युवती कन्याओं को उनके कल्याणार्थ भली प्रकार समझा देना चाहिए।

शरीर रचना का भेद

परमेश्वर ने अपने पुत्र और पुत्रियों की रचना तथा आकार में कई एक भेद रखे हैं। एक लिङ्ग (जनेन्द्रिय) का दूसरा पुत्री के बड़ा होने पर लगभग १२-१३ वर्ष की आयु में मासिक रक्त का स्राव होता है, तो वास्तविक तौर पर पुत्रियों के स्तन भी उठने लगते हैं, परन्तु पुत्रों के नहीं। परमेश्वर की यह रचना बड़ी अद्भुत है। जिन अङ्गों का केवल निशान ही था, आज इस अवस्था में पहुंचते ही उनका आश्चर्य-जनक रीति से अनुभव होने लगता है।

यवनों के युग में अत्याचार से बचने के लिए ब्राह्मण नेताओं ने यह आज्ञा आदेश कर दिया कि ८ से ९ वर्ष तक की आयु की पुत्री का विवाह कर देना चाहिए। उस समय पुत्रियां भी छोटी होतीं थीं। अब १२-१३ वर्ष की आयु में जो अवस्था है, वह श्वसुराल में जाकर होती थी, तो माता पिता भला कैसे देखते। परन्तु यह प्रथा भी शास्त्र का प्रमाण बनकर पश्चात् में भी अज्ञान से निरन्तर रही। यद्यपि राज्य बदल गये और अज्ञान युग में पुत्रियों का पढ़ना भी बन्द हो गया, तो सारे भारतवर्ष में स्त्री जाति के लिए उन्नति का कोई मार्ग न रहा। परन्तु मेरी मां भी सच्ची हैं। वह अपनी मां, दादी के समय की बात ठीक कहती हैं, परन्तु इस प्रथा की आज शताब्दियां बीत गई आखिर वह अन्धकार कब तक रह सकता था। कालान्तर में परमेश्वर को सूर्य नारायण उदय करना ही था। ज्यों-ज्यों सूर्य निकला अन्धकार दूर होने लगा। आज तो सूर्य आया है फिर भी आप लोग दरियाओं की पूजा करते रहे और यह कहते रहे कि दरियाओं को किसने बांधा है? परन्तु आज वैज्ञानिकों ने बड़े-बड़े दरियाओं के भी नदी नाले बना दिये और आज कितने ही दरियां सूखे दिखाई देते हैं। हम अग्नि देवता और विद्युत देवता को नमस्कार करते रहें और उन्होंने कला-कौशल चलाकर करोड़ों, अरबों धन कमा लिया। हम पवन देवता को देवता ही समझते रहे, परन्तु अन्यों ने वायुयान आदि अनेक आविष्कार करके संसार को दास बना दिया। पर्वतों को भी गोला बारूद से टुकड़े-टुकड़े करके राज्यमार्ग बना लिये। आज इस विज्ञान रूपी सूर्य के प्रकाश में प्रत्येक व्यक्ति धूप सेकना (तापना) चाहता है, परन्तु समय के साथ-साथ चलने वाला ही सुख पा सकता है।

मासिक धर्म का समय स्त्री जीवन में एक विशेष महत्व का अवसर होता है। यह उन सुन्दर फूलों का प्राग है। वह फूल ही क्या जो संसार को मधुर फल न दे सके। फूल का होना उसका फूलना, उस पर प्राग आना, यह एक कुछ सुन्दर सुहावनी रचना है ईश्वरीय नियम से होने वाले मधुर फल के लिये ठीक इसी प्रकार का पुष्पराज स्त्री जीवन है।

मासिक धर्म

यह बात नैसर्गिक है और उत्तम फलदायक है और आवश्यक धार्मिक भी है। फिर इसके वास्तविक भेद को क्यों न माना जाये। यह कितने बड़े दुःख, लज्जा और अज्ञान की बात है। माता जी में वर्तमान शिक्षा और विशेष कर स्त्रियों की शिक्षा तो बहुत अपूर्ण और अनावश्यक है क्योंकि इसमें अब तक आवश्यक बातों का विज्ञान सिखाने का संकोच बराबर बना हुआ है।

आवश्यकता है कि युवती कन्याओं को शरीर रचना तथा गृहस्थ-आश्रम सम्बन्धी सब उपयोगी ज्ञान भली-भांति समझा दिया जावे, जिससे उनका गृहस्थ जीवन रोग-ग्रस्त न होने पावे और सच्चा स्वर्ग-धाम तथा आनन्ददायक बन सके।

आजकल जो रोगों ने स्त्रियों में घर कर रखा है उनका मूल कारण अज्ञानता ही है। अज्ञानवश, लज्जावश माताएं भी अपनी पुत्रियों को प्रायः वे बातें नहीं बतातीं जिनके समझाने की मासिक धर्म के समय अत्यन्त आवश्यकता होती है।

जब सब से पहले कन्यायें प्रथम मासिक धर्म से होती हैं, तो उस समय उन्हें किस रहन-सहन से रहना चाहिए ? इस विषय में उन्हें जैसा ज्ञान होना चाहिए वैसा नहीं होता। न तो कोई पुस्तक

ही पढ़ने को दी जाती है जिससे वह ज्ञान प्राप्त कर सके और न ही माताएं कुछ बतलाती हैं। माताओं को बताना तो एक ओर रहा, वे कन्याएं भी लज्जा के कारण अपनी माताओं को इस अवसर पर कुछ न बताकर उल्टा जैसे भी बने उसे छिपाती हैं। आप सबने गत दिवस पिता जी के व्याख्यान में, जो इस पाठशाला के सम्बन्ध में हुआ था, एक अमेरिकन कन्या का हाल सुन लिया कि इस अज्ञान के कारण उस बेचारी की क्या दशा हो गई थी कि अपना दुःख किसी से न कह कर विष खाकर मरना चाहती थी।

इस प्रकार हमारे देश में भी बहुत सी अबोध युवती कन्याएं इस मासिक रक्तस्राव के विषय में बहुत कम ज्ञान रखती हैं और उन दिनों कोई न कोई ऐसी असावधानी कर बैठती हैं, जिसका फल यह होता है कि उनका शारीरिक सौन्दर्य और स्वास्थ्य सदा के लिए नष्ट हो जाता है प्रायः देखा गया है कि अबोध युवती कन्याएं इस मासिक धर्म के समय में भी नित्य की भांति घर का सब कार्य करती रहती हैं और खान-पान, चलने फिरने में भी कोई अन्तर नहीं आने देतीं, जिसके कारण भविष्य में उनका जीवन नाना प्रकार से रोगालय बन जाता है। इसलिए यह परम उचित है कि इस विषय की सब आवश्यक बातों का ज्ञान प्रत्येक युवती स्त्री को भलीभांति और विशेषरूप से हो जाये। मासिक धर्म ही आगे चलकर स्त्रियों के सन्तानोत्पत्ति तथा शरीर स्वास्थ्य का मुख्य कारण होता है। मुझे मेरी माता ने शास्त्रोक्त रीति से सब बातें बता दी थीं जिनकी हर एक स्त्री को सावधानी करनी चाहिए (देखो गृहस्थ आश्रम प्रवेशिका चतुर्थ अध्याय)।

इस बात का भी माता पिता को बड़ा ध्यान रखना चाहिए कि हमारे देश में १२ वर्ष से १५ वर्ष की आयु तक कन्याओं को साधारण तया मासिक-धर्म आरम्भ हो जाता है। परन्तु खान-पान के गर्म तामसी होने पर अथवा नृत्य तथा गीत सिनेमा, थियेटर आदि कामोद्दीपक दृश्य देखने अथवा ऐसी कथा बात सुनने वाली, शीघ्र और काम का विचार रखने वाली अथवा जिन गृहों में विवाहित स्त्रियां बड़े बनावट शृङ्गार और नाज-नखरे से रहने वाली और हर समय अपने फैशन, सौन्दर्य का ही विचार, ध्यान बनाएं रखने वाली, शीशे कंघी पट्टी, मांघ इतर, फुलेल इत्यादि में रत रहती हैं उन घरों की युवती कन्याएं भी प्रायः शीघ्र मासिक धर्म से हो जाया करती हैं ।

स्त्री का रजस्वला होना एक प्राकृतिक नियम है, जो केवल प्रकृति की ओर से अपनें आपको सुयोग्य बनाने के लिए ही होता है। जैसे एक कृषक अपनी उपज बढ़ाने के लिये और उत्तम उपज प्राप्त करने के लिये ऋतु पर भूमि को खूब तैयार करता है और यदि उचित समय आने पर पृथ्वी को न बनाये तो उत्तम उपज की कभी आशो नहीं कर सकता। ऐसे ही जो स्त्रियां अपने आपको ऋतु काल में योग्य नहीं बनातीं उनकी उत्तम संतान की इच्छा रखना निरर्थक ही है। इसलिये स्त्रियों का अपने आपको इस योग्य बना लेना भी उनके कर्त्तव्यों पर निर्भर करता है।

सन्तान के लिये माता का कर्त्तव्य उसके रजस्वला होने के समय से ही आरम्भ हो जाता है। उनमें सर्व प्रथम काम तो यह है कि रजोवती होते ही एकान्तवास करें। चुनांचे पुरातनकाल की देवियां ऐसा

एकांत का महत्व

करती हैं। परन्तु युवती कन्याएं और नवीन युग के विचार वाली देवियां ऐसा करने से भी प्रायः लज्जा और संकोच से काम लेती हैं। यह उनकी बड़ी भूल है। एकान्त वास का प्रयोजन यह है कि रजोदर्शन के दिनों में माता का चित्त चरित्र, व्यवहार जैसा होता है, उसी के अनुसार गुण या दोष वाली सन्तान उत्पन्न होती है।

पृथक् रहने से चित्त स्थिर रहता है। हृदय में किसी प्रकार के विचार आने की शङ्का नहीं रहती, क्योंकि माता का हृदय एक चित्रकार के चित्र खींचने वाले यन्त्र के समान है। जैसे उस यन्त्र की डिब्बी हटाते ही उस के सामने वाली वस्तुओं का प्रतिबिम्ब प्लेट पर अङ्कित हो जाता है। वैसे ही रजोदर्शन के समय माता चित्त चरित्र और व्यवहार से हृदय पर पड़े हुये गुण अथवा दोष भी उसकी सन्तान में अवश्य आ जाते हैं, क्योंकि स्नान करके स्त्री जब शुद्ध हो जाती है तो उस समय ईश्वर स्त्रियों की आँखों में एक ऐसी विचित्र शक्ति पैदा कर देता है कि वह जैसे स्त्री अथवा पुरुष के दर्शन करती है उसके हृदय पटल पर उसका प्रभाव पड़ता है और उसके अनुसार ही उसकी सन्तान भी उत्पन्न होती है। उस समय इस स्त्री के मन में कोई भी अशुभ विचार पैदा न हो इसीलिए एकान्तवास की विधि का आयुर्वेद के मर्मज्ञ ऋषियों ने बलपूर्वक विधान किया है।

भोजन का प्रभाव

इस समय भोजन का प्रभाव भी बड़ा होता है। इसलिए स्त्री को इस समय रूखा, सूखा, खट्टा, बासी, बादी-कारक, गला-सड़ा भोजन कभी नहीं करना चाहिये

और तेल खटाई आदि से परहेज जरूर करना चाहिये।

विचार और रहन-सहन

एकान्तवास में वह अपने मन में सदा पवित्र विचार रखे और घर के उन कामों को न करे जिनके करने से प्रायः भार उठाना, नीचे-ऊपर आना जाना, अधिक बोलना, कुछ परिश्रम करना पड़ता है, क्योंकि ऐसा करने से उन के मन और शरीर पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

प्रसन्नता की आवश्यकता—प्रत्येक रजस्वती को इन दिनों सदा प्रसन्न चित्त रहना चाहिये।

शुद्धि

ऋतुकाल में स्नान तो न करे, परन्तु फिर भी शुद्धि का विशेष ध्यान रखे। जो वस्त्र इस समय प्रयोग में लाये जायें, वे धुले हुये, साफ-सुथरे और सर्वथा स्वच्छ होने चाहिएं। प्रायः मूर्ख स्त्रियाँ इस समय मैले से मैले वस्त्र प्रयोग में लाती हैं। यह प्रथा अत्यन्त हानिकारक है। इससे योनि के अनेक रोग हो जाते हैं। घर में माताओं को रजःवृत्ति स्त्री को आराम पाने और प्रसन्न रहने में पूरा-पूरा सहयोग देना चाहिए। उन दिनों में उससे कभी भी कोई कटु अथवा असत्य भाषण नहीं करना चाहिए।

❀ ❀ ❀

ओ३म्

दशम अध्याय
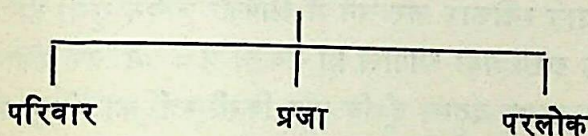
प्रेमलता की माता प्रतिदिन अपनी पुत्री के साथ पाठशाला में आया करती थी। एक तो उसका गृह भी समीप था और दूसरे उसके भी एक पुत्री थी। इससे उसका मोह भी बड़ा था। तीसरे उसे सन्तोष कुमारी की बातें बड़ी सुहावनी लगती थी। वह दिल में यह कहा करती थी कि सन्तोष मेरी जाया [पुत्री] होती तो मैं अपने भाग्य को कितना सराहती। जब कभी सन्तोष बोलना आरम्भ करती प्रेमलता की माता की आंखों में प्रेम के अश्रु आ जाते और उसके श्रोत्र तथा चक्षु सन्तोष कुमारी की ओर लग जाते एक दिन वह अपने पतिदेव से भी सन्तोष कुमारी की प्रशंसा करके कहने लगी कि हमारी प्रेम को भी सन्तोष अपने समान बना दे तो मेरी मनोकामना पूरी हो जावेगी।

चौधरी दीवानमल साहूकार (उसके पति) ने उत्तर दिया कि तुम संतोष से कह दो कि प्रेम को अपनी बहिन बनाकर सब कुछ सिखा दे।

दूसरे दिन जब पाठशाला लगी तो पुस्तकें भी आ गई थी, इसलिए पढ़ाई आरम्भ हो गई थी, तो प्रेमलता की माता सन्तोष

से कहने लगी—आज मैं मन में एक इच्छा लेकर आई हूं, वह तुम पूरी कर दो, मेरा जीवन सफल हो जायेगा।

संतोष कुमारी—माता जी ! यदि मेरे, आपकी किसी धर्म-पूर्वक बात स्वीकार कर लेने से आपका जीवन सुखी हो सकता है तो मुझे इसमें क्या आपत्ति हो सकती है ? मैं हर प्रकार हाजिर हूं। परन्तु यह बतला दूं कि यदि किसी स्त्री का जीवन सफल हो सकता है तो केवल पतिव्रत धर्म के पालन करने से हो सकता है। स्त्री की मुक्ति पुरुष की अपेक्षा शीघ्र हो सकती है। इतनी शीघ्र की पुरुष देखता रह जाये और स्त्री स्वयं भी मुक्त हो जाये और पति को भी मुक्त करा दे। स्त्री का स्थान और स्त्री को जो शक्ति परमात्मा ने दी है वह किसी और को नहीं मिली। अच्छा अब बताओ कि आपके मन की क्या इच्छा है।

प्रेमलता की माता—कहते हैं कि भले जीव जो शब्द मुंह से एक वार निकालते हैं, जैसे पूरा ही निभाते हैं। तुमने मुझे माता शब्द से सम्बोधन किया है। अब मुझे 'माता' ही समझ और मैं तुम्हें अपनी पुत्री प्रेम के समान ही जानूंगी। बस यही मेरी इच्छा है।

सन्तोष कुमारी—माता जी ! जो बात आपने कही वह सत्य पुरुषों की सी ही बात है। सत्य पुरुष जो शब्द मुख से निकालते हैं, उसे पूरा करते हैं। भले पुरुष तो संसार में बहुत हैं, परन्तु सत्य पुरुष विरले। दूसरे 'माता' पुकारने से नहीं बनती और न ही माता और पुत्री बनाई ही जाती है क्योंकि पुत्री माता से

उत्पन्न होती है और यह सम्बन्ध पूर्व कर्मानुसार स्वाभाविक होता है। शास्त्रमर्यादानुसार लोकव्यवहार में परस्पर बर्ताव के लिए जो शब्द निश्चित है वह सब को एक जैसे ही प्रयोग करने पड़ते हैं। मैं करूं तो भी वैसा, कोई और करे तो भी वैसा। सब अपने से बड़े को माता शब्द से, बराबर वाली को बहिन शब्द से, छोटी को पुत्री शब्द से पुकारने की शैली मनुष्य मात्र के लिये शास्त्रों ने कथन की है। अर्थात् समस्त संसार की मुझ से बड़ी सब स्त्रियां सामान्य रूप से मेरी माताएं हैं परन्तु विशेष रूप से तो मेरी 'माँ' ही माता है, जिसने नौ मास पर्यन्त मुझ को अपने गर्भ में धारण कर अनेक कष्ट सहन किए और कई प्रकार के त्याग किए। प्रसव के महान दुःख को मेरे कारण सहन किया। अपना पेट काटकर, अपने सुखों को तिलान्जलि देकर मेरा लाड़न-पालन किया और प्रसन्नता पूर्वक अपने प्रेम की लोरी देकर मेरा रोम-रोम प्रेम से भर दिया और मुझे पढ़ाया-लिखाया और मति देकर 'त्रिमत' बनाया, इसलिए अब आप वह मनोकामनाएं बतलाएं जो मुझे पुत्री बनाने से पूरी हो सकती हैं। उसे मैं वैसा ही पूरा करने का पूरा प्रयास करूंगी और यह जो वचन मेरे मुख से निकल रहा है उसे पूरा कर दूंगी, क्योंकि इसको निभाना ही मेरा कर्त्तव्य धर्म बन जाएगा।

प्रेमलता की माता—बस इस प्रेम को अपनी बहन समझ कर इसे भी अपने जैसा बना दो, वही मेरे मन की अभिलाषा है।

सन्तोष कुमारी—माता जी ! सब बरावर की छोटी लड़कियां

मेरी बहिनें ही हैं। मैं क्योंकि गृहस्थिनी होती हुई भी अभी त
ब्रह्मचारिणी ही हूं, इसलिए ये सभी बराबर की अथवा छोटी मे
बहिनें हैं। मैं अभी 'पुत्री' किसी को नहीं कह सकती और
कहती हूं ('अभी ब्रह्मचारिणी' का शब्द सुनकर सब की स
चकित रह गयीं)। जो कन्यायें और स्त्रियाँ मुझ से कुछ सीख
आई हैं, उनको तो मैं विशेष रूप से बहिनें समझती हूं। परन्तु
बात मन लगाकर एक चित्त से सुना करेंगी और वैसा आचरण
करने के लिए मेरे सामने उत्सुक रहेंगी बस वह 'मैं' हूं और व
मेरी तरह बन जाएगी। समुद्र में नमक का ढेला डाल दो व
तुरन्त ही घुल कर समुद्र बन जावेगा और फिर यदि उस में व
की गुड़िया डाल दो तो उसके रोम-रोम में जल भर जावेगा औ
जब बाहर निकाली जावेगी तो उससे जल भी झर-झर गिरेगा
परन्तु वह समुद्र व पानी बन न सकेगी, इसी तरह एक पत्थर
एक टुकड़े को पानी में डाल दो और वह सौ साल उसमें पड़ा र
तो भी उसके अन्दर एक बूंद पानी भी न भरेगा। जब निकले
वैसा का वैसा पत्थर होगा। अथवा यूं समझो परमेश्वर
आकाश से अमृत वर्षा की। गन्दी नाली को तो वर्षा के पानी ने सा
करने का उपकार किया, परन्तु गन्दे पानी ने अपने स्वभाव से उ
निर्मल जल को भी गन्दा कर दिया। खेत में वह जल गया त
खेत ने उसे अपने गर्भ में धारण कर लिया और उससे हरियाली
अनाज, वनस्पति, फल-फूल पैदा होने लगे, संसार के जीवन ब
गये। पथरीली जमीन ने उसे लेकर और भी आगे निकाल दि
और स्वयं सूखी की सूखी बनी रही। रेत ने पीया तो थोड़े (चीर

देर के लिए जम गई। फिर उसे चट ही कर गई, वैसी को वैसी रेत ही रही। समुद्र में चिरकाल की प्यासी सीप जिसे समुद्र का जल तृप्त न कर सका, मुख खोले इच्छुक स्वाति नक्षत्र में वर्षा की प्रतीक्षा में थी, उसने वह बिन्दु प्राप्त की और बन्द करके समुद्र की तह में चली गई और जब बाहर निकली तो मोती पैदा कर दिया। आपने कभी सुना होगा कि जिन वनों में चन्दन के वृक्ष होते हैं, उनसे जब पवन चलती है तो चन्दन की सुगन्ध से आस-पास के सारे वृक्ष ही चन्दन के हो जाते हैं। परन्तु वह वृक्ष जो सारयुक्त नहीं जैसे केला, बांस, पपीता आदि उन पर चन्दन का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिए माता जी ! अब यह कार्य इन सब बहिनों, कन्याओं और देवियों का है, एक मन लगाकर पढ़ें सुनें और सीखें।

उनके मन में यह भाव भी हो कि सचमुच 'त्रिमत' कहला सकें। वंशवृद्धि, राष्ट्रीय सेवा और परमेश्वर प्राप्ति यह तीनों कार्य इस जन्म में करके अपने मनुष्य जन्म को सफल कर सकें। अपने माता-पिता की और पति के कुल को तारने वाली बन सकें। हमारे जीवन 'जीवित जीवन' बन जायें, जो मर कर भी 'जीते' नाम से याद किये जावें।

फिर प्रेमलता को सम्बोधन करके कहा, क्यों प्रेमलता ! बत-लाओ, तुम्हारी भी ऐसी इच्छा है ? अथवा केवल तुम्हारी माता की ही ऐसी इच्छा है। बहिन ! सब ही माता-पिता यही चाहते हैं कि हमारी सन्तान जगत् में नाम पैदा करे। परन्तु सब माता-

पिता की यह इच्छा पूर्ण नहीं होती। बनना तुम्हीं को है, पढ़ना सीखना तुमने है। मैं तो तुम्हारी आंखों को देख सकती हूं कि तुम कुछ मेरी ओर देख रही हो। तुम्हारे श्रोत्र और मन का मुझे कुछ पता न लग सकेगा।

प्रेमलता—मन तो मेरा भी यही चाहता है, यही कहता है कि काश! मैं भी सन्तोष कुमारी होती। परन्तु अब यदि संतोष-कुमारी नहीं बनी तो सन्तोष कुमारी की शिष्या, सच्ची शिष्या तो बन दिखाऊं।

सन्तोष कुमारी—शाबाश बहिन! तब तो परमेश्वर तुम्हारी और मेरी लाज रखेगा।

सन्तान सुधार

वह यह तो कह रही थी कि दो चार देवियां बच्चे गोद में लिए हुए आ गयीं। प्रत्येक ने बैठते ही बालकों को छोड़ दिया। वे इधर-उधर क्रीड़ा करने लगे कभी-कभी किसी वस्तु को स्पर्श करते, कभी एक साथ मिल कर शोर करने लग जाते और कभी उछलते, कूदते। एक माता का बच्चा रोने लगा। वह उसे उठाकर भ्रमण करने लगी। फिर बात सुनने के लिए आ बैठी तो बालक तुरन्त रो पड़ा, फिर बेचारी उठाकर घूमने लगी। बात कान में न पड़ी, तो फिर आकर बैठ गई, बालक फिर रोने लगा। यह देखकर सबको बुरा प्रतीत हुआ। कई माताएं कहने लगीं इसे बाहर ले जाओ।

संतोष कुमारी—बहिनों और माताओं ! यही बात विचार करने की है। जितनी बहिनें बच्चों के साथ आई हैं, आई तो हैं कुछ लाभ उठाने के लिए, मगर चूंकि सन्तान को सोच समझकर उत्पन्न नहीं किया और उनको वश में रखने का ज्ञान नहीं कि बच्चे पाले-पौसे और सिखाये कैसे जाते हैं, इसलिए वे अपने ही बच्चों के कारण अब कोई लाभ नहीं उठा सकती। उनका ध्यान उधर ही रह जाता है। यदि एक स्त्री अपने जाय को भी आप नहीं सम्भाल सकती, तो वह संसार में और क्या उन्नति करेगी ? आगामी जन्म में क्या वह ऋषि-मुनि अथवा राजा-रानी बन जावेगी ?

कई माता-पिता अपने बच्चों से अधिक मोह करते हैं। बालक जब उत्पन्न हुआ उसके जन्म से ही उसे प्यार देने लगे। यहां तक कि बालकों को मोह अथवा प्यारसे हर समय गोदमें उठाये रखा। परिणाम यह होता है कि (क) जो पिता बालक को हर समय गोद में उठाये रखते हैं, वह चाहे घर आयें अथवा दुकान पर जायें अथवा वायु सेवन को जायें अर्थात् २४ घण्टों में से बहुत सा समय वह उसे उठाये प्यार किए रखते हैं। वह पिता स्वयं भी आलसी और प्रमादी हो जाते हैं। उनसे कोई भी कार्य नहीं हो सकता। वे बेचारे कार्य व्यवहार के लिए वायु सेवन के लिए, यात्रा के लिए भी विवश हो जाते हैं। उत्सव, सत्सङ्गों से वंचित रह जाते हैं। मोह के कारण घर से बाहर नहीं निकल सकते। साथ ले जावें तो छोटे बच्चे हैं, माता-पिता के अतिरिक्त सम्भाले नहीं जा सकते और यदि अकेले जावें तो बच्चों के लिए उदास हो

जाते हैं इसीलिए उनके पांवों में बन्धन की जंजीर पड़ जाती है।

(ख) और जो माता बच्चे को हर समय गोद में सवार रखती है तो बच्चा अयोग्य चिड़चिड़ा और उत्साहहीन बन जाता है। अब देखो 'त्रिमत' को जब उसका विवाह हो जाये तो कौन सी तीन प्रकार की मति की आवश्यकता पड़ती है—

त्रिमत

पहली मती—पति और उसके परिवार से कैसा बर्ताव करे, जिससे वह सदा शान्त रहें और उन्नति करें।

दूसरी मति—सन्तान को कैसे पैदा करना चाहिए ? किस आवश्यकता को पूरा करने के लिए पैदा करना चाहिए और कैसे बनाना चाहिए ?

तीसरी मति—आवागमन के चक्र से अपने छुटकारे का साधन कैसा हो ?

इन तीन प्रकार की मति रखने वाली ही सच्ची 'त्रिमत' इस लोक और परलोक में सुख प्राप्त करती है।

यह सुनकर बच्चों वाली माताओं को विशेष कर रोने वाले बच्चे को गोद में उठाये रखने वाली माता को लज्जा सी आई, परन्तु क्रोध आया तो बोली क्या करूं ? बच्चा चुप न करे, नीचे न बैठे तो क्या करूं ? यत्न तो बहुत करती हूं कि कुछ सुन लूं, परन्तु (बालक को गाली देकर) यह बैठने तो नहीं देता। इसलिए तो कहीं सत्संग में जा नहीं सकती। यह भी भला हमारे बस की बात है ? क्या मैंने बालक को कुछ कह दिया या सिखला दिया है कि तू नीचे न बैठकर, रो पड़ा कर। यह सफाई सुनकर सब हंस पड़ीं, परन्तु वह बेचारी दुःख से रो पड़ी।

सन्तोष कुमारी—बहिन ! तुम्हारा दोष नहीं, दोष तो हमारी जाति का है और हमारी परतन्त्रता और दासता का है, तभी तो मैं प्रतिदिन यही कहती हूं कि कन्याओं के लिए माता का उत्तर-दायित्व बहुत बड़ा है। यदि कन्यायें योग्य और सुशिक्षित बन जावें तो उनमें वीर सन्तान उत्पन्न करने की योग्यता और सामर्थ्य आ जावे।

चार छाननियां

जरा ध्यान देकर सुनो. मनुष्य के मस्तिष्क में चार छाननियां लगी हुई हैं। जब हरि-कीर्तन या सत्संग की वार्ता होती है तो वह ऊपर-ऊपर वाली छाननी (मोह) में पड़कर उसे उधर सत्सङ्ग में नहीं जाने देती। कभी कुटुम्ब परिवार का बहाना, कभी मित्र-बन्धु और सखी सहेलियों का, कभी अपने शरीर का बहाना तैयार रहता है। यदि कभी दैवयोग से सत्संग में जाने का अवसर मिल भी गया चाहे अपनी रुचि से, चाहे किसी के धकेले हुए और भजन में भी बैठ गये तो लोभ वाली छाननी में पड़ गये। वह बृत्ति को स्वार्थ की ओर ले जाती है। इससे मनुष्य कुछ भी नहीं सुन पाता। भाग्यवश इस छाननी में से भी निकल गई तो सुन लिया और फिर वह क्रोध की छाननी में पड़ गई तो सुना हुआ टिक न सका, उछल गया-यदि प्रभु कृपा हो गई और वह नीचे निकल गया तो टिक गई। परन्तु काम की छाननी में पड़ने से इच्छा, तृष्णा, कामना और वासनाओं ने उस पर अपना आचरण ही न करने दिया। बस हो गया कोरे का कोरा और क्रियाहीन। अहङ्कार इन चारों के साथ रहता है। इसी से चेष्टा होती है। मनुष्य बेचारा विवश है जन्म-जन्मान्तरों के कुसंस्कार साथ लिए हुए आता है।

यह देवियां अब पीछे आई हैं। कल मैंने रजोदर्शन के सम्बन्ध में जो बातें तुम्हें बताई थी अब प्रत्यक्ष देख लो। यह उन दिनों की ही असावधानी का फल है कि ऐसे बच्चे पैदा होते हैं। मर्यादा पालन करने और सावधानी करने में कुछ भी मूल्य नहीं लगता, परन्तु पहले ही यह बातें सीख ली जावें तो बिना मूल्य दिये कितना सुख मिले।

बच्चे वाली माता—बहिन जी ! यदि कोई ऐसा टोना है तो हमें भी बतला दें।

सन्तोष कुमारी—बहिन जी ! इतना समय कहां से लाऊं? जिन्होंने कल सुना उनसे पूछ लेना। वे आपको बता देंगी। मैं तो प्रतिदिन नई-नई बातें ही बताऊंगी। कन्याओं के सीखने के लिए एक बात तो नहीं असंख्य बातें हैं।

दूसरी देवी—बहिन जी ! हर रोज तो हम नहीं आ सकतीं। घर का कामकाज, बच्चों को खिलाना-पिलाना और सुधारना भी हुआ।

सन्तोष कुमारी—आप अपनी मुहल्ले की लड़कियों से पूछ लिया करें और साप्ताहिक सत्सङ्ग में अवश्य ही आया करें। आवश्यक बातें मैं तब ही बताया करूंगी।

(जब यह पुस्तक उर्दू में लिखी गई तब भारत परतन्त्र था। अब ईश्वर की कृपा से भारत स्वतन्त्र हो गया। परन्तु दासता के भाव अभी तक दिमाग में वर्तमान हैं। प्रभु करे यह भाव शीघ्राति-शीघ्र विनष्ट होकर हमारी माताएं अपनी जिम्मेवारी को समझ सकें और निभा सकें।) (सम्पादक)

❀ ❀ ❀

॥ ओ३म् ॥

एकादशम् अध्याय

परनिन्दा

वाणी संयम	अवगुण अथवा दुर्गुण	दिनचर्या

अब पढ़ाई का कार्य आरम्भ हो गया। १२ से १७ वर्ष तक की आयु की बहुत सी कन्याएं प्रविष्ट हो चुकी हैं और विवाहित देवियाँ भी आती बहुत सी हैं, परन्तु विद्यार्थी रूप से केवल लज्जावन्ती ही पढ़ती है। दो दिन लज्जावन्ती नहीं आ सकी क्योंकि सादा वस्त्र उसके लिये नये सिरे से बनवाने पड़े। आज वह भी उपस्थित हुई। सन्तोष कुमारी ने पूछा—दो दिन तो तुम आई नहीं, अब सोच समझकर दृढ़ निश्चय कर लिया ?

लज्जावन्ती अभी उत्तर भी न दे पाई थी कि एक कन्या जो उन के घर के पास उसी मुहल्ला में रहती थी बोल उठी, बहिन जी ! यह बेचारी बड़ी विपदा में पढ़ गई थी। इसके घर में तो उस दिन बड़ा राम-रौला मचा रहा। उसकी सास तो आपको और आपके घर वालों को भी कटु शब्द सुनाती रही।

सन्तोष कुमारी—प्यारी बहनों ! अब मुझे नये सिरे से तुम्हें समझाना पड़ गया। मैंने प्रथम दिवस कहा था कि देश को तीन

बातों के जानने की आवश्यकता है। सर्व प्रथम—रहन सहन के जानने की। मैंने यह भी बताया कि हिन्दु जाति के पास सब कुछ है, परन्तु ठोकरें खा रही हैं। इन कारणों में एक कारण मैंने बतलाया था 'परनिन्दा'। राजकुमारी (जिस कन्या ने यह बात कही थी) बतलाओ ! परनिन्दा क्या है। कोई गुण या कुछ और?

राजकुमारी—नहीं जी ! यह एक दुर्गुण है।

सन्तोषकुमारी—(औरों से) तुम में से कोई बतलाये परनिन्दा क्या है ? सब ने कहा —बुराई है अवगुण है। संतोष कुमारी ने कहा—नहीं बहिनो ! यह अवगुण नहीं अपितु दुर्गुण है।

लज्जावन्ती—तो क्या अवगुण या दुर्गुण भिन्न-भिन्न है ?

दुर्गुण और अवगुण

सन्तोष कुमारी—हां ! अवगुण वह होता है, जो मनुष्य को मनुष्यत्व से पतित कर दे। अब का अर्थ है नीचे करना, दुर्गुण वह है जो ईश्वर से दूर ले जावे। जो निन्दा करते हैं, वे ऐसा कह कर खुश तो होते हैं परन्तु यह ईर्ष्या से पैदा होती है। ऐसे मनुष्य पर निन्दा करने वा सुनने वाले खुश होते हैं, और अपनी निन्दा सुनने पर क्रुध हो जाते हैं अपना यश सुनकर खुश होते हैं परन्तु दूसरे का यश सुनकर सहन नहीं कर सकते।

यह संस्कार गुप्त रहता है। किसी में कम किसी में अधिक। यह दुर्गुण ही है। इससे मनुष्य के सदाचार और शील को हानि पहुँचती है और इससे द्वेष अग्नि प्रचण्ड होती है।

वाणी की महिमा

बहिन राजकुमारी ! एक तो तुमने बिना पूछे पराई बात में दखल दिया । यह काम तो मूर्खों का कहा गया है, बुद्धिमानों का नहीं । दूसरा तुमने अपने अन्दर पराये गन्दे विचार धारण कर लिये । अगामी के लिये सावधान रहो कि यह वाणी जो तुम्हें परमेश्वर ने दी है वह दूसरों के छिद्र निकालने के लिये नहीं दी । ऐसी कोमल और मृदु वाणी जिससे प्रभु का प्यारा वेद पढ़ा करता है, जिस वाणी से गुरु और उपदेष्टा सहस्रों पतित जनों को मार्ग पर लगा देता है, जिस वाणी से माता अपने बालक को लोरी देती है, उसे हंसाती, खिलाती, चूमती और चाटतीं है, जिस वाणी से प्रभु भक्ति के गुण गाये जाते हैं, जो वाणी सादा मीठा रस ही पसन्द करती है और कटु लगने पर थू-थू करके बाहर निकाल देती है । यही वाणी मनुष्य का स्वत्व है । इसी पर मनुष्य के व्यवहार और लाखों करोड़ों रुपये के व्यापार की पत और साख है । इसीं वाणी से कन्या पति को वरती है और सदा के लिए उसकी ही हो जाती है । प्यारी बहिन ! इसी वाणी की कीमत अथवा मूल्य कोई चुका नहीं सकता । यह प्रभु की बड़ी भारी दात है । जिसने इस वाणी को अपना लिया, इसका संयम किया उसी का ही संसार में बोलबाला हुआ । यदि किसीं की वाणी में विकार हो, उसे संसार के सब मिष्ठ पदार्थ कटु और फीके लगते हैं । जिसकी वाणी स्वस्थ और निरोग होगी, उसे सब पदार्थ वैसे ही लगेंगे, जैसे वे हैं । तुम्हारा कथन ऐसा हो कि फूल झड़ें । सुनने वाले के मन पर प्रभाव पड़ जाये ।

अच्छा मैं तुमको शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति की कई बातें बताती हूं, इनको याद रखना। यदि तुम इन पर सदा आचरण करती रहोगी तो शरीर से निरोग, आत्मा प्रसन्न और तुम्हारे वंशों और परिवारों में प्रेम और संगठन बना रहेगा और शक्ति बढ़ेगी। क्योंकि जो व्यक्ति परिवार, समाज अथवा जाति, शास्त्र मर्यादानुसार एकता और संगठन रखता है उसको छः चीजें प्राप्त होतीं हैं—(१) स्वतंत्रता, (२) प्रसन्नता, (३) मित्रता, (४) हकूमत (अधिकार), (५) समृद्धि और (६) शक्ति। एकता बिना प्रेम के और प्रेम बिना त्याग के नहीं रह सकता। इसलिये प्रेम और त्याग का जीवन जीवित जीवन है। यहां कुछ कन्याओ को सिखाया जाता है ताकि वे आगे गृहस्थ में अपनी संतान को भी सिखा सकें।

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति

(१) सबसे पहले निम्न प्रार्थना मंत्र पढ़ कर रात्रि को दस बजे सो जाना चाहिए।

ओ३म् यज्जाग्रतो दूरमुदैती दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥१॥

ओ३म् येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२॥

ओ३म् यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्जोतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥३॥

ओ३म् येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्त होता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥४॥

ओ३म् यस्मिन्नृचः सामयजुंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिंश्चित सर्वं मोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥५॥
ओ३म् सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभि शुभिर्वाजिन इव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥६॥
(यजु० ३४ । १-६ ॥)

(६) प्रातः ४ बजे के लगभग (अर्थात् ४-५ घड़ी रात्रि शेष रहे) उठना चाहिए ।

(३) बिस्तर पर उठकर बैठते ही तुरन्त परमात्मा का ध्यान करना चाहिए और जिस प्रभु ने सुख से रात्रि बितवाई उसका धन्यवाद गाना चाहिये और

(४) प्रार्थना करनी चाहिये कि प्रभो ! आज के दिन हम सब कार्य पुरुषार्थ और धर्मानुसार करें । बहुत बल दो कि धर्म का अनुकरण करने में यदि हमें कोई कष्ट भीं हो, तो भी हम धर्मानुसार पुरुषार्थ को कभी न त्यागें, बल्कि सदैव शरीर और आत्मा की रक्षा के लिए उचित भोजन, शुभाचरण, लाभदायक औषधियों का सेवन कर और भली प्रकार संयमी होते हुए सच्चाई के मार्ग पर चलें ।

यह मन्त्र सब को अर्थ सहित याद कर लेने चाहिए, उनको बड़े प्रेम से और मधुर स्वर सेब ोलना चाहिये ।

प्रातः के प्रार्थना मन्त्र

ऐसे सुन्दर और सुहावने समय में प्रभु का दिव्य प्रसाद बंटता है । जो उपस्थित रहेगा, वही प्राप्त करेगा । भगवान की पूजा आराधना से कठिन से कठिन कार्य भी सुगमता से पूरे हो जाते हैं ।

ओ३म् प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे। प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुतरुद्रं हुवेम ॥१॥

ओ३म् प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम् वयं मदितेर्यो विधतर्ता।
आध्रनिश्चद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राज चिद्यं भगं भक्षीत्यह ॥२॥

ओ३म् भग प्रणेनर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः।
भग प्र नो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥३॥

ओ३म् उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये आह्नाम्।
उतोदिता मघवन, सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥४॥

ओ३म् भग एव भगवां अस्तु, देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम।
तं त्वा भग सर्वं इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह ॥५॥

(यजु० अ० ३४।३४-३८॥

(५) इस प्रकार ईश्वर की पूजा के पश्चात् शौचादि जा
चाहिए। नगर के बाहर जाकर शौचादि करो अथवा घर
शौचालय में। शौच के ऊपर मिट्टी अथवा राख अवश्य डाल दे
चाहिए ताकि दुर्गन्ध वायु में मिल कर प्राणियों के लिए रोग पै
न करे। इस समय की प्राणप्रद वायु बड़ी पवित्र चलती है।
भी एक प्रकार की औषधि है इस स्वभाव से घर के बालक स्व
सीख जावेंगे। जब-जब बालक शौच करे तो उस पर मिट्टी अथ
राख डाल देनी चाहिए ताकि मच्छर मक्खी आदि न फैलें। बाल
बड़े होकर इस पर आचरण करने लग जायेंगे। बालक जब ब
हो, जब वह कहे शौच आया है तो उसे समझा देना चाहिए
राख उसको साथ दे देनी चाहिए, वह स्वयं ही डाल दिया करेगा

(६) शौच के समय वस्त्र बहुत थोड़े होने चाहिएं, कसे हुए वस्त्रों से शौच नहीं जाना चाहिए।

(७) पहले पवन को देख लेना चाहिए। जिस ओर पवन हो उसके सामने मुख करके बैठना चाहिए। ताकि शौच की दुर्गन्ध स्वयं पीछे चली जावे। मुख और नासिका में न आवे। लघुशंका जब आवे, पवन को पीठ देकर बैठना चाहिए, ताकि यदि वेगवान पवन हो तो छींटे उड़कर अपने आपको अपवित्र न करें।

(८) शौच को बार-बार देखना न चाहिए, इससे आंखों की ज्योति कम हो जाती है, आयु घटती है और बार-बार देखने वाले कभी-कभी स्वप्न में भी शौच करते हुए अपने आपको देखते रहते हैं।

(९) जल के लोटे में न्यून से न्यून एक सेर जल शौच के समय साथ ले जाना चाहिए। बिना जल के जाने का स्वभाव अच्छा नहीं होता।

(१०) शौच के बाद लोटे और हाथों को खूब मिट्टी से मलना चाहिए। उन उंगलियों को जिनसे गुदा साफ की हो, कई-कई बार मिट्टी लगानी चाहिए। शौच और मूत्र में तेजाबी अंश होता है, बार-बार मलने से उनका प्रभाव शेष नहीं रहता, नहीं तो उपेक्षा करने से जो थोड़े से जल से शुद्धि करते हैं उनके हाथों अंगुलियों में कभी खाज का रोग हो जाता है।

(११) पहले मुख में जल लेकर कुल्ला करना चाहिए, फिर नाक साफ करना चाहिए, फिर आंखों को धोना चाहिए। प्रातः

उठकर पहले पहल आंखें कभी भी नहीं धोनी चाहिएं। ऐसा करं से आंखें बलहीन हो जाती हैं। जब तक आँख पूरे फैलाव में न आं उसे जल नहीं लगाना चाहिए। सुकड़ी हुई आँखें जल से और सुक जाती हैं। इस क्रम से हाथ मुख साफ करने चाहिये।

(१२) शौच के बाद पांव भी धोने चाहिएं ताकि उदर रिक्त हो जाने से जो भड़का अग्नि का उठता हैं, पग प्रक्षालन सिर और उदर दोनों ठीक हो जाते हैं।

(१३) फिर दातुन करनी चाहिए। बारह अंगुल का दातु हो किसी ऐसी लकड़ी का जिसका ब्रुश ठीक बन सके। कनिष्ठि अंगुली के समान, न बहुत मोटा, न बहुत पतला और फिर दातु साफ और सीधी होनी चाहिए।

(१४) सूर्य के सम्मुख मुंह करके दातुन न करनी चाहिए प्रथम तो दातुन प्रभात समय करनी चाहिए, यदि कभी सूर्य नि लने पर करनो पड़े तो उधर पीठ फेर कर, वरन् दातुन के कण्ठ ले जाने से जो कफ निकलता है, आंखों से जल बहता है, उस सम सूर्य की किरण यदि आँख में पड़ जावे तो मोतिया-बिन्दु हो जा की सम्भावना हो जाती है।

(१५) दातुन जल के साथ करनी चाहिए, बिना जल क नहीं। जब एक बार मुख में चबा लिया और उसे बाहर निका तो तुरन्त धो लेनी चाहिए। तब दूसरी बार मुख में डाल चाहिए क्योंकि उसके मल पर कीटाणु तुरन्त बैठ जाते हैं। इ लिए थोड़ी सी उपेक्षा के लिए उन्हें फिर मुख में स्थान देकर रो मोल न लेना चाहिए। दो चार बार चबाकर दूर फेंक देना चाहि

न कि घण्टों दांत चबाते, रगड़ते रहें। यह केवल मल उतारने के लिए है न इसलिए कि सलोवा (लुआब) अधिक निकल जावे और दांतों का रोगन और पालिश अधिक उतर जावे। दातुन उन वृक्षों का होना चाहिये जो लाभदायक हैं, जो तेज और बल दे, लुआब और गन्दा थूक अधिक निकालें। शहतूत और शीशम के दातुन से वीर्य की रक्षा होती है। पीपल और आक की जड़ के दातुन से मसूड़े दृढ़ और वातपित्त को सफाई होती है। तेज और बल बढ़ता है, पायोरिया नहीं होता। कीकर की दातुन से कफ रोग की निवृत्ति होती है। नीम की दातुन से रक्त शुद्ध और ज्वर से रक्षा होती है।

(१६) दातुन के बाद लघुशंका कर लेनी चाहिए।

(१७) अब स्नान करने की विधि यह है। सर्व प्रथम सिर भिगोना चाहिए। सिर पर पानी डाल कर सिर को खूब मलना चाहिए. फिर मुख, नाक, आंख, कान, ग्रीवा और पेट को खूब मलना चाहिए ताकि गर्म हो जावे। इससे कोष्ठबद्धता की शिकायत नहीं होती। उदर से ऊपर ग्रीवा तक खूब मलना चाहिए। हाथ सदा नीचे से ऊपर को मलना चाहिए, ऊपर से नीचे को नहीं। फिर पांव, जंघा आदि। मल उतर जाने पर पुनः सिर पर जल डालना चाहिये।

(१८) स्नान करने के बाद फिर सन्ध्या, हवन इत्यादि करके फिर कोई और काम करना चाहिए। यह सब कार्यक्रम तो कन्याओं के लिए है। गृहस्थी पुरुषों को बाहर वायु सेवन करना चाहिए। गृहस्थी स्त्रियों को घर का काम चक्की पीसना, गीत करना, गाय का स्थान शुद्ध करना, पात्र मांजने-चौका लेपना, झाड़ू आदि सब

करने चाहियें और यह सब कार्य पवित्र होकर करने चाहिएं साधारण देवियाँ शुद्धि-अशुद्धि का ध्यान न करती हुई सब का कर लेतीं हैं। दधि-मन्थन भी कर लेती हैं, चक्की पीसती, आटा गूंधतीं, शाक बना लेती हैं और फिर स्नान करती हैं। यह सर्वथा अशुद्ध है। अपवित्रता की अवस्था में जितने काम किये जाते हैं सब अपवित्र ही होते हैं। उनका प्रभाव घर वालों के मानसिक पर बुरा पड़ता है और अपवित्र विचार व बुद्धि मलीन बनती है।

(१९) स्त्रियां प्रायः घरों में खड़े जाँघों (उकड़ों) बैठती हैं इस आदत को छोड़ देना चाहिए।

(२०) स्नान में पांव को अच्छी तरह शुद्ध करना चाहिये जितने पाद शुद्ध होंगे, आंखों की ज्योति बढ़ेगी।

(२१) भोजन के समय जहां हाथ धोने चाहिएं वहां मुख और पांव भी धोने चाहिए, इससे पेट की जठराग्नि प्रदीप्त हो जाती है।

(२२) कफ प्रकृति वालों को भोजन के आदि, मध्य और अन्त में जल तथा लस्सी आदि बिल्कुल न पीना चाहिए। पित्त प्रकृति वालों को मध्य में जल पी लेने से लाभ रहता है, हानि बिल्कुल नहीं, वात प्रकृति वाले को आचमन पहले ही कर लेना चाहिए। भोजन से न्यून से न्यून एक घण्टा बाद जल पीने का स्वभाव बनाना चाहिए।

(२३) भोजन जब सामने आये, उसे देखकर पहले दिल बड़ा प्रसन्न हो जाना चाहिये और, परमेश्वर का ध्यान और संक्षिप्त प्रार्थना करके भोजन खाना चाहिए। मन्त्र यह है:—

ओ३म् अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिरणः ।
प्र प्रदातारं तारिषऽऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥
(यजु० ११–८३ ॥)

भावार्थ—हे परमेश्वर ! धन्य हो, धन्य हो ! यह अन्न आप की दात है । इस तेरे पवित्र शुद्ध अन्न से मेरा शरोर, मन, आत्मा निरोग और पवित्र बने ताकि मैं आपका सदा चिन्तन कर सकूं और अन्न दान करने वाले को सब सुख के सामान प्राप्त कराइये ।*

(२४) भोजन बहुत चबा-चबा कर खाना चाहिए और भोजन में ही चित्त एकाग्र करने से मन की वृत्तियां एकाग्र होती हैं । भोजन करते समय मौन रहना चाहिए क्योंकि बोलते रहने से अधिक वायु अमाशय में जाकर हानि करती है ।

(२५) वृत्ति तब एकाग्र रह सकती है, जब प्रत्येक चबाओं में

---

*मित अन्य खावां जीवन हित,
जीवन मेरा तेरे निमित्त ।
सदा रहूं मैं इद्रियजित,
अन्न में जो है आनन्द आवत ।
वही है तेरा रस रूप अमृत,
रस अमृत पीकर मन मस्त भजन्त ।
वासना रहित कर दे पूरा सन्त,

विस्तार के लिए इस सम्बन्ध में योगयुक्ति में रसोई से रसोई वाला प्रकरण (पृ० २३-२४-२८) और इस पुस्तक का १२ वां अध्याय देखें, जिसमें भोजन के नियम खोलकर लिखे गए हैं ।

प्रभु का जाप किया जाता रहे और चबाई तब जा सकती है जब भोजन अच्छी तरह ओष्ठ बन्द करके खाया जाये। परन्तु जब तक मिर्च मसाला तीव्र होगा, ओष्ठ बन्द न रह सकेंगे और न ही पूरी तरह भोजन चबाया ही जा सकेगा। इसलिए मिर्च, खटाई, अचार और अधिक लवणीय पदार्थ जो ब्रह्मचर्य को भङ्ग करने वाले हैं कन्याओं को नहीं खाने चाहिएं।

(२६) ग्रीष्म ऋतु में मध्याह्न को सोकर जागने पर तुरन्त जल न पीना चाहिए, इससे जुकाम होने का भय रहता है, अतः जरा विलम्ब के बाद जल पीना चाहिए।

(२७) घर में झाड़ू लगाना, चौका लेप करना, बर्तन मांजना, आटा गूंधना, शाक पकाना, रोटी घड़ना आदि सब कार्य बहुत आवश्यक हैं। माताओं को बहुत सावधानी से यह कार्य कन्याओं को सिखाने, समझाने और उनसे क्रियात्मिक रूप में कराने चाहिएं। पात्रों को क्रमवार रखना, अग्नि प्रदीप्त करना, दीपक अथवा लैम्प जलाना बुझाना, कातना, पीसना, रिड़कना, बोलना आदि सभी कार्य सिखलाने पड़ते हैं।

(२८) आग जलाने में और दीपक बुझाने में फूंक मारने से बचना चाहिए, इससे सिर दर्द और जुकाम हो जाता है।

(२९) घर के सम्बन्ध में बहुत सी बातें हैं, जो और समय पर बतलाई जावेंगी। बदाहरण रूप में कौन सी वस्तु कहां रखनी चाहिए और कौन सी कहां ?

इन आवश्यकताओं से निवृत्त होकर शीघ्र पाठशाला में पहुंच जाया करो। अब भविष्य में कोई घण्टा-घड़ियाल नहीं बजा करेगा यह पराधीनता है। इस पाठशाला में कोई रजिस्टर आदि नहीं होगा। कोई उपस्थिति नहीं लगेगी। सब अपने ही सुधार के लिए आने वाली है, कोई सरकारी संस्था नहीं हैं।

गृहस्थ सुधार प्रथम भाग—कुमारी शिक्षा समाप्त।

❋ ❋ ❋

ओ३म्

गृहस्थ सुधार

द्वितीय भाग

* नारी शिक्षा *

द्वादश अध्याय

रसोई

आज मध्याह्न के समय प्रेमलता और उसकी माता जी अपने घर में बैठी हैं। इतने में चौधरी दीवानमल जी आये और पूछनें लगे—प्रेम ने क्या कुछ सीखा है ? उसकी माता ने कहा—

बाकार (कामवाला)

सन्तोष कुमारी सबको इकट्ठे ही समझाती है प्रेम को अलग तो कोई चीज नहीं सीखातीं। उसे मैंने कहा भी कि प्रेम को बहन समझकर अपने जैसा बना दो। वचन तो किया है, परन्तु न जाने कब सिखाएगी ? दिन तो एक-एक करके बीते जा रहे हैं इतने में उसका विवाह भी निकट आ जाएगा। इसे जब तक आवश्यक बातें पृथक् न समझावे, सब कुछ कैसे आ जायेगा ?

चौधरी—प्रेम ने कभी अलग पूछा भी नहीं होगा।

प्रेमलता की माता—नहीं, जब छुट्टी मिली और सब चली गईं तो हम भी चली आयी।

चौधरी—आज तुम उसके घर जाओ और जो पूछना हो पूछ लो। वह बेचारी पाठशाला में अलग समय कहां से लावे? हिन्दी रत्न की पुस्तकें भी पढ़ावे और गृहस्थ की बातें भी समझाये। या तो वह तुम्हारे घर आये या तुम उसके घर जाया करो और जो पूछना हो पूछ लो। अपने घर बुलवाने पर प्रतिदिन कौन आ सकता है? कोई वेतन अथवा शुल्क तो उसने लेना नहीं, इस तरह वह अपने घर का काम भी करती रहेगी और समझाती भी रहेगी। तुम्हें तो घर में कोई काम भी नहीं। नौकर रोटी पकाता है। चोका लेपन, जल लाना, सब काम नौकर ही करता है। आज चली जाना।

ग्रीष्म ऋतु थी। भोजन करके कुछ देर विश्राम किया, तत्पश्चात् चार बजे के लगभग दोनों माता-पुत्री सन्तोष कुमारी के घर पहुंच गईं। जाकर क्या देखती हैं कि सत्यव्रत की माता लेटी हुई है और सन्तोष कुमारी उसके पांव दबा रही है। यह देख प्रेम की माता सत्यव्रत की माता से पूछने लगी—बहिन जी! सुख तो है? शरीर दबवा रही हो।

सत्यव्रत की माता—बहिन! ईश्वर की कृपा है। मुझे तो हर समय सुख आराम है। कोई रोग नहीं है, परन्तु यह सन्तोष जब से ब्याही आई है प्रतिदिन मेरे शरीर को दबाती है और रात को भी दबाकर सोती है। बहुत मना करती हूं परन्तु यह कहती

है—नहीं, माता जी ! दिन रात आप कार्य करती रहती हैं, मैं पाठशाला जाती हूं मेरा काम भी तुम्हें करना पड़ता है। वृद्ध शरीर है, इसको दबाने से विश्राम मिल जाया करेगा और मेरी आत्मा प्रसन्न भी होती रहेगी, क्योंकि पितरों की सेवा से आत्मिक बल बढ़ता है और उनके आशीर्वाद से ही सब परिश्रम सफल हो जाते हैं। अच्छा पुत्री सन्तोष ! अब छोड़ दो, जरा नीचे बैठें। यह बहिनें आयी हैं, इनका आदर सत्कार करें।

दोनों पलङ्ग से उठ गईं और माता पुत्री का बड़े सम्मानपूर्वक आवोभगत करके उन्हें स्वच्छ स्थान पर बैठाया। जलादि भेंट किया और सत्यव्रत की माता ने पूछा—क्यों बहिन जी ! ऐसी गर्मी के समय धूप में कैसे आई ? आप धनी आदमी हैं, यह कष्ट क्यों किया ? सन्तोष तो मध्याह्न तक तुम्हारे पास ही रहती है। वहीं और दस पन्द्रह मिनट उसे रोक लिया होता और यहां न आना पड़ता ?

प्रेमलता की माता—बहिन जी ! प्रेमलता की आयु बड़ी हो गई है। अब विवाह तो इसी वर्ष होना था, परन्तु सन्तोष कुमारी के उपकार से लाभ उठाने के लिये अभी एक वर्ष के लिए स्थगित करके सन्तोष कुमारी के अर्पण कर दिया है कि उसे एक साल में अपने जैसा बना दे। दिन बीतते जाते हैं। जो बातें सन्तोष कुमारी पाठशाला में सबको समझाती है वह तो प्रेम सुन ही लेती है, परन्तु गृहस्थ की बहुत सी बातें हैं और समय थोड़ा है, इसलिए प्रेम के पिता जी ने आज कहा है कि यदि सन्तोष के पास प्रति दिन चली जाया करो तो प्रेम को विशेष रूप से अधिक भी समझा

दिया करेगी । इसलिए हम दोनों आई हैं ।

संतोष कुमारी—बहिन प्रेमलता ! पहले यह बताओ कि तुम गृहपत्नी के काम भी जानती हो कि नहीं ?

प्रेमलता—गृहपत्नी के काम क्या होते हैं ? और गृहपत्नी किसे कहते हैं ?

संतोष कुमारी—बहिन ! जब बालक पैदा होता है तो पांच वर्ष की आयु तक वह शिशु कहलाता है और सोलह वर्ष तक कुमार और उसके बाद युवक । इसी प्रकार कन्यायें बारह वर्ष तक किशोरी कहलाती हैं । फिर जब मासिकधर्म आरम्भ होकर युवाकाल को प्राप्त होती है, तब 'युवती कन्यायें' और जब विवाह हो जाता है तो उस समय वह 'गृहपत्नी' कहलाती हैं । धर्मपत्नी, नारी, स्त्री त्रिमत आदि सब नाम इसी विवाहित युवती के लिए ही प्रयोग होते हैं । घर के तमाम कार्यों के करने, सम्भालने, उनकी रक्षा और प्रबन्ध करने वाली का नाम गृहपत्नी ही है । घर के झाड़ू लेपने से लेकर भोजन बनाने, परोसने, खिलाने तक की सभी सेवा और घर वाले नौकर भृत्य अतिथि आदि को खिला, पिला, सुला कर, सब वस्तु सम्भाल, समेटकर सबसे पीछे सोने वाली गृहपत्नी कहलाती है । अच्छा ! मोटी सी बात यह बतलाओ कि क्या तुम हर प्रकार की भोजन सामग्री बनाना जानती हो ? दुग्ध दही जमाना और रिड़कना भी आता है कि नहीं ?

प्रेमलता की माता—ये बेचारी तो इकलौती होने के कारण बड़ी लाड़ली पली है । भोजन पकाना तो क्या, अभी जल भी अपने

आप घड़े से लेकर नहीं पीया। मैंने भी स्वयं घर का कार्य कभी नहीं किया, तो यह क्या करती? और इससे करवाता भी कौन है? सब कुछ सेवक ही कर देते हैं। ब्राह्मण रसोइया भोजन बनाता है। झीवर जल दे जाती है और झूठे पात्र भी वह मांज जाती है। आटा मशीन से पीस कर आ जाता है। मन्डी से प्रथम कक्षा की शरबती गेहूं अच्छी साफ-सुथरी लेते हैं और कोठी के सेवक वहां पिसवा कर घर डाल जाते हैं। लस्सी, छाछ, हम रिड़कते ही नहीं बाजार से प्रातः सायं ताजा दूध आ जाता है, वह पी लेते हैं। कभी थोड़ी दधि जमानी हुई तो ब्राह्मण से कह दिया, उसने जमा दी।

संतोष कुमारी—माँ इतना अत्याचार! यह बेचारी अपने घर जावेगी तो क्या वहां भी तुम इसके साथ जाओगी? अथवा सेवक भेज दोगी? तुम्हारा इतना लाड़-प्यार और ऐसा प्रेम तो इसे बहुत कष्ट देगा। इसका जीवन दुःसह हो जाएगा, तो क्या वह तुम्हें आशीश देगी?

प्रेमलता की माता—पुत्री! वहां इसके श्वसुर गृह में क्या कोई कमी है? वह भी स्वयं अपने हाथ से कोई कार्य नहीं करते। सेवक ही सब करते हैं। हम से कुछ न्यून धनवान तो नहीं अधिक ही होंगे।

सन्तोष कुमारी—तो विवाह हो जाने पर यह सारा दिन वहां क्या करती रहेगी? क्या खाट पर चढ़ी बैठी रहेगी!

निकम्मापन — निकम्मे रहने से तो आयु घट जाती है। शरीर रोगी बन जाता है। मानसिक विचार भ्रष्ट हो

जाते हैं। आत्मा का ज्ञान तो कभी होता ही नहीं। पति की कमाई को शुद्ध और पवित्र करने वाली और रक्षा करने वाली धर्मपत्नी ही होती है, निकम्मी स्त्रियों का यह जन्म तो अकार्थ ही जाता है और आगामी जन्म में उनको मनुष्य शरीर मिलना कठिन है।

जब एक स्त्री गृह का कोई कार्य भी न करेगी तो उसका सेवा भाव, प्रेम और त्याग का क्या हुआ! माता-पिता के गृह का त्याग ही केवल त्याग नहीं। अपने ही आनन्द के लिए 'पतिप्रेम' प्रेम नहीं कहलाता। अब तुम्हीं बतलाओं कि मैं इसे अपने जैसा कैसे बनाऊंगी?

त्याग

सत्यव्रत की माता—(बात काटकर) बहिन जी! संतोष को चार बजे मेरी सेवा करते आपने अपनी आंखों से देख लिया और यह कहती है कि मेरे पीछे मेरा सब कार्य आप करती-करती थक जाती होंगी, परन्तु यह पाठशाला जाने से पूर्व ही झाड़ू, चौका, लेपन जल भरना इत्यादि सब कार्य स्वयं कर जाती है और लस्सी भी स्वयं रिड़क लाती है। पाठशाला से वापिस आकर भोजन भी अपने हाथ से पकाती है और सबको आप ही खिलाती है। मैं तो केवल आटा ही गूंध रखती हूं और सब्जी मंगाकर बना रखती हूं। रात्रि को सारा काम यह आप ही करती है और मध्याह्न पश्चात् यह चर्खा भी कातती है। कभी-कभी प्रातः चक्की भी ले बैठती है और हवन-सन्ध्या भी नित्य करके जाती है।

प्रेमलता की माता—धन्य हो पुत्री, धन्य हो! इतने काम कर लेती हो!

सन्तोष कुमारी—माता जी ! परमेश्वर ने स्त्री जाति को बड़ी शक्ति दी है। पुरुष इतने कार्य नहीं कर सकता जितने घर में स्त्री कर सकती है यह सब छोटे-छोटे काम मिल कर बहुत हो जाते हैं। जब बच्चे उत्पन्न हो जाते हैं तब तो स्त्री को सिर खुजलाने का भी अवकाश नहीं मिल सकता। जो स्त्री सारा दिन मन लगाकर कार्य करती है, वह शरीर से निरोग रहती है। उसके मानसिक विचार पवित्र रहते हैं। न अपने काम में अवकाश मिला न किसी की निन्दा स्तुति की। न घर-घर फिरने का स्वभाव बना। अपने घर वालों की सेवा भी हो गई और अपनी सब वस्तुएं अपनी आंख के सम्मुख ही रही। रात को जब सोये तो थकान के कारण बड़ी गाढ़ निन्द्रा प्राप्त हो गई। इससे बढ़कर लाभ और सुख कौन-सा होगा। इससे बढ़कर लाभ और सुख कौन-सा हो सकता है! अब यदि आप यह चाहती हैं कि प्रेम मेरे जैसी बन जावे तब तो अपने घर के सारे कार्य यह आप करें और ऐसा करें कि वहां जाकर भी सारे कार्य अपने हाथ से ही करके उस गृह निवासियों को भी सुधार दे ताकि उनका सब आलस्य और प्रमाद दूर हो जाये। सेवकों के पकाये भोजन में प्रेम का अभाव होता। श्रद्धा कहीं खोजने पर भी नहीं मिलती, क्योंकि वह तो स्वार्थवश भोजन बनाते हैं। वही स्वार्थ खाने वाले में भी पैदा होकर मनुष्य स्वार्थी बना रहता है और परमार्थ के योग्य बड़ी कठिनता से हो सकता है।

प्रेमलता की माता—तो फिर सेवक क्या करें ? क्या उन्हें निकाल दें ?

संतोष कुमारी—नहीं, सेवक तो हाथ बटाने के लिए होते हैं, घर का सारा भार उठाने के लिए नहीं होते। यदि काम बहुत है तो सेवक भी रहे और यदि थोड़ा है तो सब काम अपने आप करो। यदि आप भी कार्य करने लग जाओ तो प्रेम के मोह का जो भारी साँकल आपकी ग्रीवा में पड़ा है वह धीरे-धीरे हल्का हो जावेगा; क्योंकि यह सब कुछ तो निकम्मेपन का बखेड़ा है। फिर इसका विवाह हो जाने पर भी आपको बहुत कुछ उदासी अथवा दुःख न होगा। परन्तु लोक लज्जा से यदि यों ही भय खाती रहोगी तो प्रेम का जीवन, उच्च जावन और कल्याणमय तथा शुभ जीवन नहीं बन सकेगा क्योंकि वेद भगवान की यही आज्ञा है कि स्त्री अपने घर के सब व्यवहार अपने हाथ से करे।

निकम्मेपन का बखेड़ा

फिर सब दिन होत न एक समान।

धन सम्पत्ति की मेघ सी छाया है। प्रतिदिन कितने परछावें बदलते हैं। परमात्मा बचाये! बड़े-बड़े राजाओं महाराजाओं को ऐसी अपत्तियाँ आ घेरती हैं कि घरबार कुछ भी नहीं रहता। स्त्री पति से और शिशु माता से पृथक् हो जाते हैं। ऐसे समय में अपने हाथ का हुनर और किया हुआ दान काम आता है। क्योंकि खाई हुई रोटी अपने पेट में तो केवल अपने आप को ही तृप्त करती है। परन्तु दूसरों को खिलाई हुई बहुतों के उदर भरती है। मेरी मां वड़े धनी माता-पिता की पुत्री थी और मेरे पिता, पितामह भी पर्याप्त धनी थे। (यहां वह अपनी कथा सुनाती है—देखो गृहस्थ

आश्रम प्रवेशिका दूसरा अध्याय)। मैं जब इन घटनाओं पर विचार करती हूं तो चकित रह जाती हूं और सिर चकरा जाता है। देखो क्वेटा, सी.पी. और काँगड़े के भूकम्पों में बड़े-बड़े धनीमानी, लखपति विनष्ट हो गये। उनमें किसी की एक केवल स्त्री बची, शेष सब कुछ नाशहो गया। जिसकी आंख के संकेत पर बांदिया काम करती थीं इस बेचारी को अब अपने उदर की पालना तथा तन के वस्त्रों दूसरों का भोजन बनाना और बर्तन मांजने पड़ गए। जो स्त्री यह विद्या भी न जानती हो तो उसका जीवन किस कार्य का? पुरुष नङ्गा रहकर, एक कौपीन बांधकर बाहर श्रमी का कार्य करके भी जीवन निर्वाह कर सकता है। एक अबला स्त्री क्या कर सकती है। वह नग्न बाहर कैसे जाये? और बेचारी पुरुषों में क्या मजदूरी करे? उसे तो अपने घर में किया हुआ काम ही सहायता दे सकता है। अगले जन्म में वे माता-पिता सन्तान से वंचित रहते हैं जो सन्तान पैदा करके उसे कुछ नहीं शिक्षा नहीं देते। माता और सन्तान में यह प्रेम तो पशुओं में भी मनुष्यों की अपेक्षा अधिक होता है। एक च्योंटी अपने अण्डे को कितनी रक्षा करती है और उसे कैसे पहचानती है। अब प्रेम! तू ही सच्चे हृदय से बता कि तू काम करना चाहती है अथवा तुझे काम करना आपत्ति प्रतीत होता है।

प्रेमलता—मैं तो मां से कहती हूं कि मां! सब छात्राएं पाठशाला में खाना बनाती हैं। घरों में काम करती हैं। मेरा भोजन अच्छा नहीं बनता, न भोजन बनाना आता है। कभी दो

जल जाती है, कभी कच्ची रह जाती है। कभी हाथ ही जल जाते हैं। मुझे भी सिखाओ, मुझ से भी काम कराओ। तो माँ कहती है "पुत्री! सेवक काम करने वाला है, वहां भी सेवक उपस्थित हैं। क्यों व्यर्थ में तू दुःखी होती है?' मैं अब भी चाहती हूं कि एक वर्ष तक सब काम अपने हाथ से करती रहूं, तो भली प्रकार, सीख जाऊंगी।

इतने में लज्जावन्ती भी अपनी एक देवरानी के साथ आ पहुंची और नमस्ते कहकर बैठ गई। प्रेम चुप हो गई।

लज्जावन्ती—क्यों चुप हो गई? प्रेमलता के शब्द सुनाई देते थे। क्या मेरे आने से लज्जा आ गई? अच्छा तो हम चली जाती हैं, फिर कभी आ जावेंगी।

सन्तोष कुमारी—नहीं वह तो बात ही समाप्त कर चुकी थी कि आप आ गईं। यहां कौन सी गुप्त बात होती है। मेरे समीप तो जो भी आता है, मेरे सम्बन्ध को ही बात करता है।

लज्जावन्ती—अच्छा फिर प्रेम को उत्तर दो। हम भी सुन लें।

सन्तोष कुमारी—सब वार्तालाप, प्रश्नोत्तर तो समाप्त हो गये हैं। अब आपको कुछ कहना हो वह कहिये।

प्रेमलता की माता—पुत्री लज्जा! तुम तो गृह-व्यवहार करती हो अथवा नहीं?

लज्जावन्ती—जब से आई हूं, विवाह हुआ है तब से तो उन्होंने करने ही नहीं दिया। अब मैं पढ़ाई में लग गई।

प्रेमलता की माता—घर का सब काम, रोटी सब्जी बनाना गृहपत्नी परोसना, खिलाना चक्की, चर्खा चलाना, छाछ रिड़कना स्वभाव जानती होगी।

लज्जावन्ती—माता जी थोड़ा बहुत जानती हूं, परन्तु न पितृ में किसी ने काम कराया और न यहां आने पर किसी ने कराया।

सन्तोष कुमारी—शोक ! आजकल की माताएं भी कैसी हैं जो धन, सम्पत्ति और अपने बडा आदमी होने के मद में सन्तान को बेकार, निकम्मा और आलसी बना देती हैं। यह माताएं पुत्रियों का दूसरे घरों के मनुष्यों में अपमान करना चाहती हैं तुमने विवाह कराके वर बनाकर अपने आपको किसो दूसरे के अर्पण करके उसकी सेवा अपने हाथों न की, तो तुम्हारा प्रेम और तुम्हारा त्याग ही क्या हुआ ?

पितृ-भक्ति

पुत्र के लिए तो माता-पिता का स्थान ऊंचा है। वह पितृ-भक्ति करे और पुत्री के लिए तो पितृ-भक्ति सास श्वसुर की सेवा ही है, जो उसके स्वामी की जन्मदाता हैं। वही माता-पिता स्त्री के भी होते हैं। विवाहित स्त्री के लिए अपने माता-पिता से सास-श्वसुर का स्थान बहुत बड़ा है क्योंकि यदि पुत्री माता-पिता को सेवा करेगी तो त्यागभाव और प्रेमवश। अरी अबोध बहिनो ! तुमने मनुष्य जीवन को क्या समझ रखा है ? लज्जावन्ती बहिन ! तुम बड़े घराने की हो भोग विलास के सब पदार्थ तुम्हारे गृह में उपस्थित हैं। अब सादा बन गई हो। जरी कनारी के बहुमूल्य वस्त्र उतार डाले

ठाट-बाट, हार-शृङ्गार सब छोड़ दिया। अब तो तुम सब सेवा अपने हाथ से करनी सीख जाओ। कई दिन कष्ट तो अवश्य होगा। झाड़ू लगाने में थोड़ी सी गर्द भी मुख और वस्त्रों पर अवश्य पड़ेगी। लेपा लगाते हुए कमर भी दर्द करेगी, आटा गूंधते तनिक शरीर भी हिलेगा और भोजनादि बनाते समय अग्नि का सेंक (ताप) मुख पर और शरीर पर लगेगा। कभी धुएं में आँखों से जल भी बह निकलेगा और शायद तवे पर रोटी उलटते हुए कभी हाथ भी जल जाये। चक्की और चर्खा चलाते और लस्सी रिड़कते भुजाओं में पीड़ा और पात्र मांजते हुए थोड़ी सी दुर्गन्ध और घृणा भी आयेगी। परन्तु जब इन कामों का स्वभाव पड़ जायेगा, तो किञ्चित मात्र भी कष्ट प्रतीत न होगा, अपितु आनन्द आयेगा, प्रसन्नता होगी। शरीर निरोग रहेगा। मन में सेवाभाव, नम्रता, सन्तुष्टता प्रेम तथा उदारता पैदा होगी। अन्तःकरण शुद्ध और पवित्र होगा और हृदय प्रेम और योग का स्थान बन जावेगा।

रसोई से रसाई और रसायन

तुम चाहो तो अपनी रसोई से प्रभु चरणों तक रसाई कर लो अर्थात् पहुंच हो जाए। रसोई तो स्त्री के पास रसायन है क्योंकि एक देवी की सच्चे प्रेम और पवित्र निष्काम भाव से बनाई हुई रसोई खाने वाले के अन्तःकरण को शुद्ध और पवित्र बना सकती है, जो कार्य बड़े-बड़े विद्वान् महात्मा अपने उपदेशों से नहीं कर सकते। और जो बड़े-बड़े वैद्य, डाक्टर, हकीम अपनी अनुभूत औषधियों से नहीं कर सकते, वह काम देवी दिव्य गुणयुक्त माता अपने शुद्ध सात्विक हृदय से बनाई हुई रसायन रूपी रसोई से कर सकती है। क्या तुम इसे कोई थोड़ा पुण्य समझती हो ?

सेवक, दास और गुलाम की बनाई हुई रसोई खाने वालों
उसके दासता तथा नीच भावों से दास और दीन बना देती है
और गृहपत्नी स्वामिनी की बनाई हुई रसोई उसके स्वामिनी भा
से खाने वाले को मन ईश (मन का स्वामी) बना देती है। अब तु
दोनों इस बात की प्रतिज्ञा करो कि अभी से धीरे-धीरे अपने
कार्य स्वयं करना आरम्भ कर दोगी।

चुनांचे दोनों ने तुरन्त यह प्रतिज्ञा करली कि आज से ही
थोड़ा-थोड़ा कार्य करना आरम्भ कर देंगी।

सन्तोष कुमारी—(प्रसन्न होकर) शाबाश! अच्छा लज्जावन्ती यह भी बतलाओ कि तुम प्रातःकाल जाकर अ सास-श्वसुर और पति देव के चरण स्पर्श करती या नहीं?

अभिवादन

लज्जावन्ती—(लज्जित होकर) पतिदेव के तो नहीं। हाँ, सा
श्वसुर, जेठानी के तो आरम्भ में प्रतिदिन चरण छूती थी। फि
कुछ काल बीतने पर चन्द्र रात के दिन सास और श्वसुर के
चांद की सायं को स्पर्श करने लगी। अब तो वह भी छूट गया है
परन्तु जब कहीं बाहर पितृगृह आदि को जाती हूं तो जाते
आते दोनों समय चरण स्पर्श करती हूं।

सन्तोष कुमारी—बहिन! यह बड़ी भूल है। प्रति दिन प्रा
काल उठते ही नमस्कार करनी चाहिए और नित्यप्रति बड़ों
आशीर्वाद लेना चाहिए। जिस कार्य पर व्यय हो तो धेला पाई

उसके प्रतिरूप में मिले अगणित पुरष्कार तो उसे क्यों न दिया जाये ? ऐसे शुभ अवसर को हाथ से गवाना भी क्या कोई बुद्धिमता है ? जो पुत्र अपने माता-पिता के, जो स्त्री अपने पति के सास श्वसुर के प्रतिदिन चरण स्पर्श करती हैं उसे आशीर्वाद मिलने के अतिरिक्त मन में शान्ति भी मिलती है। यदि कभी सास श्वसुर से अथवा माता-पिता से रुष्टता का समय भी आ जाये तो उनका निरादर कभी नहीं हो सकता और यदि वे बड़े क्रुद्ध भी हो जावें तो भी सहन हो जाता है, बल्कि अनायास लज्जा आ जाती है। इससे गृह में एकता तथा प्रेम बढ़ा रहता है। एक दूसरे से कोई गिला उलाहना भी पैदा नहीं हो सकता। इसीलिये मनु भगवान लिखते हैं कि जो व्यक्ति नित्य प्रति बड़ों का अभिवादन करता है, उसकी चार चीजें बढ़ती हैं :—

अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम् ॥

अर्थात् जो व्यक्ति नित्य प्रति बड़ों को अभिवादन (नमस्कार) करते हैं और सेवा करते हैं। उनकी चार चीजें बढ़तीं हैं।

१—आयु, २—विद्या, ३—यश और ४—बल।

लज्जावन्ती—यदि सब कार्य स्त्रियां स्वगृह में और पुरुष दुकान पर करने लग पड़े तो फिर निर्धन श्रमी लोग तो भूखे ही मर जावें। इसी काम और विश्राम के बदले ही तो उनको जीविका मिलती है।

सन्तोष कुमारी—बहिन ! सब पुरुषों और स्त्रियों का कार्य भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। पुरुष का जितना कार्य व्यवहार बढ़ा

हुआ होगा उतना ही उसे सेवकों की आवश्यकता होगी और स्त्रियों को केवल गृह कार्य ही है। प्रथम तो सब कार्य एक चतुर देवी स्वयं ही कर लेती है, यदि किसी को रोग हो शरीर बल हीन हो अथवा बड़ा कुटुम्ब अथवा वैसे भी बहुत बड़े आदमी हों तो सेवक-सेविका रखने में कोई हानि नहीं, क्योंकि बहुत से कार्य ऐसे हैं भाव केवल इतना हो कि उनको जीविका कमाने के विचार से काम कराना हो परन्तु केवल अपने सुख और आराम के भाव से सेवक रखना तो एक प्रकार का पाप भी है।

स्त्री का हाथ पति का कन्धा

तुम्हारा विवाह हो चुका है, इसलिये तुम तो जानती ही हो कि विवाह के समय स्त्री पति के कन्धे पर हाथ रखती है, एक अर्थ तो इसका यह है कि पति अपनी स्त्री का भार अपने कंधों पर ले लेता है, दूसरा अर्थ यह भी है कि गृहस्थ जीवन अथवा आश्रम सारे संसार का भार उठाने के लिए है। स्त्री पति के कन्धे पर हाथ रखकर यह प्रतिज्ञा करती है कि हम दोनों मिलकर संसार का भार उठायेंगे, अर्थात् कन्धा तेरा और हाथ मेरा। कन्धा तो कमाने के लिए है और हाथ पकाने- चलाने खिलाने और दान देने के लिए तू अन्न कमायेगा। मैं पकाउंगी, खिलाऊंगी।

यह युग ऐसा है कि प्रत्येक व्यक्ति यही चाहता है कि मैं मुखिया बन कर रहूं, दूसरे मेरे अनुकूल रहने वाले हों। पुरुष भी यही चाहता और स्त्री भी यही चाहती है। इसलिए ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त १५९, मन्त्र २ में स्त्री के मन के भाव को प्रकट किया गया है।

अहं केतुरहं मेर्धाऽहमुग्रा विवाचनी ।
ममेदमु क्रतुं पतिः सेहानाया उपाचरेत् ।।

अर्थात् मैं ज्ञानवती हूँ और घर में मुखिया हूं । मैं धैर्यशालिनी हूं, वक्तृत्व वाली हूं इसलिए शत्रु का नाश करने वाली हूं, अतः पति मेरे अनुकूल चलकर व्यवहार करे । यह भाव तो वेद में लिखा है परन्तु जब स्त्री न तो ज्ञानवती हो और न ही शत्रुओं का नाश करने की शक्ति रखती हो और न ही सेवा भाव उसके अन्दर हों तो फिर बताओ वह मुखिया कैसे बनेगी ? अत: आवश्यकता है कि स्त्री विदुषी हो । घर में मुखिया बन कर व्यवहार करे । उसमें वक्तृत्व शक्ति हो और वह घर के शत्रुओं को दूर करने वाली भी हो । ऐसी कोई स्त्री हो तभी तो पति उसके अनुकूल होकर उसकी सम्मति से सब व्यवहार करेगा, अन्यथा यह कब सम्भव हो सकता

अथर्ववेद के काण्ड ११, सूक्त १, मंत्र १४ में तो स्त्री को
गृहपत्नी कर्म बलपूर्वक सब व्यवहार स्वयं करने की आज्ञा आई है ।

एमा अगुर्योषित: शुम्भमाना उत्तिष्ठ नारि तवसं रभस्व ।
सुपत्नी पत्या प्रजया प्रजावत्या त्वागन् यज्ञः प्रतिकुम्भं गृभाय ।।

अर्थात् यह सब शुभगुण से युक्त स्त्रियां आ गई हैं । हे स्त्री ! तू उठकर खड़ी हो, बल प्राप्त कर और अपने पति के साथ रहकर उत्तम पत्नी बनकर शुभ सन्तान से उत्तम सन्तान वाली होकर रह । यह गृह-यज्ञ अर्थात् गृहस्थ व्यवहार का शुभ कर्म तुम्हारे समीप आ गया है, इसलिए घड़ा लो और गृहस्थ के कार्य करो ।

इस मन्त्र की आज्ञाएं हैं—(१) सर्व प्रथम स्त्री आलस्य त्या
कर शारीरिक, मानसिक बोध और आत्मिक बल प्राप्त करे, (२)
पश्चात् पतिव्रत धर्म का उत्तम पालन करके उत्तम सन्तान पै
करे और उनके शरीर, मन बुद्धि और आत्मा का बल बढ़ाने वा
योग्य उत्ताम शिक्षा द्वारा उनको उत्तम रूप से सुशिक्षित क
उत्तम सन्तान वाली बने, (३) अपने गृह के सब कार्य स्वयं भ
प्रकार करके अपने गृह को आदर्श गृह बना ले, (४) अन्य स्त्रि
को अपने गृह में बुलाकर और उनसे मेल-जोल करके सब स्त्रि
की उन्नत्ति करे।

'घड़ा भरने' के शब्द में ही सब आज्ञा गुप्त समझ
चाहिएं, क्योंकि बहुत-सी स्त्रियाँ घर के और सब कार्य तो
लेती हैं परन्तु जल भरना दोष समझती हैं। बड़े घराने वाली
कहारों से पानी भरवा लेती हैं और गरीब घर की अपने पति
भरवा लेती हैं। गौ सेवा तथा भोजन आदि का पकाना आदि
इसी प्रकार वेदों की आज्ञाओं में आया है।

शुद्धाः पूता योषितो यज्ञीया इमा आपश्चरूमव सर्पन्तु शुभ्रा
अदुः प्रजां बहुलान् पशून् नः पक्तौदनस्य सुकृतामेतु लोकम्

अथर्व ११-१

गृहपत्नी गुण

अर्थात् शुद्ध पवित्र गौरे वर्ण वाली, पूजनीय ये स्त्रियां
और अन्न कार्य के प्रति प्राप्त हों। ये स्त्रियां
सन्तान देती रहती हैं तथा (इनसे) हम ब
पशुओं को प्राप्त होते हैं और चावल आदि

के पकाने वालों तथा उत्तम कर्म करने वालों के स्थान को प्राप्त हों।

अब यहां भी तुम समझो, शुद्ध, पवित्र तथा पूजनीय गौरे रंग वाली अर्थात् रूपवाली और 'सन्तान देने वाली' से अभिप्राय अपने घर की देवियाँ हैं अथवा सेविकायें बांदियां अथवा कहारनियां ?

इसमें भी चार आदेश हैं—

(१) अपने गृहकार्यों को शुद्ध, पवित्र और निर्मल होकर दत्तचित्त से करें। घर में जल और अन्न का प्रबन्ध स्वयं उत्तम रीति से अन्न को साफ करें और छटकें (२) उत्तम सन्तान उत्पन्न करें (३) गौ आदि पशुओं का निरीक्षण करें, अन्न पकाने का कार्य नीच नहीं अपितु इतना महत्वपूर्ण है कि जो यह उत्तम कार्य करता है, वह स्त्री अथवा पुरुष हो, श्रेष्ठ समझा जाता है। क्योंकि भोजन का सम्बन्ध शारीरिक स्वास्थ्य, मन के भावों के साथ और आत्मा के भजन के साथ है। वह भोजन ही भजन है, भजन और भाव दोनों पैदा करता है। इसी वेद के इसी कांड और सूक्त के मन्त्र २३ में एक और बड़ी सावधानी करने का आदेश आया है—

ऋतेन तष्टा मनसा हितैषा ब्रह्मोदनस्य विहिता वेदिरग्रे।
अंसद्रीं शुद्धामुप धेहि नारि तत्रौदनं सादय दैवानाम्॥

अर्थात् प्रथम यह ब्रह्म के ओदन की वे वेदि (चूल्हा) नियम से बनाई और रखी गई है। हे स्त्री ! पवित्र कढ़ाई अथवा पात्र को इस पर चढ़ा दे और इसमें देवताओं को देने के लिए अन्न बना।

अब तुम इस मन्त्र से समझो कि किन देवताओं के लिये अन्न बनाना है। पति, सास, श्वसुर, अतिथि आदि सब ही देवता हैं, जिनको प्रतिदिन भेंट देनी चाहिए।

अथर्ववेद के काण्ड ३, सूक्त १२, मन्त्र ८ में इस प्रकार आज्ञा है—

पूर्णं नारि प्रभर कुम्भमेतं घृतस्य घाराममृतेन संभृताम्।
इमां पात्नृनमृतेना समङ्ग्धोष्टापूर्तमभि रक्षात्येनाम॥

अर्थात् हे नारी! (स्त्री) अमृत रस से परिपूर्ण इस घड़े को भर कर ला। अमृत से मिली हुई घी की धारा को ला और पीने वालों को इससे तृप्त कर। इस प्रकार से इष्ट कामना की पूर्णता इसकी रक्षा करेगी।

वेद का स्पष्ट उपदेश है, घर में स्त्रियां जल, रस आदि का संचय करे। दूध, दधि, घृत आदि का उत्तम प्रबन्ध करे। मधु आदि पदार्थ संग्रहित करें। जिस समय खाने पीने वाले उपस्थित हों, उस समय पूर्वोक्त पदार्थ सबको परोस कर उनको उत्तम रूप से तृप्त करें। उस समय कृपणता से न देखें। इस प्रकार का उत्तम व्यवहार ही घर की शोभा की रक्षा करता है।

पवित्रता शुद्धता

बहिनों! पवित्रता का बड़ा ख्याल रखना चाहिये। सम्प्रति नये प्रकाश युग में (जिसे मैं नया अन्धकार ही कहूं) शरीर और वस्त्र की स्वच्छता को ही अधिक पवित्रता का चिन्ह समझा जाता है। वस्तुतः पाकशाला और भोजनगृह आदि स्थान जहां की पवित्रता की परम आवश्य-

कता है, वहां बड़ी असावधानी से काम लिया जाता है। कोई प्रान्त तो ऐसे हैं उनमें देवियां जूता नहीं पहनती और शौच जब जाती हैं तो पाद धोये बिना ही अथवा जब चौके अथवा घर से पहले बाहर किसी कार्य के लिए निकलती हैं तो उन्हीं गन्दे पांव और नंगे पांव से चौके में आ जाती हैं और कार्य करने लग जाती हैं। और कई प्रान्त ऐसे भी हैं जहां बाबू जी बूट सहित ही चौके में प्रवेश करते हैं। देवियाँ भी सलीपर ले जाने में कोई दोष नहीं समझती और बच्चे तो बूट खोलते ही नहीं। माता के पास ही जहां रोटी पक रही, साथ बैठे हुये हैं और उसी की थाली में भोजन भी खा रहे हैं। इसी प्रकार की अपवित्रता का भोजन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है।

फिर आजकल चमड़े का तो राज्य ही है। पाद में चमड़ा, कमर में चमड़ा, ग्रीवा में चमड़ा, छाती पर चमड़ा, हाथ की कलाई पर चमड़ा, सिर पर चमड़ा, कान पर चमड़ा, जेब में चमड़ा, सारांश प्रत्येक दिशा में चमड़ा ही चमड़ा दृष्टिपात होता है। फिर क्या और कहां तक समझाया जावे। देवियों! तुम यदि सावधान हो जाओ और धर्म की रक्षिका बन जाओ तो पुरुष तो शीघ्र ही सचेत हो जाएं।

गोपालन

फिर सन्तोषकुमारी ने प्रेमलता की माता से यों कहा, माता जी! एक बात आप से कर जोड़कर कहती हूं, पुत्री का माता को समझाना है तो मूर्खता ही। इसलिए मैं समझाती नहीं, केवल वेद भगवान की एक आज्ञा आपके सम्मुख रखती हूं। अथर्ववेद कांड २, सूक्त २६, मन्त्र ५—

आ हरामि गवां क्षीरमाहार्षं धान्यं रसम् ।
आहृता अस्माकं वीरा आ पत्नीरिदमस्तकम् ॥

अर्थात् गौओं का दूध मैं लाता हूं। धान्य और रस भी मैं लाया हूं। हमारे वीर लाये हैं। यह पत्नियाँ हैं और यह घर है अर्थात् घर वही है कि जहां उत्तम धर्म पत्नी है। दूध धान्य तथा पेय रस बहुत हैं और जहाँ वीर पुरुष रहते हैं वही सच्चा घर है।

इसलिए विवाह संस्कार में कन्यादान से पूर्व गौ दान की जाती है। जैसे मधुपर्क जल आदि से सत्कार करने का आध्यात्मिक अर्थ वर को ही समझाने तथा दर्शाने के लिए होता है कि वह अपने घर पर आये हुए अतिथि का ऐसे ही सत्कार करे और जो कुछ खाये अपने चारों ओर बांटकर खाये। ऐसे ही गौ दान से श्वसुर यह दर्शाता है कि यह गौ पृथ्वी का भार उठाने वाली है। सात्विक व्यवहार और शुद्ध अमृत से पवित्र सेवा करने वाली है, ऐसे ही तुम भी अब गृहस्थी बन रहे हो तो दूसरे आश्रम वालों का भार तुम पर ही है। इस जिम्मेवारी को ऐसे ही निभाओ जैसे कि गौ निभाती है और विवाहित कन्या के लिए गौ की सेवा और पति की सेवा ये दोनों सेवाएं भी उसी दिन से अनिवार्य हो जाती हैं। जिस घर में गाय होगी, वह अपने आप तो दूध, दही, मक्खन, मलाई घृत आदि से भली प्रकार सुख उठायेंगे ही। निर्धन, दरिद्र, दीन कङ्गाल को भी प्रतिदिन अपनी छाछ, लस्सी दे देकर उनसे आशीर्वाद पाते रहेंगे अतिथि आ जावे और यदि कुछ भी गृह में उपस्थित न हो मक्खन, दधि, लस्सी से तो उनका आदर सत्कार हो ही जायेगा। बच्चे भी स्वतन्त्र रीति से खाते-पीते रहेंगे। दूध मोल लेने वाला कभी दान नहीं कर सकता। किसी निर्धन पड़ौसी को

बालक रो रहा हो, उसे दूध न मिले तो मोल लेने वाले से कौन मांगने आयेगा। परन्तु जिसके घर अपनी गौ है उससे तो वह कभी न कभी माँग कर निर्वाह कर ही लेगा। कोई निर्धन रोगी पेचिस से चिल्ला रहा हो, उसे दधि, अथवा लस्सी की आवश्यकता हो तो बेचारा कहां से लाये ? इसलिए गौ वाला गृह बड़ा उदार समझा जाता है। जो स्त्री अपने हाथ से दोहती है उसे कभी चेचक नहीं निकल सकती और जो गर्भिणी स्त्री प्रतिदिन दूध दोहे उसकी सन्तान को भी चेचक नहीं निकलेगी। गौ का गोबर और मूत्र साफ करने और हाथ से उपले बनाने वाले को खाज का रोग नहीं होता।

गृहस्थी का जीवन ऐसा त्याग प्रेम और दान का जीवन है जैसा कि गौ का। हिन्दू जाति में गौ का पीछा इसलिए पूजा तथा सत्कार के योग्य है कि वही सारे का सारा त्याग और दान करता है। गोबर, मूत्र, दूध यह सब उसका त्याग और दान है। ऐसे ही गृहस्थी की पिछाड़ी त्याग और दान की है और अगाड़ी कमाई अथवा ग्रहण की है। अर्थात् वह दूध तो ले रहा है, ग्रहण कर रहा है और फिर इसका रहस्य त्याग सिखाने का है। माता जी ! आपको घर में गौ अवश्य रखनी चाहिये और स्वयं उसकी सेवा करनी, अपने हाथ से उसे स्वच्छ जल पिलाना, अच्छा घास साफ करके देना खलि, तूड़ी (भूसा)की गोत बनानी, खुरली साफ करनी और दूध दोहने के पात्र भी भली प्रकार साफ करके धूप में सुखाना दधि और लस्सी के पात्र भी साफ करना, गौ का स्थान भी साफ सुथरा कर चौके को मन्दिर की न्याई पवित्र बना देना, गौ के शरीर को शुद्ध करती रहना, प्यार और प्रेम का उस पर हाथ

फेरना, इससे गौ माता को प्रसन्नता होती है, दूध भी बढ़ जाता है और बहुत सा समय इस सेवा में हो लग जाता है। आप ईश्वर की कृपा से बड़े धनाढ्य हैं। बेशक जो काम न हो सके वह सेवक से करा लें, परन्तु अपने सामने, अपने निरीक्षण में, क्योंकि सेवक को किसी वस्तु का इतना दर्द नहीं होता, जितना स्वामी को होता है।

वेद में तो यह आज्ञा है कि गौ के स्थान पर जाकर कभी अ-शब्द अर्थात् गाली नहीं निकालनी चाहिए अपितु गौशाला यज्ञशाला के साथ ही होनी चाहिए और स्वामी को वहां स्वयं जाकर देख-भाल करनी चाहिए।

अभ्यावर्तस्व पशुभिः सहैनां प्रत्यङ्ङेनां देवताभिः सहैधि।
मात्वा प्रापच्छपथो माभिचारः स्वे क्षेत्रे अनमीवा विराज॥

(अथर्ववेद कांड ११, सूक्त १, मन्त्र २२)

आज आप सब होंगो तो मुझ पर रुष्ट ही कि हमारे गले एक और नया जञ्जाल डाल रही है। हमारा आराम विश्राम विगाड़ रही है परन्तु क्या करूं। एक तो मुझे अपनी जाति की अवस्था देखकर बड़ा दर्द होता है और यदि यही अवस्था रही तो मुझे इसका भविष्य भी बहुत भयंकर और अंधियारा दिखाई देता है। दूसरे आप आई भी मेरे पास इसीलिए हैं कि जो मैं जानती हूं उसे आपकी भेंट करूं आप कृपा करके मेरी इस भेंट से रुष्ट न होना और इसे स्वीकार कर लेना यही मेरी आप से प्रार्थना है।

❀ ❀ ❀

॥ ओ३म् ॥

त्रयोदश अध्याय

पतिव्रता स्त्री

एको मन, एको नियम । एको मत, एको गुरु ।

कामी पुरुष का यत्न सदा निष्फल

चौधरी दीवानमल को बड़ी लग्न लग गई कि एक बार तो सारे नगर का सुधार हो जाये । एक दिन एक युवक उसके सामने से गुजरा, जो उसका सम्बन्धी भी था और बड़े परिवार का था, उसे बुलाकर कहा कि तुम्हारे गृह में तो बहुत से व्यक्ति काम करने वाले हैं, अपनी स्त्री को भी गृह सुधार की बातें समझने तथा सीखने के लिए पाठशाला और सत्सङ्ग में भेज दिया करो । घर में यदि एक भी स्त्री सुघरी हुई हो तो वह सब का सुधार कर देती है. सारे घर को सुखी कर देती है ।

नवयुवक—बहुत अच्छा ! मैं यत्न करूंगा ।

चौधरी—अरे पुत्र ! यत्न का क्या तात्पर्य है ? तुम पति हो, गृहस्वामी हो, गृहपत्नी और कहा न माने ? इससे उसकी अपनी ही भलाई है । तुम्हें आज्ञा करनी चाहिए कि ऐसा करो ।

नवयुवक—(दुःख भरे स्वर में) चाचा जी क्या कहूं ? गृहस्थ करना तो नरक मोल लेना है ।

चौधरी—फिर तो तुम्हें इसके सुधारने की और भी अधिक आवश्यकता है। ऐसा अवसर हाथ से न खोओ। तुम्हारे माता-पिता भ्राता न मानें तो मैं रात्रि को आ जाऊं, उनसे आज्ञा ले दूं।

नवयुवक—जी नहीं। मेरे माता-पिता, भ्राता तो मना करने वाले नहीं। अच्छा रात को जाकर मैं उसे समझाऊंगा और कहूंगा बल्कि जैसा भी बनेगा, करूंगा। मेरी अपनी और उसकी भलाई भी इसी में ही है।

रात को नवयुवक घर गया और जब एकान्त का समय मिला तो अपनी घरवाली से बोला देवी! आज तुम्हें एक बड़ा शुभ समाचार सुनाता हूं।

देवी—क्या शुभ समाचार लाये हो? कहीं मेरे सोने का बन्द बनाने दे आये हो क्या?

नवयुवक—बन्द बनने देना भी कोई शुभ समाचार है?

देवी—तो क्या माता-पिता और भ्राता से पृथक् होने का निश्चय कर लिया है?

नवयुवक—खूब! तुम्हें भी क्या सूझती है? मेरे माता-पिता और भ्राता तो ऐसे देवता हैं कि ईश्वर करे, मैं उनसे कभी पृथक् न होऊं, उनकी छाया सदा मुझ पर बनी रहे।

इतना सुनना था कि देवी जी विस्मित हो गई और ठण्डे श्वास लेने लग पड़ीं।

नवयुवक—मैंने तुम्हें कहा ही क्या है कि तुम्हें दुःख पहुंचा। मैं तो कहने लगा था कि गृहस्थ सुधार की पाठशाला खुली है। कन्याओं के अतिरिक्त बड़ी आयु की स्त्रियाँ भी सीखने, सुनने और समझने जाती हैं तुम भी जाया करो।

देवी बड़ी लाड़ली बनी रहती थी। बड़े नाज नखरे से बात किया करती थी, कहने लगी, क्या करूं मुझ से तो अन्न खाया भी नहीं जाता। दिन में तीन-तीन बार खाते हैं। एक मन गेहूं आठ दिन में समाप्त हो जाता है। परसों ही आप चीनी लाए हैं और सात दिन में दस सेर खप गई। मेरे तो उदर में पीड़ा रहती है, इस लिए मैं और तो कुछ नहीं, केवल दूध चावल खाती हूं और अनुपान के लिए थोड़ा घी और चीनी चाट लेती हूँ। किसी प्रकार दिन काटने हैं। निद्रा नहीं आती, इसलिए बिस्तर के नीचे फूल बिछा लेती हूं। बच्चों को पास सुलाऊं तो सहन नहीं होता। इतनी दुर्बल हो गई हूं। इसलिए आपसे कहती हूं कि बच्चों को सम्भाल लिया करो। मस्तक में सदा पीड़ा रहती है, इसलिए चन्दन का लेप लगाना पड़ता है। मेरी तो यह अवस्था है। मरी जाती हूं परन्तु आपको क्या? मेरे तो हाथ गल गये और श्वास फूल जाता है। कहाँ तक रुदन करूं और किसके पास? तुम्हारी माता कुढ़ती है और देवरानियां जलती हैं मेरे जैसा दुखिया और कोई नहीं। मुझे दुःख देने के लिए तुम्हारी माता, सब देवरानियां जेठानी, देवर, जेठ और नन्द सब ने जैसे एक मत बना ली हो। बताओ! अब किस की छाया में रहूं? उल्टे प्राणों को मुट्ठी में लिए बन-ठन के चलती हूं कि कोई कुछ जाने नहीं। मैं तो अब इतनी तङ्ग आ गई हूं, परन्तु फिर भी आपके नाम को कलङ्कित करना नहीं चाहती। आपके वंश को बदनाम नहीं करना चाहती। मन मारे रहती हूं, परन्तु आपको अभी तक कोई विचार नहीं, कोई लज्जा नहीं। अब अपना घर पृथक् कर लो तो मैं रह सकती हूं नहीं तो अब प्राण ही दे दूंगी। तुम्हें अपने माता-पिता भ्राता प्यारे क्यों न लगें वे

तुम्हारे जो हुए मैं तो पराई जाई, माता-पिता से जुदा हो आ
तुम्हारी तो कुछ लगती नहीं। विवाह की वेदी पर क्या यही प्र
ज्ञाएं की थी ? अग्नि और परमेश्वर को इसीलिए सा
किया था ? तुमने यह प्रतिज्ञा की थी कि तुझे कभी दुःखी
करूंगा। परन्तु अब तो मेरे दुःख में ही आपको हर्ष और
प्रतीत होता है। भाई से भाई सदा हो पृथक् होते चले आये
यह कोई नवीन बात नहीं जो तुम करने लगे हो माता-पिता
क्या ? उनके खाने को हर स्थान पर बहुत है, उन्हें कोई कि
नहीं। वह किसी के पराधीन नहीं। जिससे बनेगी उसी के
रहेंगे। नहीं तो सैंकड़ों माता-पिता भी तो पृथक् रह कर अ
निर्वाह कर लेते हैं। माता-पिता, भ्राता, भाविज से तो प्रत्येक पु
होता चला आया है। स्त्री, और पुरुष भी कहीं जुदा हुए
स्त्री जैसी सच्ची शुभ चिन्तका और कौन है ? जिसने अ
सर्वस्व न्यौछावर कर दिया, पति से कुछ भी छिपाकर नहीं रख
दुःख सुख में स्त्री ही सलाहकार होती है। अपने माता-पिता,
बहिन की कुछ भी परवाह नहीं करती और पति पर वारी
है। जब पतिदेव का यह हाल हो तो और किसको पुकार क
परमात्मा साक्षी रहेगा। तुम जान लो, मैं अब जीवित न रहूं
बस कल मैं इस जगत में न रहूंगी। यह कहकर अश्रु बहाती
वह पति के गले से लिपट गई और आहें भरने लगी।

प्राण-प्रिय स्त्री का यह निश्चय सुना। वह कामान्ध
पति बोला, तुम ऐसा दुःख मत करो। देखो ! मैं कल ही आ

पिता भ्राता, भगिनी सबको पृथक् करता हूं और तुम्हें रसकड़ी, बाजूबन्द और जो कुछ भी कहोगी बनवा दूंगा।

शोक है आर्य जाति! पति की यह गति करने वाली ऐसी सिर चढ़ी जब जबर जङ्ग स्त्री पति के कान दिन रात फूंका करती है और फलते-फूलते गृह में फूट डाल देती है·····) स्त्री ने पति को गधा बना दिया और यह भी उसके साहस का भार उठाए उसके पीछे-पीछे चला। जो स्त्री ऐसी जबरजंग हो कि पति से अपनी ही सेवा कराती हो और भगवान् के समान अपनी ही पूजा कराती हो, जो पति को कुत्ता बना के रखे हुए हो और वह भी कामान्ध गर्दभ बनकर उसी के गिर्द परिक्रमा करता हो और उसका अनुयायी बनकर अपने ही सज्जनों को दूर करता हो वह अपने जीवन को व्यर्थ ही नष्ट कर रहा है। जिसका जीवन स्त्री के आधीन हो जाता है, उसके दर्शन से बड़ा अपशगुन होता है। यह जीव न जाने मदारी के वन्दर के समान क्यों जीवित है? स्त्री के मधुर भाषण पर लट्टू होकर कायर पुरुष किस प्रकार अपने हितेच्छुक सम्बन्धियों को त्याग देता है।

(२)

स्त्री धर्म

ग्रीष्म-ऋतु है। रात्रि के समय चांदनी छिटक रही है। कुछ विवाहित देवियाँ वायु सेवन करती हुई सन्तोष कुमारी के गृह पर आईं और कहने लगीं, 'बहिन जी! दिन को तो हमें अवकाश नहीं मिलता कि हम पाठशाला आयें। जो स्त्रियां और कन्याएं आपकी बातें सुन आती हैं, वे सब बड़ी प्रशंसा करती हैं, इसलिए हमने सोचा कि तनिक आप

के पास जा बैठें। हमें कुछ पढ़ना तो है नहीं, क्योंकि बीस-पच्चीस का भया हो भया। हमें तो कृपा करके कोई उपदेश ही सुना दो।

सत्यव्रत की माता बोली, सारा दिन तो बेचारी माथा खपाती है, अब जरा विश्राम करने देती तो अच्छा था।

सन्तोष कुमारी—हमारे घर चल कर आई हैं। यह हमारी अतिथि हैं। इतना आदर सत्कार तो हम कर नहीं सकतीं, इसलिए जो-जो यह चाहती हैं मैं वही सेवा पांच सात मिनट अवश्य इनकी कर दूंगी। परमेश्वर मेरी अवश्य सहायता करेगा आप केवल आशीर्वाद देती रहें।

फिर वह उनसे बोली, बहिनो! मैं तो सब तुम्हारे ही काम की बातें कहती हूं जो इन पर आचरण करती हैं, वह धन्य हैं, जो नहीं करतीं वह भी तनिक सावधान रहें क्योंकि यदि (१) स्त्री पतिव्रता बनी रहे, (२) शील को रक्षा करे, (३) धर्म कार्य में पति के अनुकूल आचरण करे, (४) घर आँगन को झाड़ू आदि देकर लीप-पोत कर स्वच्छ रखे, (५) गौ कि सेवा करे, (६) अतिथियों का आतिथ्य और विद्वान् ब्राह्मणों का सत्कार करे, (७) कीर्तन सत्सङ्ग में भाग लें, (८) घर सबको सुखी और शान्त रखने का प्रयत्न करे और (९) बाल बच्चों में हरि भजन और प्रभु प्रेम उत्पन्न करे तो वह धन्य है। प्रत्येक कुलीन स्त्री अपनी शुद्धता और सतीत्व की रक्षा के लिए प्राण तक न्यौछावर कर देती है और कभी अनाचार में प्रवृत्त नहीं होती। स्त्री के चित्त को शांत और सन्तोषी होना चाहिए। स्त्री को नाक भौं कभी नहीं चढ़ानी चाहिए, इसका सन्तान पर बहुत प्रभाव पड़ता है। बस स्त्री का

मुख्य धर्म पतिव्रता हो शास्त्रों ने कहा है। पति ही उसका गुरु है। पति वाक्य हो उसके लिए प्रमाण है, इसलिए पत्नी को कोई गुरु धारण करने की आवश्यकता नहीं है।

वेद कुमारी—यह जो लोकोक्ति है कि गुरु बिन गत नहीं इसलिए गुरु तो सबको धारण करना चाहिए, इसीलिए तो सब स्त्रियां गुरु धारण करती हैं।

संतोष कुमारी—यह तो ठीक है कि गुरु के मार्ग बताये बिना कोई ज्ञानी मनुष्य अपनी जीवन यात्रा कैसे कर सकता है। जब तुम अपने माता-पिता के घर थीं तब उनके आधीन थीं। उनका मकान ही तुम्हारा और उनकी उपजाति तुम्हारी हो उपजाति थी। जब तुम्हारा विवाह हो गया तो अब तुम्हारा घर वही है जो तुम्हारे पति का घर है। तुम्हारी उपजाति भी वही है जो तुम्हारे पति की है। पति के माता-पिता ही तुम्हारे माता-पिता हैं। तुम अपने पति के मातुल को मातुल, चाचा, को चाचा और नानी-नाना को नानी-नाना कहती हो। इसलिए तुम्हारे पति का जो गुरु है वही तुम्हारा भी गुरु है।

वेद कुमारी—यदि स्त्री और गुरु धारण करे और पुरुष और तो क्या कोई दोष है?

सन्तोष कुमारी—यदि पृथक्-पृथक् हों और जिस समय तुम्हारा गुरु आ जाये और उसी समय उसका भी आ जाये तो दोनों की सेवा सुश्रुषा और श्रद्धा में तुम्हारा और उनका भाव एक जैसा नहीं रह सकता। तुम जब अपने पति के आधीन हो, तो तुम स्वन्तत्र

रूप से अपने गुरु में कैसे श्रद्धा रख सकती हो ? और उसकी सेवा भी ठीक-ठीक कैसे कर सकती हो ? वह दोनों में फूट का कारण बन जायेगा। दूसरी बात यह है कि तुम्हारा गुरु और मत का हो और तुम्हारे पतिदेव का और मत हो तो तुम्हारी वह प्रतिज्ञा जो तुमने विवाह के समय की थी, भङ्ग हो जावेगी। तुमने कहा था:-

प्रमे पतियान पन्था कल्पतां शिवा अरिष्टा पति लोकं गमेयम्।
(सा० वे० म० ब्रा० प्रा० १ ख० १ मं० ८॥)

अर्थात् मेरे पति का जो मार्ग है, वैसा ही मेरा मार्ग बने कि जिससे मैं (शिवा) सुख पाती हुई (अरिष्टा) निर्विघ्न निश्चिन्त होकर (पति लोकम्) सब के पति परमात्मा को (गमेयम्)प्राप्त हूं।

यदि पति का मत और है पत्नी का और जैसे कि कई एक ईसाइयों के हो गये हैं, क्या वह आर्य अथवा हिन्दू रहेंगे ! समस्त आर्य अथवा हिन्दू कहलाने वाले जिन के सिर पर चोटी और गले में यज्ञोपवीत है, उन सबका धर्म वेद है जो सनातन है जो धर्म सबसे पूर्व सनातन काल से प्रगट हुआ वह वेद से हुआ इसलिए वैदिक धर्म ही सनातन धर्म है और इस वेद का निर्माता परमात्मा ही हम सब का गुरु है और वेद-माता गायत्री मन्त्र ही हम सब के लिए गुरु मन्त्र हो सकता है अन्य कोई नहीं। जब आपके पति को यह गुरु मन्त्र अपने गुरु से मिला हुआ है और तुम भी इस मंत्र को जानती हो, तो यह मन्त्र तुम्हारे लिए भी उसी परम पद को प्राप्त करने वाला है जो तुम्हारे पति को प्राप्त करायेगा। इसी लिए अन्य गुरु धारण करने की आवश्यकता नहीं रहती।

वेद कुमारी—जब बालक गुरुकुल में अथवा विद्यालय में कहीं पढ़ने जाता है तो उसका गुरु पुरुष होता है और कन्या कहीं दूसरे विद्यालय में जाती है तो उसे भी जो बहिन पढ़ाती है वही उसकी गुरु हो जाएगी तब भी तो भेद रहा।

सन्तोष कुमारी—गुरु कई प्रकार के होते हैं। जिससे भी कोई चीज सीखी जाए वही उस चीज का गुरु होगा। इसलिए जो शिल्प अथवा कसब सिखावे, वह शिल्प गुरु अथवा कसब गुरु, जो विद्या पढ़ावे वह विद्या गुरु और जो यज्ञोपवीत संस्कार करावे वह संस्कार गुरु है। और सब उपदेशक भी गुरु श्रेणी में आते हैं परन्तु वास्तव में गुरु वह होता है जो अज्ञान और अन्धकार से निकालने वाला और ब्रह्म प्राप्ति का मार्ग दर्शाने वाला हो। वही गुरु वास्तविक गुरु है और शिष्य के सब पाप पुण्य का जिम्मेदार और उसका निरीक्षण करने वाला होता है।

शिल्प गुरु, विद्या गुरु, संस्कार गुरु

वेदकुमारी—यदि किसी का पति अपढ़ हो, जब्जड़ हो अथवा माया में लीन रहने वाला हो और उसने गुरु भी न किया हो अथवा कोई विधवा हो फिर !

सन्तोष कुमारी—बहिन जी तुम बहुत दूर चली गई हो। साधारण लोगों के लिए उपदेशक गुरु ही पर्याप्त है, क्योंकि केवल गुरु ही बनाने पर अथवा धारण करने पर ही गति नहीं हो जाती और यह एक बड़ी भारी भूल है। आजकल तो जैसे सर्व साधारण लोग हैं वैसे उनके गुरु भी हैं। जिस किसी ने एक बार कह दिया कि महाराज मैं गुरु धारण करना चाहता हूं, मुझे उपदेश अथवा

नाम दान दीजिए, तो बस उन्होंने शीघ्र ही मन्त्र दे दिया। पीठ पर हाथ फेरकर आशीर्वाद भी दे दी। वरन् वास्तव में तब धारण करना चाहिए जबकि जीव न तो आत्म स्वरूप जाग ही रहा हो और न विषयों की मोह निद्रा में सो रहा; तब ही उसे गुरु उपदेश की आवश्यकता होती है।

सुख प्राप्ति का सुगम उपाय

परमेश्वर ने तो वेद में ऐसा सुगम प्रयोग बताया है। दम्पत्ति यज्ञ करे तो उन्हें हर प्रकार का सु और पुत्र-पौत्र तक मिल सकते हैं।

या दम्पती समनसा सुनुत आ च धावतः।
देवासो नित्ययाशिरा॥ (ऋ० मं० ८। सू० ३१। मं०

इन ऋचाओं का देवता दम्पत्ति है अर्थात् स्त्री और पुरुष। इनमें जाया (जननी) और पति के कर्त्तव्य का वर्णन है।

अर्थात् हे विद्वान पुरुषों! जो पति पत्नी एक मन होकर इकट्ठे यज्ञ करते हैं और स्वस्तिवाचन, प्रार्थना तथा उपासना द्वारा परमात्मा के निकट दौड़ते हैं, ईश्वर के आश्रय से सब नि कर्म करते हैं, वह कदापि दुःख क्लेष नहीं पाते। जो पति पत्नी सदा सम्मिलित होकर यज्ञ का सम्पादन करते हैं, वे दोनों नाना प्रकार के भोगों को पाते हैं और अनाज (रोजगार) के लि इधर-उधर नहीं भटकते अर्थात् विविध सुखों से सदा पू रहते हैं।

इनमें एक देवी ऐसी बैठी थी जिसके सन्तान न थी। उस वेद कुमारी के कान में कहा कि "सन्तोष कुमारी ने जो यह

वह दम्पत्ति पुत्र पौत्रवान होते हैं, वह तो इनमें नहीं आया, जरा तुम पौत्रवान ही पूछ दो।"

वेद कुमारी—बहिन जी ! पुत्र-पोत्र का आपने ऐसे ही कथन कर दिया था, या वह सर्व सुखों में शामिल होने से आ गया। क्या किसी वेद मन्त्र में ऐसा कोई वर्णन है ? परन्तु मैं तो ऐसा मन्त्र चाहती हूं, जो पति पत्नी के मोक्ष का हो।

संतोष कुमारी—वेद मन्त्र भी है, लो वह आप भी सुन लो।

पुत्रिणा ता कुमारिणा विश्वमायुर्व्यश्नुतः। उभा हिरण्य-पेशसा ॥८॥ वीति होत्रा कृतद्वसू दशस्यन्तामृताय कम्। समूधो रोमशं हतो देवेषु कृणुतो दुवः ॥९॥

ऋ० म० ८। सू० ३१। म० ८,९

अर्थात् वह यज्ञ करने वाले पत्नी और पति पुत्र और पुत्रीवान होते हैं। कुमार कुमारियों से सदा युक्त रहते हैं। पूर्ण आयु को भोगते और जगत में निष्कलंक रह के दोनों सदा सच्चरित्र रूपी स्वर्ण भूषणों से देदीप्यमान होते हैं।

मन्त्र ९—जिन दोनों का अग्निहोत्र कर्म प्रिय है, जो धर्म रूप धनों से सम्पन्न हों, जो परम उदार दानी हों, ऐसे दम्पत्ति अन्त में मोक्ष के योग्य होते हैं। एवं (और) यह दोनों बहुत ज्ञान-विज्ञान को प्राप्त करते हुए सदा सम्मिलित हैं अर्थात् उनमें बियोग नहीं होता। ऐसे ही दम्पत्ति विद्वानों के मध्य सेवा कर सकते हैं।

वेद कुमारी—क्या आप वेद भी पढ़ी हुई है ?

संतोष कुमरी—बहिन जी ! जैसे मैं पढ़ सकती हूं, वैसे आप

भी पढ़ सकती है। हमारे घर में हवन, संध्या नित्य कर्म के पश्चात् प्रतिदिन पिता जी वेदामृत से कथा करते हैं और हम सब श्रवण करते हैं। जो मन्त्र मेरे मतलब (विषय) के होते हैं, उन्हें मैं नोट कर लेती हूं और अवकाश मिलने पर उन्हें स्मरण कर लेती हूं। उन पर विचार कर लेती । वैसे वेद मैं पढ़ी हुई नहीं हूं।

वेद कुमारी—हमारे घर में भी वेदामृत रखा है, परन्तु हमारी समझ में नहीं आता, इसलिए नहीं पढ़ती।

संतोष कुमारी—यह मन्त्र भी वेदामृत में ही मैंने पढ़े और सुने हैं और आपको समझ आ गई है ना ?

वेद कुमारी—हाँ।

सन्तोष कुमारी—इसलिए बहिन जी ! इन्हें प्रतिदिन पढ़ना चाहिये, और जो भी समझ में आ जावे, उसी पर आचरण आरम्भ कर दें। यही पर्याप्त है। इससे धीरे-धीरे और भी समझ में आने लगेंगे।

वेद कुमारी—बहिन जी ! सन्त लोग तो जगत मिथ्या बतलाते हैं और कहते हैं कि अरे ! इस जंजाल से अपना गला छुड़ा लो। गर्भवास के महान कष्टों से बचो। इस क्षुद्र सुख पर थूक दो और परमानन्द को प्राप्त करो। मैंने जिस सन्त को गुरु धारण किया था उनका यही उपदेश था।

क्या जगत मिथ्या है ?

संतोष कुमारी—बहिन जी ! तो क्या आपने गुरु उपदेश पर आचरण किया ?

वेद कुमारी—हरे राम। हम गृहस्थी हैं, हमसे यह विचार कैसे छूट सकता है? पति और बच्चों को छोड़कर कहां जाएं।

संतोष कुमारी—बहिन जी यही भूल होती है। स्त्रियों के गुरु धारण करने में मैंने तो आपसे कहा था कि गुरु उपदेश की तब ही आवश्यकता है जब कि जीव न तो आत्म स्वरूप में जाग ही रहा हो और न विषयों की मोह निन्द्रा में सो ही रहा हो। यदि यह जगत् मिथ्या होता और स्त्री गर्भवास के महान कष्ट से बचती तो वह आपके गुरुदेव सन्त महाराज कैसे उत्पन्न होकर आपको उपदेश करते।

संसार सागर से पार उतरने की भय रहित नौका

नदी अथवा दरिया को पार करने के लिए तैरना सीखने की आवश्यकता है और तैरना तुरन्त ही नहीं आ जाता। उसके लिए बहुत दिन हाथ-पाँव मारने पड़ते हैं और कई बार डुबकी भी खानी पड़ती है। यह संसार नदी तो नहीं, दरिया भी नहीं, अपितु सागर है, महान् सागर है। इसका तैरना कुछ सुलभ नहीं। इसके लिए सबसे प्रथम कर्त्तव्य है कर्म। और गृहस्थ इस कर्म की बड़ी उत्तम, सुन्दर और भय रहित नौका है। इस गृहस्थ को पूरा का पूरा कर लेने पर इससे आगामी भूमियां उपासना और ज्ञान का फिर स्वयं सुगम हो जाती है। मैंने यह जो उपदेश सुनाया है, वह भी महाराष्ट्र देश के एक प्रसिद्ध सन्त महात्मा तुकाराम जी ने स्त्रियों के प्रति कहा है। वह सन्त अपने मत में त्यागी वैरागी हुए हैं। जो उपदेश आपके गुरु ने किया, वह ही उनका होता था परन्तु अधिकारी को। प्रत्येक

को नहीं। सबके लिए तो वही उपदेश है जो मैंने उनके श्र
वचन म आपको सुनाया है।

❋ ❋ ❋

ओ३म्

चतुर्दश अध्याय

आशीर्वाद और सफलता—शिशु सुधार

माता-पिता की भिन्न-भिन्न तथा सांझी जिम्मेवारियां

तुझ को पराई क्या पड़ी अपनी निबेड़ तू ?

आज प्रातःकाल ही लज्जावन्ती की सास भी अपने घर
सब वहुओं को साथ लेकर पाठशाला में आ गई। जो ब
रात को लज्जावन्ती के साथ सन्तोष कुमारी के घर गई थी,
घर की देख भाल के लिये घर में ही छोड़ आई और आते
जोशीले उच्च स्वर में कहा, पुत्री सन्तोष ! मैं लज्जावन्ती की स
हूं। पहले तो मैं तेरी बड़ी विरोधन थी, परन्तु तू तो वस्तु
कोई जादूगरनी ही सिद्ध हुई। हम बूढ़ियां की न तो पुत्र ही सु
हैं, न पुत्रियाँ और न बहुएं ही, परन्तु तेरे मुखों से निकली प्र
वात सभी तुरन्त मान लेते हैं। पूत्री तू बड़ी कमाई करके उत्
हुई है। कल सायं घर आते ही लज्जावन्ती ने सबको हटाकर
का सब काम अपने हाथ से किया। ईश्वर की कृपा से हम
कुटुम्ब बड़ा है परन्तु उसने किसी को कुछ करने नहीं दि

ग्रीष्म ऋतु थी। लाड़ों पली थी। पसीने से ही उसका स्नान हो हो गया था। सब वस्त्र भीग गये थे। ताप भी बड़ा लगा था, इसलिए मैंने दूसरी बहुओं को संकेत किया कि पात्र इसे न मांजने दे ताकि इसे कुछ विश्राम मिले। दैव वशात् हमारी कोठी का रसोइया अपनी माता के रुग्ण होने के कारण अकस्मात् ही अपने घर चला गया है और इधर कोठी में १० व्यापारी मेहमान भी आ गये। यह तो उनकी रोटी भी स्वयं पकाना चाहती थी परन्तु मैंने घर के सेवक से कहा, तू ही झटपट पका दे, क्योंकि इसका तो वह पहला दिन था। इसलिए बहुत थक गई थी। खाने वाले जब घर आये तो उसका पकाया हुआ खाना खाकर सभी बड़ी प्रशंसा करने लगे। आज तो रोटियां रेशम की तरह कोमल थीं, इसलिए उन्हें बड़ी स्वादु लगी। यह कहते-कहते वह आगे बढ़ती हुई संतोष कुमारी के पास जा पहुंची और उसके सिर और पीठ पर हाथ फेर कर आशीर्वाद देती हुई यों कहने लगी, पुत्री ! आज तेरे गुणों के लिए आशीर्वाद देने और तेरे दर्शन करने आई थी।

सन्तोष कुमारी ने बूढ़ी माता का अशीर्वाद पाकर उसका धन्यवाद किया और सब बैठी हुई बहिनों से कहने लगी, प्यारी बहिनों चौके में भोजन की पवित्रता और अपने स्वास्थ्य का विशेष ध्यान किया करो। गीष्म ऋतु में पसीना बहुत आता है, अतः एक स्वच्छ वस्त्र अथवा अंगोछा अपने पास रखा करो उसे प्रातः सायं धो डालना चाहिए पसीना तुरन्त उसी से पोंछ लिया करो। हाथ से अथवा अंगुलियों के पसीने का जल कभी न गिराया करो। ताकि यह जल आटे सब्जी आदि में गिर कर भोजन को अशुद्ध न कर

पाये और न मध्य में उठना पड़े । अन्त में भोजन बना कर औ चूल्हे के कार्य से निवृत्त होकर तुरन्त बाहर भी न चले जाना चाहि क्योंकि इस प्रकार वायु लग जाने से फुफ्फुस (फेफड़ा) को हा पहुंचने की सम्भावना होती है और कभी वायु सन्धि रोग भी जाता है । गीष्म ऋतु में जब हवा बन्द हो जाती है कुछ देवि तो भोजन पकाते हुए अग्नि के ताप से घबरा जाती हैं औ पंखे पर जल डालकर अपने आपको हवा करने लग जाती हैं। ऐ भी नही करना चाहिए । इससे "ताग्रो" (जलन) का रोग जाता है ।

संयम का जीवन

आज ताप अधिक था, वायु बन्द थी । पढ़ाने और समझाने रूचि भी किसी को नहीं होती थी । इतने में देवी अन्दर प्रविष्ट हुई और बड़ी ठण्डी श्वास भर कहने लगी कि 'ईश्वर तरस करो ! परमा देव ! दया करो । त्राहिमाम् ! त्राहिमाम् !!

सब का ध्यान उधर हो गया । प्रेम की माता ने कहा, पुत्री ! क्या हो गया । बिचारे पतमल जो बड़ा धर्मात्मा, सदा सच्चा और सद्व्यवहारी पुरुष प्रसिद्ध है, का पांच छः वर्ष के का देहान्त हो गया, जो बड़ा होनहार बालक था ।

प्रेम की माता—राम-राम ! उसे क्या हो गया था ! रोगी सुना नहीं गया ।

देवी—पतमल गन्ने लाया था । उसके टुकड़े-टुकड़े करके एक टुकड़ा तो सब बच्चों को दे दिया । जो एक दो बच्चे खेलने गये थे, उनके लिए, और स्त्री के लिए और अपने लिए

के टुकड़े उठाकर रख दिये। बालक ने जो बहुत से टुकड़े पड़े देखे तो इनमें से एक टुकड़ा और उठा लिया। बस पतमल के यह देखते की देर थी कि झठ क्रोध में भर दौड़ा और बालक से गन्ना छीनकर उसे मारने लग पड़ा कि तूने दूसरे का भाग क्यों उठाया ? मेरे दिये हुए पर क्यों संतोष न किया, क्यों चोरी की ? क्यों पाप किया ? अभी तेरी यह दशा है, कि भाई का भाग सीना जोरी से हमारे सामने छीन रहा है तो वड़ा होकर क्या करेगा ? इस तरह कहता भी गया और मारता भी गया। बालक ने चीख पुकार की, बहुत चिल्लाया। मुहल्ले वाले भी दौड़े आये। छुड़ावें तो सहसा बेतहाशा एक और भी लगादे, यहां तक कि बालक मूर्छित होकर गिर पड़ा। बाकी बालक उसके भाई उसकी सहानुभूति में रोते हुए भय से भाग गये। अब वह बालक बेसुध पड़ा हैं, जल उसके मुख पर डाल रहे परन्तु पतमल क्रोध में भरा अभी तक अपनी बकवाद कहो अथवा शिक्षा निरन्तर जारी रखे हुए है बालक जब सचेत हुआ तब पिता से कह लगा, (पता नहीं यह शब्द उससे सरस्वती बुलवा रही थी अथवा कोई अन्दर से कहलवा रहा था, क्योंकि अभी तक इतना ज्ञान कहां ?), 'लो यह टुकड़ा भी ले लो। मैं नहीं खाता, अब मैं तुम्हारा पुत्र नहीं रहूंगा" पिता ने कहा, तो क्या भिक्षा मांग कर खायेगा ? मुहल्ले वाले कहने लगे, अरे भाई शुभ वाणी बोलो, बालक को मार डाला और अभी तक ठंडे नहीं हुए। कहने लगा मर जाये तो कुछ परवाह नहीं मुझे, ऐसे बालक की, जो सन्तोष न रखकर दूसरे का माल लूट ले।"

बालक के हृदय और मष्तिक पर इसकी प्रत्येक बात का प्रभाव

पड़ रहा था और मार से भी कई कड़ी चोट आ चुकी थी। कहने लगा मां ! मां ! मुझे प्यार तो दे जा। हाथ फेर कर आशीर्वाद तो दे जा। अब मैं जाता हूं मुझे क्षमा कर देना, मैंने तुम्हारी सेवा न की। अब मेरे भाग की सब सम्पत्ति मेरे भाईयों में बांट देना, पिताजी को प्रसन्नता होगी। लोग सुनकर चकित और सुन्न रहगये कि इतना छोटा बालक और ऐसी बातें। माता दौड़ी आई, उसका कलेजा कांपने लगा, हाथ थरथराने लगे। कांपते हुए हाथों से पुत्र के शरीर पर हाथ फेरने लगी और निष्पाप बालक ने माता का आशीर्वाद ले कर वहीं श्वासांत कर दिया और परलोक गमन कर गया।

घर कुहराम (कुतुहल) मच गया। अब पिता भी दीवार से टक्कर मार रहा है और मां भी छाती पीट रही है। बच्चे हाय। हाय ! और जोर जोर से रो रहे हैं। ईश्वर तरस करे, मुहल्ले वाले भी त्राहि-त्राहि कर रहे हैं। नगर भर में समाचार फैल गया। पंचायत और नगर वाले सभी शोक प्रकट करने के लिए आ गये। महाशय ज्ञान प्रकाश जी (सन्तोषकुमारी के श्वसुर) का भला हो, उसने बचा लिया, नहीं तो सिपाही उसे हथकड़ी लगाने आ गया था। यह दुःख भरी व्यथा सुनकर वहां कई देवियों और कन्याओं के अश्रु निकल आये। एक देवी ने सन्तोष कुमारी से पूछा—पिता होकर इतना क्रोध क्यों ? वह पतमल तो बड़ा पठित सद्व्यवहारी और सज्जन प्रसिद्ध है। बेचारे के बहुत से बच्चे हो गये। ईश्वर ने लाज रख ली, वरन् अभियोग हो जाता तो सब सम्पत्ति विनष्ट हो जाती। यह छोटे-छोटे बालक माता कैसे पालती।

सन्तोष कुमारी—बहिन जी ! यह सब अनाचार जो गृहस्थ में दुःख, अशान्ति और पाप को पैदा करने वाले हैं, केवल संयम का जीवन न होने का परिणाम है ।

क्रोध चाण्डाल है

उक्ति है कि क्रोध बड़ा चाण्डाल है जिसके साथ स्पर्श कर जावे तो वह तुरन्त अपवित्र और अशुद्ध हो जाता है । वैसे तो सब को ही क्रोध आता है, परन्तु मोह-ग्रस्त प्रकृति वाले को जब बड़ा क्रोध आवेगा तो वह सहन नहीं कर सकेगा स्वयं रोने लग जायेगा । लोभी को जब बहुत क्रोध आता है तो गुप्त रीति से टेढ़ी चाल सोचता है । प्रतिकार (बदला) लेने के लिए उस के मन में अग्नि भड़कती है । अहंकारी पुरुष को जब क्रोध आता है, तो उसका शरीर काँपने लग जाता है । ईश्वर इससे बचाये । जब कामी को क्रोध आता है तो वह बड़ा अत्याचारी हो जाता है । उसकी आँखों में उसी समय अंधेरा छा जाता है और वह अन्धा होकर प्रहार करना आरम्भ कर देता है । यह कामी पुरुषों के क्रोध का परिणाम। गृहस्थियों को जब तक इन्द्रिय संयम का ध्यान नहीं आयेगा तब तक गृहस्थ सुधार नहीं होगा । गृहस्थ सुधार का यही मुख्य साधन है। इसलिए गृहस्थियों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जो काम माता का है उसमें अत्यन्त विवशता के बिना पिता हस्त-क्षेप न करे, क्योंकि दोनों ही मिलकर सन्तान पैदा करते हैं ।

परन्तु गर्भ में रखने का काम परमेश्वर ने स्त्री को सौंपा है, पुरुष को नहीं । इस लिए माता के अन्दर प्रभु ने जैसा

गृहपति और गृहपत्नी का अपना-अपना कार्य क्षेत्र

तप और त्याग- उदारता और सहनशीलता का गुण दिया है, वैसा पुरुष को नहीं दिया। बालक की पालना का स्थान अथवा घर माता के स्तनों को बनाया है, पिता के नहीं। जिस प्रेम और प्यार से माता अपने इस अमृत भण्डार से बालक का लालन पालन करती है, वह पिता की सामर्थ्य में नहीं। माता बालक की चीख और रोने को सहन नहीं कर सकती। उसका स्नेह-मय हृदय बालक को शान्त करने के लिए प्रेम से उछलने लग जाता है। यदि बालक की भूख लगे तो वह न पिता के पास जायेगा, न भ्राता अथवा भगिनी के, परन्तु माता जब अपना दया भरा हाथ फैलाती है, बच्चा फुदक कर उसके पास जाता है। जब माता स्वयं अथवा मांगने पर दुग्ध पान कराती है उसका हृदय ठण्डा हो जाता है। परन्तु पिता, वह तो एक गन्ने का टुकड़ा तक नहीं सहार सका।

पुरुष कमाए और स्त्री शुद्ध करे

पुरुष का कर्त्तव्य है कमा कर लाना और स्त्री के अर्पण कर देना। इस कमाई को अब शुद्ध और पवित्र करना स्त्री का काम है। जैसे पुरुष अनाज घर में लाता है तो स्त्री उस अनाज को ओखल मूसल से छड़ कर सूप और छननी से फटक कर और छानकर शुद्ध और पवित्र करती है, प्रेमभाव से पीसती पकाती है और श्रद्धा, भक्ति प्रीति से परोस कर अतिथि को खिलाती है और इस प्रकार पुरुष की कमाई को पवित्र कर देती है। वैसे पुरुष को चाहिए बच्चों का खिलाना, पिलाना, जगाना और उन्हें उठाना,

बैठाना, चलाना, बोलना सिखाना, आदि कार्य सब स्त्री के जिम्मे कर दे और स्वयं उनमें कभी दखल न दे। उदाहरणार्थ बच्चा रो रहा है और माता उसे खाने को नहीं देती तो पुरुष मौन रहे इस में हस्तक्षेप न करे यदि उससे सहा नहीं जाता तो प्रेमपूर्वक उससे उसका कारण पूछे, न कि स्वयं उठा कर देने लगे, आज्ञा करने लगे। क्योंकि बालक की प्रकृति बनाने वाली और उसे जानने वाली उसकी माता ही होती है। माता का सर्वस्व अपनी सन्तान के लिए ही होता है सन्तान से बढ़कर उसे कोई चीज प्यारी नहीं।

माता-पिता की प्रकृति में भेद

माता अपने बच्चे को खाते हुए देखकर स्वयं बिना खाये ही तृप्त हो जाती है, परन्तु पिता इस प्रकार तृप्त नहीं हो सकता। माता को जो भी भाग मिलेगा वह उसे भी बालक के लिए रख छोड़ेगी, यदि खा भी लेगी तो अल्पाँश बचाकर अवश्य ही बच्चे को देगी, चाहे वह उसके सामने पहले खा ही रहा हो। माता को जहाँ भी जो चीज मिलेगी यदि बालक उसके पास न हो तो वह उसे घर ले आयेगी और पिता को जहाँ कोई चीज मिले और बच्चा पास न हो तो वह सब चट कर जायेगा। सारांश सन्तान की पालना में कृपण पुरुष कृपणता ही करेगा परन्तु माता यदि कन्जूस हो तो अपने लिए तथा दूसरों के लिए तो कंजूसी कर लेगी परन्तु सन्तान के लिए कदापि न करेगी। एक कंजूस माता जिस के पुत्र कमाने वाले हैं, विवाहित हैं, यदि युवक पुत्रों को अथवा उनकी बहुओं को मक्खन न देगी अथवा थोड़ा देगी अथवा दूध थोड़ा देगी तो उसका यह नहीं होगा कि मैं अपनी संतति को इनसे वंचित रख रही हूं

वल्कि उसका भाव यह होता है कि मेरी सन्तान की पैसे की वचत हो जावे। घृत बाजार से मोल न लेना पड़े, निर्वाह तो हो ही रहा है।

ईर्ष्यालु बालक का सुधार

बालकपन में बच्चे को खाने और खेलने के बिना और कुछ नहीं भाता और बच्चे की क्रीड़ा दौड़ना, शोर मचाना, उछलना उद्दण्डता बालकपन के भाव में नितान्त स्वाभाविक है। प्रायः बालकों को लोभ तथा ईर्ष्या अधिक होती है, यह कोई दोष नहीं है, माता पिता को बच्चे की ईर्ष्या मिटाने के लिए बुद्धिमत्ता से युक्ति वर्तनी चाहिए, न कि क्रूरता से काम लेना चाहिए। बालकों पर क्रूरता कभी नहीं करनी चाहिए। इससे सरल और समझदार बालकों के दिल और दिमाग वलहीन हो जाते हैं और उजड्ड बच्चों के अन्दर धृष्टता और हठ बढ़ जाता है।

लोभी बालक को कभी थोड़ी चीज न देनी चाहिये। यदि उसे थोड़ी चीज दोगे औरे चीज पड़ी होगी अथवा माता पिता या और कोई खा रहा होगा तो वह सहसा अपनी चीज मुख में डाल लेगा चाहे मुख में समाये अथवा न, अथवा वाहर ही गिर पड़े, परन्तु उसकी दृष्टि और लेने पर लगी रहेगी। यह भी बालकों का स्वाभाव है। इस लिए बालकों का यह स्वभाव मिटाने के लिए उनके सामने बहुत सी चीज रख देनी चाहिए और बालक से कहना चाहिए, पुत्र! खूब तृप्त होकर खाओ, बस अच्छे शुद्ध भाव और क्रियात्मक रूप से चीज उसके सामने धर देने से बालकों की दृष्टि तृप्त हो जाती है फिर उदर में क्या पड़े? वह अल्प मात्रा से ही तृप्त हो जाते हैं और शेष वैसे ही छोड़ देते है। यह सद्गृहस्थियों का अनुभूत

हैं। उदाहरणार्थ खरबूजा अथवा आम की ऋतु हैं। आपने खरबूजा काटकर एक फाँक दे दी, बालक ने खा ली, अब दूसरी मांगता है। एक आम भी दो, वह लोभ में आधा ही खा कर फेंक देता है। यदि दो चार खरबूजे अथवा किलो दो किलो आम एक बार बच्चे के सामने रख दिये जावें तो वह इतने ही से तृप्त हो जावेगा, जितना भाग आप पहले उसे युक्ति रहित देना चाहते थे। सन्तान के लालन पालन, शिक्षण पोषण और रक्षण के जो भी काम हैं उनमें से कई तो नितान्त माता के आधीन हैं और कई पिता के और कई एक दोनों को सांझी जिम्मेवारी के।

गर्भ में रखना, उत्पन्न करना, दुग्ध पान कराना, सुलाना, जगाना, स्नान करना, शौच तथा मूत्र कराना अथवा करना सिखाना वस्त्र पहनाना, अन्न खिलाना, लोरियां तथा कथाओं से उसके दिल में वीरता, भक्ति तथा उदारता के भाव भरना, आचार विचार सम्बन्धी सब कार्य, किसी अङ्ग में कुचेष्टा न करने देना।

माता के आधीन काम

आचार और व्यवहार सम्बन्धी सब मर्यादाएं, रोचक और भयानक रूप में बच्चे के हृदयङ्गम करानी बड़ों छोटों बराबर वालों, सम्बन्धियों तथा अन्यों से मिलने, मिलाने उनके सामने बैठने, उनसे वर्तालाप करने कीं विधि, जैसे बड़ों के सम्मुख कभी ऊंचा न बैठना चाहिए, सबको आदर से नमस्ते करना, सबकी सेवा करनी तथा आज्ञा पालन करना।

पिता के आधीन काम

मीठा बोलना चालना, ध्यान से सुनना और समझाना, नम्रता

माता-पिता के सांझे काम से अपनी बात सुनाना, प्यार और प्रेम का बर्ताव, आचरण को निरीक्षण, बच्चों के सामने कभी दोष न करना, प्रमाद, कटु वचन, छल-कपट मिथ्या भाषण हंसी, क्रूरता, आदि सब अच्छी और बुरी बातें, लाभ और हानि उचित रूप में समझाना। इनसे समय २ पर लाभ उठाते रहें और इनसे अज्ञान के कारण कष्ट न उठावें।

❋ ❋ ❋

॥ ओ३म् ॥

पञ्चदश अध्याय

पतिव्रता वीरता

साक्षात् शिक्षा — सद्कर्म-सदाचार

आज नगर में घोषणा हो रही थी कि पाठशाला में स्त्री सत्सङ्ग होगा। सब देवियाँ वहाँ दर्शन देकर लाभ उठावें। नगर के प्रसिद्ध महाशय ज्ञानप्रकाश जी तथा चौधरी दीवानमल जी ने निश्चय किया कि नगर के पुरुष न जाएं और न ही कोई नवयुवक बालक जाये केवल प्रबन्धार्थ वृद्ध पुरुष जो सर्व मान्य भी हों, बाहर बैठ जाएं और वह वृद्ध पुरुष भी जिनकी बहुएं तथा पुत्रियां पढ़ती हैं एक ओर बैठकर सुनना चाहें तो वे भी जा सकते हैं परन्तु कन्याओं के

नव युवक भ्राताओं के जाने की आज्ञा न दी जाये। नगर की बहुत सी देवियाँ और कन्यायें तो आज नियत समय से पूर्व आ पहुंची। हवन करके, भजन प्रार्थना के पश्चात् सत्संग आरम्भ हुआ और सन्तोष कुमारी ने ईश्वर प्रार्थना के अनन्तर खड़े होकर सब उपस्थित देवियों को नमस्कार करके कहा :—

स्त्री जाति का सुख मूल

प्यारी माताओ और बहिनो ! संसार में सुख और धर्म को स्थिर रखने वाली 'स्त्री' है, बल्कि यों कहना चाहिए कि गृहस्थ में सुख और धर्म का स्थिर रहना स्त्री जाति के ही आधीन है। देश व जिस जाति परिवार की देवियां धर्म पूर्वक अपने गृह का कार्य व्यवहार करतीं हैं, वहां की जनता ही सुखी रहती है। उनके ही शरीर को अन्न और अन्न की पवित्रता से सुख मिल सकता है क्योंकि स्त्रियां ही उनके पकाने और परोसने वाली होती हैं और आत्मा का सुख ज्ञान से मिलता है, इसलिए माताएं यदि ज्ञानवान हों तो सबको ही सुख मिल जाए। यदि स्त्री का आचार और पुरुष का व्यवहार पवित्र हो, तो वे दोनों मिलकर अपने गृहस्थ का उत्थान और संसार का कल्याण कर सकते हैं और ऐसे माता-पिता ही सच्चरित्र और सुपुत्र कहलाने वाली सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं।

बालकों को शिक्षा कैसे दें

जो माताएं अपने बालकों को कुछ सिखाना चाहती हैं, उन्हें चाहिए कि प्रथम तो उन्हें इसका साक्षात् करा दें, क्योंकि मौखिक ज्ञान से यह बालक पूरा-पूरा ग्रहण नहीं कर सकते। उदाहरणार्थ आप कहती हैं कि अपने पाद और दाँत स्वच्छ रखा करो, वस्त्र साफ

रखो, प्रतिदिन स्नान करो—यह बातें बाल्यपन में ही सिखाने की हैं। परन्तु प्रत्येक माता मौखिक सिखाती है और बालक ऐसी ही शिक्षा से कतराते हैं. उनके वस्त्र उतारो तो रोते हैं। स्नान कराओ तो रोते हैं। जैसे बालकों को कथा वार्ताओं से बहलाती हो, ऐसे दृष्टान्त घड़-घड़ कर उनको नेत्रों से पाद का सम्बन्ध साक्षात् कराओ, जिससे उनको विश्वास हो जाये कि पाद साफ रखने से नेत्र की ज्योति तीव्र होती है। उसी प्रकार दन्त मन्जन से मस्तिष्क और आमाशय को किस प्रकार लाभ रहता है और वस्त्र स्वच्छ रखने का शरीर पर कैसे प्रभाव पड़ता है।

प्रत्येक इन्द्रिय के कुकर्म से नेत्र पर प्रभाव पड़ता है। पाद मलीन रहे तो नेत्र की ज्योतिहीन हो जाती है।

प्रत्येक इन्द्रिय का मूत्र इन्द्रिय के अधिक खुले रहने से वीर्य और **नेत्र से सम्बन्ध** रजोदोष होकर नेत्र की ज्योति घटती है। वह स्त्री पुरुष जिनका बालक माता का दुग्ध-पान करता है, यदि वह संयमी न रहें गृहस्थ करते रहें तो उसी दम बालक को स्तन से दूध पिला देने से बालक की आंखें दुखने लगती हैं और उसमें कुकरे पड़ जाते हैं। गुदा में अर्श (बवासीर) अथवा कोई और रोग जैसे दस्त अथवा कोष्ठबद्धता आदि हो तो भी नेत्र को ज्योति कमजोर हो जाती है। हाथों से भी जो पाप अथवा दुष्कर्म किये जाएं, वह भी नेत्रों को दूषित करते हैं। रसना इन्द्रिय की बहुत विषय-वासना वाले, बहुत बोलने वाले तथा मिथ्या भाषी और तर्कवादी की भी नेत्र ज्योति घट जाती है। बहुत गन्ध

सूंघने वाले अधिक मल नाक में रखने वाले की भी नेत्र ज्योति कम हो जाती हैं। कान में अंगुलियाँ डालकर बन्द करके अभ्यास करने वाले की नेत्र की भी ज्योति कम हो जाती है।

सारांश नेत्र का स्थान सबसे ऊँचा है। यह सूर्य का प्रतिनिधि है, यदि सूर्य में थोड़ा-सा भी दोष आ जाए तो ब्रह्माण्ड को कितनी हानि होगी। इसी प्रकार आँखों के दोष से इस पिण्ड (हमारे शरीर) की बहुत सी हानि हो जाती हैं।

माता-पिता की जिम्मेवारी

बालक के स्वभाव के निर्माण उसके माता-पिता हैं। अतः माताओं को अधिक सावधान रहना चाहिए। जिन माताओं के बालक बाजार की गन्दी वस्तुओं पर पुनः पुनः ललचाते और खाते रहते हैं, घर की बनी हुई वस्तुओं पर सन्तोष नहीं करते प्रायः धनाड्य कुल की माताएं जो बहुत धन के कारण बालकों को पथ्य (परहेज) नहीं करातीं, उनके बालक बड़े होकर अपनी एक स्त्री पर सन्तोष करने वाले भी नहीं बनेंगे। इस बात का सदाचार से बड़ा सम्बन्ध है माताएं इसे साधारण बात न समझें। जो माताएं गाजर-मूली, शाक सब्जी आदि दूसरे सौदों में जो गलियों में बिकते हैं और भाव चुका जाने के बाद चीज पल्ले में लेकर झूँगा माँगती हैं और अधिक वस्तु उठाना चाहती हैं और लेती हैं और झगड़-झगड़ कर लेती हैं उनके बनाये हुए भोजन कभी पवित्रता प्राप्त करा नहीं सकते।

इतने में बड़ी कड़क-कड़क की ध्वनि आई और उस आवाज की ओर कन्याओं और स्त्रियों का ध्यान हो गया। सन्तोष कुमारी

यह अवस्था देख कर मौन हो गई। इतने में पांच सात देवियां जिनमें कुमारी या विवाहित होने की कोई पहचान न पाई जाती थी किसी के सिर से दुपट्टा उतर कर गले में पड़ा हुआ, किसी को भुजा नग्न, अर्ध नग्न किसी के हाथ में रेशमी रूमाल और ऊंची एड़ी वाले बूटों से कड़-कड़ करती, हंसती और बड़े मायावी चिट्टे जरी किनारीदार वस्त्र धारण किये अन्दर आ गईं वस्त्र और आभूषण अत्युत्तम होने के कारण वे कोई दरी अथवा गलीचे वाला स्वच्छ स्थान ढूंढने लगीं। सन्तोष कुमारी उनके इस नागरिक ठाट बाट को भांप गई और हाथ जोडकर कहने लगी 'बहिन जी! आगे आईये और मेरे सामने बैठ जाइये, दरी बिछी हुई है।'

ये देवियाँ इस नगर में किसी विवाह में अपने किसी सम्बन्धी के यहाँ आई थीं। जब वे सब आकर बैठ गईं तो सन्तोष कुमारी बोली, "मेरी प्यारी बहनो! इस समय मुझे कुछ आवान्तर विचार भेंट करने पड़े हैं, आप भी कृपया गत विषय का ध्यान न रखना। (आगन्तुकों की ओर संकेत करके), यह मेरी बाहर से आई हुई बहिनें हमारी मेहमान और अतिथि हैं. इनकी जितनी सेवा पूजा सत्कार किया जावे, उतना ही अल्प है।

पवित्रता का महत्व

सेवा और पूजा वह करनी चाहिए जिससे दोनों का भला और उद्धार हो। जितना पवित्र, शुद्ध और बहूमूल्य भोजन वा वस्तु श्रद्धा से भेंट की जावे, उतना ही अतिथि को गुणकारी होता है। अन्न, जल, फल मेवा मिष्ठान आदि की भेंट भी अच्छी है परन्तु इन सब ने मनुष्य के हाथ स्पर्श किए हुए होते हैं। ये मनुष्य की बनाई हुई अथवा लाई हुई वस्तुएं हैं। इनके सेवन से केवल शरीर

का भला होता है ! आत्मा की तृप्ति तथा सन्तुष्टि नहीं होती। मैं परमेश्वर का अत्यन्त शुद्ध पवित्र निष्पक्ष ज्ञान जो आत्मा का वास्तविक भोजन और कल्याण करने वाला है, वही भेंट करती हूं। मनुष्य चाहे कितना ही धनवान्. बलवान् और विद्वान् क्यों न हो, कितने ही मान और शान वाला क्यों न हो, वह सर्व संसार के प्राणियों को प्रिय नहीं लग सकता और न ही सबसे प्रेम कर सकता है। केवल एक पवित्रता ही है जो सर्व प्रिय बनाती है और सबसे प्रेम कराती है और वही हमें परम पवित्र प्रभु के समीप पहुंचाती है। मनुष्य की उत्पत्ति पर सबसे पहला कार्य जो एक बालक पर किया गया वह उसे पवित्र करने का ही कार्य था। उत्पत्ति समय के बालक का शरीर मल से लथ-पथ होता। माता जिस बालक को गर्भ में रखती, बड़े कष्ट और संकट सहन करती है और वह जब यह सुनती है कि मेरे पुत्र उत्पन्न हुआ है तो वह उन सब दुःखों को भूल जाती है परन्तु फिर जब तक बालक को शुद्ध और पवित्र नहीं कर लिया जाता, उस पुत्र को अपनी छाती से नहीं लगाती और अपने संतप्त हृदय को शान्त नहीं करती, ऐसी ही परमात्मादेव भी किसी पुत्र को बिना पवित्र हुए अपनी अमृत गोद में नहीं लेते।

शरीर की पवित्रता के साधन

यह पवित्रता दो प्रकार की है। एक बाह्य जैसे हम सब देवियां नेत्र, नाक, कान, इन्द्रिय आदि जिनमें मल भरा रहता है, उनको स्थूल जल से शुद्ध करके स्नान द्वारा शरीर से मल निकाल कर और उज्ज्वल वस्त्र धारण करके यहां आई हैं। यदि हम में से कोई देवी गन्दे मलीन वस्त्र पहने अथवा मुखको धो और

स्वच्छ करके न आती तो वह किसी को प्रिय न लगती, न कोई उसे अपने पास ही बिठाना चाहती और यहाँ पर जितने जिसके अधिक उज्ज्वल वस्त्र हैं अधिक शरीर की स्वच्छता है. उसे उतना ही अधिक प्रेम करने को जी चाहता है।

आत्मा की पवित्रता का साधन

दूसरी पवित्रता है आत्मा की वैसे तो आत्मा नित्य होने से पवित्र है, परन्तु अन्तःकरण के अपवित्र व्यवहार से वह अपवित्र गिनी जाती है। इसकी पवित्रता का साधन है ब्रह्मचर्य। जिन इन्द्रियों से मल और गन्द निकलता है उन इन्द्रियों के दोषों को निकाल देने से हीं पवित्रता आती है। आंख की दृष्टि पवित्र हो कान में सत्य के शब्द सुन्दर सुहावने प्रविष्ट हों, मुख से कटु कठोर असभ्य, अशुभ, असत्य मिथ्या शब्द न निकलें, मन में कीना तथा लोभ न हो। इन मलों से पवित्र मनुष्य प्रभु और प्रभु की प्रजा को बहुत प्रिय लगता है, वह सब से प्रेम करता है। मनुष्य का बालक जब उत्पन्न होता है, तब उसका शरीर अपवित्र होता है परन्तु अन्तःकरण पवित्र, नवीन, और निर्मल होता है, पर ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता जाता है और निर्मल होता जाता है और उसे समझ आती जाती है उसका मन मलीन होता जाता है और शरीर को वह पवित्र करता रहता है। परन्तु जितना शरीर के मल को वह साफ करता है। उससे अधिक मन पर मल चढ़ाता जाता है।

इस मल का मूल कारण अहंकार है। बालक ज्यों-ज्यों बड़ा होता है, उसे अपने पिता को, उसके धन तथा परिवार को समझ आने लगती है और उसमें अहंकार उत्पन्न हो जाता है। पढ़ने में,

क्रीड़ा में, बातें करने में यदि वह चतुर होता है तो भी उसका अहंकार बढ़ता है। धीरे-धीरे इस अहंकार से उसके सब पाप बढ़ते जाते हैं। जब कोई मनुष्य अपने वस्त्रों को सादे से अधिक फैशनैबल प्रकार का बनाकर धारण करता है और शीशे में अपना आकार देखता है तो उसे अपनी सुन्दरता का अहंकार हो जाता और अपने शरीर और वस्त्रों से मोह हो जाता है। इस मोह को स्थिर रखने और बढ़ाने के लिए लोभ की आवश्यकता होती है। उदाहरण—मुझे एक भोजन स्वादु लगा, प्यारा लगा, यह मोह है। अब अधिक सेवन करने का विचार उत्पन्न हुआ तो यह लोभ वृत्ति है और तदनन्तर उसकी लालसा और कामना बढ़ती गई, यह काम हो गया और जब उसका किसी ने विरोध किया तो क्रोध प्रकट हो गया। वैसे तो साधारणतया सभी नर-नारी सदाचारी कहलाते हैं क्योंकि सदाचार आजकल इतना ही आवश्यक समझा जाता है कि जो स्पष्टतया व्यभिचार नहीं करता वह सदाचारी है। परन्तु ऐसे सदाचार में पवित्रता की कोई निश्चिन्त बात नहीं और चाहे कोई ब्रह्मचारी अथवा ब्रह्मचारिणी रहे तो भी प्रभु समीप पहुंचाने वाली पवित्रता नहीं होती।

विद्वान् शास्त्रकार और महात्मा गांधी लिखते हैं जो अन्य सब इन्द्रियों को बेलगाम भटकने देकर केवल एक ही इन्द्रिय को रोकने का प्रयत्न करता है, वह निष्फल प्रयत्न करता है। कान से विकार की वार्ता सुनता, अश्लील राग और गीत सुनता, नेत्रों से विकारोत्पादक वस्तु देखता, जिह्वा से विकारोत्तेजक वस्तु चखता, हस्त से विकारों को भड़काने वाली वस्तु का स्पर्श करता और साथ ही

साथ केवल जननेन्द्रिय रोकने का प्रयत्न करता है, वह अग्नि में हस्त डालकर भी जलने से बचने का प्रयत्न करने के समान है।

इसलिये जहां हमें अपने बाह्य शरीर तथा इन्द्रियों को पवित्र बनाकर उज्ज्वल करना है और अपने परिवार का प्रिय बनना है, वहां ऐसी शुद्धताई तथा उज्ज्वलता से भी बचा जाय जो हमारे अन्त:करण को अपवित्र कर देने वाली हो।

हमारे अन्त:करण की पवित्रता का सम्बन्ध है ब्रह्मचर्य से और यह सुरक्षित रहता है सादा रहन-सहन, खान-पान तथा वस्त्रों से। इसीलिए परमात्मन् देव ने वेद भगवान में स्त्रियों के लिए उनके जीवन पथ की एक मर्यादा बतलाई है। वेद भगवान का उपदेश है

अध: पश्यस्व मोपरि संतरां पादकौ हर।
मा ते कशप्लकौ दृशन्त्स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ ॥

(ऋग्वेद, मं० ८, सू ३३ मं० १६)

अर्थात्—हे स्त्री ! नीचे देख ऊपर न देख। गम्भीरता से पांव रख कर चल। तेरे अवयव (अङ्ग) किसी को दिखाई न दे, क्योंकि आत्मा ही स्त्री रूप से तेरे अन्दर प्रकट हुआ है।

इस पवित्र वेद मन्त्र में स्त्री को कुमार्ग से बचाने और सुमार्ग दिखाने का ही यह आदेश और उपदेश किया गया है, जिससे स्त्री का अपना नाम बड़े आदर और सम्मान से लोग लिया करे। उसके माता-पिता और कुल की सज्जनता की लोग प्रशंसा किया करे। उसका सदाचार और उसके पतिव्रत धर्म पालन में पूर्ण सहायक होकर उसे सुगम बना दे।

इसमें ये कहे गये हैं:—

स्त्री के चार धर्म

(१) वह पुरुष समान ऊपर की ओर न देखे बल्कि नीचे की ओर देखे (२) चलते समय गम्भीर गति से अर्थात् सुहृत चाल से चले अर्थात् पांव को जोर से कड़-कड़ करती न चले (३) वस्त्र से अपने अङ्गों को भली प्रकार आच्छादित रक्खे ताकि कोई अवयव दूसरे को दिखाई न दे अर्थात जंघाएं, धड, छाती, मुख, ग्रीवा, भुजा सारांश अपना कोई भी अंग स्त्री को नग्न नहीं रखना चाहिए और (४) यह समझे कि आत्मा ही अपने आप स्त्री का रूप धारण करके अवतरण हुआ है।

मैंने अपनी जाति अर्थात् स्त्री जाति के हितार्थ यह कुछ शब्द आपके सम्मुख कहे हैं यदि किसी बहिन को कोई भ्रम उत्पन्न होकर कोई दुःख पहुंचा हो तो वह मुझे अवश्य क्षमा करेगी।

महावीर कौन है

इस समय बहुत से मान्य और प्रतिष्ठित वयोवृद्ध भी उपस्थित थे। चौधरी दीवानमल ने महाशय ज्ञानप्रकाश जी से कहा कि "कुछ शब्द आप भी यहां हो खड़े होकर बोल दें" चुनांचे वह खड़े हुए और माताओं को हाथ जोड़कर और सिर झुकाकर नमस्ते करने के पश्चात् बोले:—

मेरी प्यारी पुत्रियों तथा पूज्य माताओं! आपने मेरी पुत्री का उपदेश तो श्रवण कर लिया अब कुछ शब्द रूप में मेरी भेंट भी स्वीकार करती जावें। पुरुष नंगे सिर फिरे तो उसको कोई लज्जा नहीं आती क्योंकि अब यह रीति सी बन गई है यद्यपि फिरना तो उनको भी नहीं चाहिए परन्तु स्त्रियों को तो अभी लज्जा आती है।

जब भी किसी स्त्री के सिर से वस्त्र उतर जाता है तो वह तुरन्त ढक लेती हैं। पुरानी देवियां ७०-८० साल की आयु वाली स्वगृह में भी अपने पुत्र पौतों के सामने से वस्त्र सिर से उतरना एक बड़ा अवगुण समझती हैं, क्या आप देवियां इसका कारण जानती हैं कि पुरुष के सिर पर भारी पगड़ी क्यों होती है और स्त्रियों के सिर पर सूक्ष्म या दुपट्टा क्यों? और पुरुष की पगड़ी इतनी लम्बी क्यों होती है और स्त्रियों का दुपट्टा चौड़ा क्यों होता है? यह सुनकर सब ने मुस्करा दिया, परन्तु कोई स्त्री उत्तर न दे सकी। तब महाशय ज्ञानप्रकाश जी बोले, "क्या स्त्री सिर पर भार नहीं उठा सकती! अवश्य उठा सकती है, परन्तु कारण यह है कि स्त्री और पुरुष का मिलकर एक शरीर बनता है। शरीर में कई अङ्ग लम्बे हैं और कई छोटे, कई चौड़े और कई तङ्ग। इसका अभिप्राय यह है कि पुरुष का ज्ञान कर्म विशेष के लिए है और जो कर्म विशेष करता है वही पुरुष कहलाता है, क्योंकि शरीर में कर्म-इन्द्रियां ही लम्बी होती हैं परन्तु शरीर में विशाल भाग 'सीने' का है इसलिए स्त्री का ज्ञान शौर्य और वीरता के लिए प्रसिद्ध है। पुरुष में वीरता सदा माता से आती है। वीरता किसमें है? कोई धन वीर, ज्ञानवीर, बलवीर, विद्यावीर आपने कभी नहीं सुना होगा, इसके साथ वीर नहीं सजता। 'वीर' शब्द सजता है कर्मवीर, धर्मवीर, दानवीर के साथ। इसमें स्त्री भी वास्तव में महावीर है क्योंकि महावीर हृदय की पवित्रतता से ही कहलाता है। स्त्री का हृदय बड़ा कोमल होता है, परन्तु यदि पवित्र भी हो तो कोमल हृदय की स्त्री ही धर्मवीर बन जाती हैं। इसलिए माताएं जब अपने शरीर

और वेष से अधिक अपने अन्तःकरण की पवित्रता में ध्यान देंगी तब ही यहां सुख शान्ति, प्रेम और एकता का राज्य हो जावेगा। इसके बिना यह असम्भव है।

॥ ओ३म् ॥

षोडश अध्याय

सफल कमाई

देह धरे का गुण यही ! दे ! दे और कुछ दे।
जब देह क्षय हो जायेगी। फिर कौन कहेगा दे॥

प्रेमलता घर जाकर बड़े प्रेम से कार्य करने लगी। सेवक से यह कह कर कि 'आज तुम जरा विश्राम कर लो' प्रेमलता ने पहले झाड़ू से काम आरम्भ किया। माता को कहा 'आप बैठ जावें और मुझे जो कार्य जैसा करना हो बताती जावें'। रसोईगृह तो छोटा सा ही था, जब झाड़ू देने लगी तो वहां चींटियां बहुत सी थीं। झाड़ू हाथ में लेकर नीचे देखने और विचारने लग गई कि कैसे झाड़ू लगाऊं। कुछ देर बीती तो माता ने कहा, "पुत्री ! क्या देखती है ?"

प्रेमलता—यहाँ बहुत चींटियाँ हैं, झाड़ू लगाऊंगी तो सब मर जावेंगी और पाप लगेगा।

यह सुनकर माता उठी और झाड़ू लेकर आप सफाई करने लगी और प्रेम से कहा, तू जरा पीढ़ी पर बैठ जा।' प्रेमलता देखती रही माता ने सब सफाई कर दी, कुछ समझाया नहीं कि ऐसे स्थानों पर झाड़ू कैसे लगाई जाती है फिर लेपन भी करने लगी। प्रेमलता ने कहा, 'माता जी! मुझे करने दो।' तो माता बोली, तेरे वस्त्र खराब हो जायेंगे, तू आटा निकाल कर गूंध ले।'

प्रेमलता ने आटा निकाला और गूंधना आरम्भ किया। जब गूंध लिया तो माता ने सेवक से कहा, 'तू शीघ्र अग्नि प्रदीप्त कर दे, और प्रेम से कहा, तू सब्जी काट ले।' अग्नि प्रदीप्त हो गई और माता सब्जी लेकर पकाने लगी, तो प्रेम से बोली, देख! घृत लवण, मिर्च, मसाला इतना डाला जाता है तू अभी सब्जी न बना, शायद स्वादु न बने और किसी को भी खाने में अच्छी न लगे।

इतने में रात हो गई तो प्रेम की माता ने सोचा कि कहीं ऐसा न हो कि प्रेम भोजन बनाने लग जाये और हाथ जला बैठे। उसके पिता जी आने वाले होंगे, इसलिए सेवक से कहा, तू ही शीघ्र-शीघ्र चपातियां पका ले।

जब रसोई तैयार हो गई तो चौधरी दीवानमल भी आ गये। माता ने प्रेम से कहा, 'पिता जी को भोजन परोस दे।' प्रेम ने परोस कर थाल पिता जी के सामने रख दिया। पिता जी पूछने लगे, आज प्रेमलता को परोसने को क्यों कहा? क्या भोजन और सब्जी इसी ने बनाई है।

प्रेम की माता—सबने मिलजुल कर कार्य किया है। आज

सन्तोष के यहां गई थी, तो उसने पूछा—प्रेम, भोजन सब्जी बनाना जानती है ? मैंने कहा—नहीं। इस पर वह बहुत क्रुद्ध हुई और बहुत सी बातें समझाई। यह भी कहा कि प्रेमलता घर का सब कार्य स्वयं किया करे और आपको गौ भी अवश्य रखनी चाहिए। गौ की सेवा बड़ा पुण्य कर्म और घर का भाग्य है, उसने तो वेद शास्त्रों के प्रमाण भी दिये।

चौधरी—गौएं बहुत। कल ही एक बड़ी बढ़िया गौ ला दूंगा, तुम सेवा करने वाली बनो।

प्रेम की माता—मैं और प्रेम दोनों मिलकर सेवा कर लिया करेंगी। कल जब यह पूछेगी तो क्या उत्तर देंगी। यदि प्रेम को सब कुछ सिखाना है, तब तो उसकी आज्ञा पर चलना होगा।

चौधरी—इस में संशय ही क्या है ?

रात सुख से बीत गई। दूसरे दिन पाठशाला का समय बीतने पर सन्तोष कुमारी ने पूछा—प्रेमलता ! क्या समाचार है ? गृह-कार्य आरम्भ कर दिया ?

प्रेम—आरम्भ तो किया परन्तु माता ही करने लग गई।

संतोष—क्यों माता जी ?

प्रेम की माता—मैंने तो सोचा, धीरे-धीरे करेगी तो इसे कष्ट न होगा। कहीं पहले ही दिन हाथ न जला बैठे, फिर पढ़े लिखेगी कैसे ?

सन्तोष कुमारी—माता जी ! इतना मोह, यह मोह बड़ा दुःख

मोह शक्ति देता है। शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श इन सबसे ही मोह की उत्पत्ति है। मोह की घुट्टी तो सब में ही है। जब कोई सुन्दर शब्द कान से सुनता है तो मोहित हो जाता है। कोई सुन्दर रूप अथवा वस्तु देखता है, तब भी मुग्ध हो जाता है। कोई अच्छी गन्ध भीनी-भीनी सूंघता है, तो लट्टू हो जाता है मीठा स्वादिष्ट रस चखने पर लालायित हो जाता है और किसी कोमल वस्तु को स्पर्श करे तो भी मोह आक्रान्त हो जाता है।

काम, क्रोध, लोभ, अहंकार ये सब तो मनुष्य को कलङ्कित करने वाले हैं। अधिक बढ़ जाने पर पाप की सीमा तक पहुंच जाते हैं। काम कामी को दिन रात भी सताये, तो दो बार चार बार क्रोध भी दिन भर में किसी-किसी समय ही आयेगा। लोभ लोभी करेगा भी तो कई बार। ऐसे ही खुदपसन्द अहङ्कारी मनुष्य का हाल समझो, परन्तु मोह का तो कोई भी समय नियत नहीं, वह तो हर समय ही दबाये रखता है, वहां तो बार बार का प्रश्न ही नही।

मोह जन्म से ही माता दायभाग (विरसा) में मिलता है। माता बालक को देखती है तो नेत्र में मोह भर जाता है। जब उठायेगी चूमेगी, चाटेगी तो मोह से। इस लिए माता अपने बालक के शरीर के रोम-रोम में मोह भर देती है, इसलिए मनुष्य मोह की पूर्ति है।

परन्तु यह मोह बड़ा ही भयानक शत्रु है। वियोग में सुधि

ही भुला देता है। ध्यान और ज्ञान नष्ट हो जाने पर भी मनुष्य कार्य व्यवहार करते हैं, परन्तु जब सुधि ही नष्ट हो जाये तो मनुष्य जीते जागते भी कोई कार्य नहीं कर सकता। इसलिए मोह अत्यन्त भयानक है। इसमें बड़े-बड़े दिग्गज विद्वान् भी फंस जाते हैं ब्रह्म ज्ञानियों की अन्तिम परीक्षा इसी विषय में की जाती है माता जी! फिर तो आप प्रेमलता को कुछ भी न सिखा सकेंगी।

प्रेमलता—बहिन जी! जब मैंने झाड़ू उठाई तो चौका में बहुत चींटियां थी। मैंने माता जी से पूछा, कैसे करूं? यह तो मर जाएंगी माता जी ने झट झाड़ू मुझसे ले ली और स्वयं झाड़ू दे दिया परन्तु मुझे कुछ नहीं बताया। अब आप ही बतायें कि इस अवस्था में क्या किया जावे।

सन्तोष कुमारी—जहां खाना पकाने का स्थान होगा, घृत मिठास होगी, चींटियां और मकोड़ों को तो वहां आना ही है। सब घरों में ऐसा ही होता है ग्रीष्म ऋतु में दीपक प्रकाशित करो, लैम्प जलाओ, असंख्य पतंगे आ जाते हैं और मर जाते हैं कृषक हल वाही करता है हजारों लाखों चींटियां, जीव-जन्तु निकलते हैं और मरते भी हैं परन्तु संसार के ये कार्य तो सब ऐसे आवश्यक हैं कि जिनके बिना निर्वाह नहीं हो सकता, करने ही पड़ते हैं। इसमें भावना शुद्ध और सावधानी आवश्यक शर्त है।

पंचम महायज्ञ

जान बूझकर जीवों को मारने और बेपरवाही से कार्य करते हुए (जैसे सेवक करते हैं) जीवों को मारने का तो पाप बहुत बड़ा

है परन्तु अपनी ओर से बचा बचा कर सावधानी से और बड़े शुद्ध भाव से कार्य करते हुए यदि कोई ऐसे क्षुद्र जीव मर जाते हैं तो उनके लिए शास्त्रकारों से प्रायश्चित कर्म निश्चित कर दिये हैं, उदाहरण—चक्की पीसते हुए, दाने छटकते, हुए, ग्रीष्म ऋतु में जल से भरे हुए घड़े के नीचे जो चींटियां मकोड़े आदि आ जाते और मर जाते हैं, इन सब कार्यों के लिये प्रतिदिन प्रायश्चित रूप से सब गृहस्थियों को बलिवैश्वदेव यज्ञ करना चाहिए। पांच महायज्ञ हैं—(१) ब्रह्मयज्ञ (२) देवयज्ञ (३) पितृयज्ञ (४) बलि-वैश्व यज्ञ और (५) अतिथि यज्ञ। ये सब नित्य कर्म कहलाते हैं। इनके करने से ऐसे सारे अज्ञात पाप नाश हो जाते हैं।

सुनिये, माता जी अपने हृदय में उत्साह हो तो कार्य करने से क्लांत (थकावट) नहीं होती, अपितु प्रसन्नता होती है और प्रसन्नता से शरीर में बल आ जाता है, इसलिए आप प्रेम को सब कार्य करने दीजिए। आप केवल इसकी ओर इसके कार्य की ओर दृष्टि रखा करें। जहां कुछ भूल हो तो तुरन्त वाणी से समझा दें। छोटी कन्या तो है नहीं कि न समझ सकेगी।

(२)

पढ़ाई समाप्त होने पर जब सन्तोष कुमारी चलने लगी तो कई कन्याएं और देवियां भी साथ हो गईं। जाते हुये मार्ग में एक मुहल्ले में एक साधु बड़े लम्बे कद और लम्बी दाढ़ी वाला एक दरवाजे के बाहर खड़ा देखा और अन्दर एक देवी घूंघट निकाले विलाप कर रही है और बड़े आतुर स्वर से रो रही है। यह देख-कर सब वहां खडी हो गयीं और सन्तोष कुमारी ने पूछा, महाराज

आप यहां इस दरवाजे पर क्यों खड़े हो गये हैं ? देवी बेचारी तो रो रही है ।

सन्त—मैं जब आया तो मुझे भूख लगी हुई थी । यह माता अन्दर बैठी थी । पता नहीं क्या कार्य कर रहीं थी । मैंने अलख जगाई और कहा—माई ! मुझे भूख लग रही है, साधु को भोजन खिला दो । बस मेरा इतना ही कहना था कि माई ने घूंघट निकाला और रोने लग गई ।

सन्तोष कुमारी—तो आइये, मेरे साथ चलिये और मेरे पिता-जी के घर पर भोजन पान कीजिए ।

सन्त—मैं तो केवल एक घर पर मांगा करता हूं । दूसरे घर से कभी नहीं मांगता । पूर्ण भोजन मिल जाये अथवा अपूर्ण, चाहे अर्द्ध चपाती मिल जाय, मैं उसी को अपना भोग समझ लेता हूँ । अब दूसरे दर पर तो जाना नहीं ।

यह उत्तर सुनकर सन्तोष कुमारी अन्दर चली गई और उसके विलाप को कान लगा कर सुना तो सन्तोष कुमारी का जी भर आया । नेत्रों में अश्रु टपकने लगे वह कह रही थी—

मैं ताँ खेडदी हम लखां दे नाल प्यारड़े सन्त !
हुए न हिम रोटी न मिलदी हे दाल-लड गया मैंडड़ा कन्त ।
हुए न हिम रोटी न मिलदी हे दाल-लड मैंडड़ा कन्त ।
आया क्वेटे दा जो भूचाल, मर गये बाल, थन ते माल ।
हिक्का बे नसीब बच गयी कल्ही, जीवें झट गुजारें झल्ली ।
सन्ता दी भुख मैं कीवे मिटावां, पेट सन्दा दा कीवें रजावाँ ।

अर्थात् प्यारे सन्त। हम तो लाखों में खेलते थे। अब तो मुझे दाल रोटी भी नहीं मिलती क्योंकि मेरा पति चल बसा। क्वेटे के भूकम्प में मेरे सब बाल-बच्चे मर गये धन लुट गया। मैं ही एक अभागिन बच गई। ऐ सन्त जी! अब तेरी क्षुधा कैसे शान्त करूं? तेरा उदर कैसे भरूं? मैं मन्दभागिनी तो स्वयं ही कठिनाई से दिन बिता रही हूं।

इस पर सन्तोष कुमारी ने बाहर आकर कहा, महाराज! वह बेचारी बहुत दुःखी अवस्था में हैं, इसके घर में तो आज अपने खाने के लिए कुछ भी नहीं। पता नहीं कितने दिनों की स्वयं भूखी होगी। आप मेरे साथ चलिए।

सन्त—नहीं पुत्री! आज हमारा भोग इसी गृह में है। हम खायेंगे भी, इसी के हाथ से खायेंगे।

एक कन्या—बहिन जी आओ, आओ चलो भी! यह साधु बड़े हट्ठी होते हैं आप कह भी रही हैं और वह मानता नहीं घर में उसके दाना नहीं। कहता है, इसी के घर में खाऊंगा, इसी के हाथ से खाऊंगा।

सन्त—देख लेना पुत्री! सन्त के मुख से एक ही वचन निकलता है, दूसरा नहीं। वह अवश्य प्रभु पूरा करते हैं।

सन्तोष कुमारी का घर अभी कुछ दूर था और भोजन भी उसने स्वयं ही जाकर बनाना था। समझी साधु भी बड़ा हुआ है। कोई अच्छा उच्च कोटि का साधु है, अब क्या किया जावे? बस, इतने में उसके मस्तिष्क में एक प्रेरणा हुई। सब छात्राओं

को एक ओर ले जाकर धीमे स्वर से कहा कि जिन-जिन का गृह समीप है वह दौड़ कर जायें और अपने-अपने गृह से एक-एक फुल्का और थोड़ी-थोड़ी सब्जी ले आवें। मैं यहीं खड़ी हूं। पुत्रियां दौड़कर गयीं और आन की आन में एक-एक रोटी और सब्जी कटोरे में लेकर आ गयीं। अब सन्तोष कुमारी अन्दर चली गयी और उसके सुन्धड़े (रोट रखने का डिब्बा) में सब रोटियां रखकर बन्द कर दिया और सबकी सब्जी एक ही पतीली में इकट्ठी करके बन्द कर दी। और चौके की अल्मारी में सुन्धरा और पतीली रखकर अल्मारी का कुण्डा लगाकर बाहर चली आई।

सन्त यह सब कुछ देखता रहा। सन्तोष ने सब कन्याओं से कहा, तुम सब अपने अपने घर चली जाओ और मैं अपने घर जाती हूं।

वह सब के सब चले गये और साधु अकेला खड़ा रहा। थोड़ी देर के पश्चात् उसने आवाज दी 'माई! चुप करो'। माई चुप हो गई और जल से हस्त मुख धोकर बाहर दरवाजे पर आई। सन्त को प्रणाम किया और हाथ जोड़कर बोली, महाराज? मेरे पास अन्न तो कई दिनों से खाने को नहीं। आप अतिथि हैं, नारायण का स्वरूप हैं, मैं केवल जल से आपका सत्कार कर सकूंगी, आप मेरा जल ही स्वीकार कीजिए। अन्न तो जिस भाग्यवान का सौभाग्य होगा, वही आप जैसे तपस्वी सन्त की भेंट करके अपना गृह, अन्न और अपना जीवन पवित्र करेगा। मेरे यदि ऐसे सौभाग्य होते तो मेरा हरा-भरा घर ही क्यों उजड़ जाता? मैं तो बड़ी अभागिनी हूं। गृहस्थी के घर से अतिथि का खाली जाना सर्वस्व

नाश करने वाला होना है, परन्तु मेरा तो सब कुछ पहले ही नाश हो चुका है, अतः आप शाप न देते हुए मुझ दीन-दुखिया को यही आशीर्वाद देते जावें कि मेरे जीवन के शेष दिन धर्म पूर्वक प्रभु के चरणों में बीत जावें। जो भी मेरे कर्म थे, उनका फल तो मुझ को वैसा पाना ही है किसी का इसमें क्या दोष !

सन्त चुपचाप अन्दर चले गये। देवो ने बैठने को एक चटाई बिछा दी। उस पर खेस बिछाया, आदर से बिठाया, हाथ धुलाए और जल का एक गिलास भर थाली में रख कर भेंट किया और उसके अश्रु बह निकले।

सन्त—माई ! खाली जल को हम क्या करेंगे।

माई—और तो मेरे श्रद्धा के अश्रु हैं, महाराज। पर वह भी जल ही हैं।

सन्त—देखो, इसी थाली में भोजन और सब्जी परोस दो ? यह गिलास नीचे रख दो।

माई—नारायण ! आप देख रहे हैं मेरे चौका में चूल्हा खाली पड़ा है आग भी नहीं जली। आप सन्त हैं परमेश्वर का रूप हैं आप तो अन्दर को जानने वाले हैं फिर मेरी परीक्षा क्यों करते हैं ?

सन्त--देखो अपने डब्बे से रोटी निकाल दो और पतीली से सब्जी भी।

माई—महाराज ! मैं शपथ खाकर कहती हूं। आज तीसरा दिन हैं मैं लङ्घन हूं अर्थात् तीन दिन से कुछ नहीं खाया डब्बा तो कब का खाली पड़ा है।

सन्त—तुम मेरा कहना तो मानो, अलमारी का कुन्डा खोलो तो सही। माई ने विवश होकर अलमारी का कुन्डा खोला, डब्बा उठाया तो वह भारी प्रतीत हुआ। चकित हो गई, ढकना उठाया तो उसमें बहुत सी रोटियां थीं, पतीली उठाई तो सब्जी उसमें बहुत रखी थी। बड़ा आश्चर्य हुआ। भोजन परोसने से पूर्व वह सन्त के चरणों पर गिर कर कहने लगी भगवान्! यह आपकी विभूति है (क्योंकि माई तो रोने में इतनी निमग्न थी कि उसे किसी भी कार्यवाही और किसी के आने जाने का कुछ भी पता न हुआ)। सन्त ने कहा, माई! यह करामात नहीं और न हम करामात को मानते ही हैं। प्रभु विश्वम्भर हैं। मैं एक घर से ही मांगा करता हूं, कभी प्रभु ने भूखा नहीं रखा। तुम को परमेश्वर पर विश्वास नहीं। नहीं तो तुम उसकी दृष्टि से कैसे चूक जाती। तुम को अपने पूर्वजों पर भरोसा रहा। अब भी उनको याद करके रोती हो। कभी मरे हुए भी आकर कुछ दे सकते हैं? वह परमेश्वर हमारा जीवित पिता है, वही जागती माता है वही हमारा भाई, बहिन, बन्धु और सखा सगा है। उसके अनखुट भन्डार से असंख्यात जीव चींटी और पाषाण में रहने वाला कीट भी अपना भोग पा रहा है, तू उस प्रभु को याद किया कर। धैर्य न खो। कुछ पुरुषार्थ कर कुछ प्रभु की कृपा माँग। वह अच्छे दिन दे, नहीं तो तेरा यह दुःख भी बहुत दिन नहीं रहेगा। मरे हुए और पिछले सुखों को याद करके रोने से तो दुःख बढ़ता है, कहा है :—

नानक दुःखिया सब संसार। सोई सुखिया जो नाम आधार॥

माई ने सन्त को बड़ी श्रद्धा से भोजन परोस दिया। सन्त ने बड़े प्रेम से भोजन किया और आशीर्वाद देकर चलने लगा तो माई ने पूछा, भगवान् यह भोजन कौन दे गया है ?"

सन्त—माई ! तुम इसे प्रभु का अदृष्ट प्रसाद समझ कर खाओ जहाँ-जहाँ तुम्हारे भोग का दाना पड़ा था, प्रभु ने उन्हें प्रेरणा करके वहां-वहां से उठवाकर पका पकाया तुम्हारे पात्रों में रखवा दिया। मैं तो किसी को जानता ही नहीं। अब इसे खाओं और प्रभु के गुण गाओ फिर तुम कभी भूखी न रहोगी। जिस परमेश्वर ने तुम्हारा यह भोग ला दिया है। वह आगे का भी कुछ अवश्य प्रबन्ध कर देगा।

(३)

सन्तोष कुमारी घर पहुंची। उसे आज जरा देर लग गई थी। उसकी सास प्रतीक्षा के बाद आटा ठीक करके तवा चढ़ा रोटी पकाने ही लगी थी कि इतने में सन्तोष पहुंच गई। झटपट वस्त्र उतारें हाथ मुंह पाँव धोकर चौके में जा पहुंची और सास से चकला बेलना लेकर रोटी पकाने लगी। सास ने पूछा-पुत्री ! आज देर क्यों हो गई ?

सन्तोष कुमारी का नियम था कि वह भोजन को भजन का साधन और निमित्त समझ कर बनाया करती थी, इसलिए वह प्रभु नाम स्मरण में पूर्ण एकाग्रवृत्ति होकर बनाती थी, इसलिए रोटी बेलने से पूर्व ही उसने कह दिया कि रसोई बनाकर सब समाचार सुना दूंगी।

भोजन बन गया और खाने वाले भी आ गए। सबको बड़ी

श्रद्धा से परोस कर खिलाया। जब सब निवृत्त होकर बैठ गए तो सन्तोष कुमारी से सास से कहा, अब तुम खा लो मैं परोस दूं।

संतोष कुमारी—आज मेरा उपवास है, मैं भोजन नहीं करूंगी। फिर माता जी से हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लगी।

अमुक मुहल्ले में जो पाठशाला के मार्ग में पड़ता है, एक निर्धन दीन दुखिया मेरी बहिन रहती है। जिससे परिवार के छोटे बड़े सारे बाल-बच्चे भूकम्प में मर गए। आज वह बेचारी एक सन्त के द्वार पर आ जाने से विलाप कर रही थी। मालूम होता था कि वह स्वयं कई दिन की भूखी है किसी पडौसी ने अथवा नगर के किसी मान्य व्यक्ति ने उसकी कुछ सुध न ली। उसका विलाप सुनकर मेरा जी भर आया। दरिद्रता भी बुरी होती है। एक तो उसका अपना कोई, नहीं दूसरे उसके पास रोटी नहीं। तीसरे कोई पुरूष खबर लेने वाला भी नहीं। मैंने उसके प्रायश्चित रूप में आज उपवास किया हैं और उसकी सहायता की प्रतिज्ञा की जिसका पूर्ण करना आप के आधीन है, यदि आप प्रसन्नता पूर्वक सहायता करें तो मैं प्रार्थना करें तो मैं प्रार्थना करूं।

ज्ञान प्रकाश—कहो पुत्री! तुम्हारी ही प्रतिज्ञा में सहायता नहीं करेंगे तो और क्या करेंगे?

सन्तोष कुमारी—अभी तो एक मास का अन्न, घृत, दाल, सब्जी, मसाला, लकड़ी आदि सब वस्तु बिना उसे सूचना दिए उसके घर रखा दें। मैं तीन मास पर्यन्त एक समय भोजन करूंगी मेरे इस एक समय के भोजन से उसका एक मास का निर्वाह चल जायेगा।

ज्ञान प्रकाश—नहीं, पुत्री ! नहीं, अन्न का प्रबन्ध मैं आव कर देता हूं। परन्तु तुम क्यों भूखी रहो, हम कोई निर्धन थोड़े हैं ? प्रभु ने बहुत कुछ दे रखा है। कोई न भी करे तो भी प्रभु का दिया बहुत कुछ है। तुम गृह स्वामिनी हो, तुम्हें मुझ से प्रार्थना करने की आवश्यकता ही क्या थी ? अपनी सास के बिना पूछे भी यह शुभ कार्य स्वयं हीं कर सकती हो। कोई रोक-टोक नहीं। हम स्त्री पुरुष (सास श्वसुर) तो तुम्हारे अतिथि रूप से मेहमान हैं, स्वामिनो तो तुम ही हो, अब भी और पश्चात् भी।

सन्तोष कुमारी—पिता जी ! यह आपके सब अमृत वचन सत्य हैं, परन्तु मैं तो इसे आपका दान ही समझ कर खाती हूं। अब तो मेरी प्रतिज्ञा हो गई है और इसे भी निभाना उचित है। जो कार्य हर्षपूर्वक दिल से किया जाये, उसमें कोई कष्ट अनुभव नहीं होता। इससे भी मुझे प्रसन्नता होती रहेगी और मैं भविष्य में इस दीन-हीन निर्धनों को देख-भाल संभाल भी योग्य रूप से कर सकूंगी वरन भूल जाऊंगी। पता नहीं नगर में ऐसी और कई बहिनें होंगी।

ज्ञान प्रकाश--पुत्री ! तुम्हारा भाव बहुत स्वच्छ और ऊंचा है। हम लोग भूल ही जाते हैं, यद्यपि नित्य स्वाध्याय करते हैं। एक बार अथर्ववेद में पढ़ा था कि प्रत्येक मनुष्य को वहां वहां के निर्धन लोगों की सुध लेनी चाहिए, जहां से वह अपनी आय बढ़ाता है। वैसे भी विवाह के समय मधुपर्क में यही भाव होता है कि प्रत्येक गृहस्थी अपने चारों ओर देख ले कि कोई भूखा तो नहीं। यदि हो तो प्रथम उसे दे। अब यदि हम लोग मर्यादा का पालन

करने वाले हों तो सब की सम्भाल एक ही समय हो जावे और कोई भी भूखा और दुःखी न रह सके। परन्तु यदि हम लोग पूरे धर्मात्मा और परोपकारी भी हों तो भी हम अभी तक स्वार्थ के ही दास हैं, नहीं तो यदि उपकार और सेवा वृत्ति हमारी स्वाभाविक होती तो अवश्य ही उसकी किसी न किसी प्रकार सुध पा ही लेते। आज मैंने भी तुमसे यह शिक्षा ले ली। भविष्य में मुझे याद रहेंगे।

ज्ञानप्रकाश जी ने दुकान पर जाते ही कार्य आरम्भ कर दिया दाने उसके घर में थे ही। झट एक मन आटा पिसवा कर, एक सेर घी का डिब्बा भर कर लवण, मिर्च, मसाला एक पोटली में बाँधकर थोड़ी सी दाल और कुछ पैसे नकद और लकड़ियां उसके घर के पास एक स्थान पर इकठ्ठी कर रखी और यह ताड़ की कि जब वह देवी कुछ समय के लिए कहीं बाहर जावे तो यह वस्तुएं तुरन्त उसके घर में रख दी जाये। चुनांचे ऐसा ही हुआ और अभी दिन शेष था कि उसने इस कार्य को पूर्ण कर लिया।

माई जब घर के अन्दर वापिस आई तो सामान देख कर आश्चर्य में पड़ गई। उसका प्रभु में बिश्वास और निश्चय दृढ़ हो गया। अब उसने समझा कि मुझे प्रभु की शरण लेकर भक्ति में ही अपने दिन पूरे करने चाहिएं। परन्तु फिर भी उसको यह चिन्ता हुई कि न जाने कौन दे गया? कोई मजदूर भूलकर किसी और का सामान तो यहाँ न रख गया हो। किसी से पूछूं। मुहल्ले वालों से पूछतीं हूं तो कही शङ्का न करने लग जाएं चुनांचे उसने हाथ न लगाया। जहां वह वस्तुएं धरी थीं, धरी रही। रात को प्रातः की रोटी ही पर्याप्त थी' वह खा ली और जल पी कर सो गई। रात भर चिन्ता रही। कभी रोती कभी हंसती रही प्रभु की लीला पर।

दूसरे दिन मध्याह्न तक देखा, कोई न आया। वही साधु दैवयोग से उधर से गुजरा। माई ने देखा और प्रणाम की, और कहा, 'महाराज! भोजन बनाऊं?' सन्त ने कहा, 'नहीं माई! मैं करके आया हूं, अब तुम्हारे पास भोजन कहां से आया?'

माई ने उत्तर दिया, 'महाराज! यही तो आश्चर्य है। इसी चिन्ता में पड़ी हूं। कोई मेरी अनुपस्थिति में यह सब सामान, मसाला और लकड़ी तक रख गया है। कोई भूल कर न रख गया हो।

सन्त ने कहा माई! अब यह तुम्हारे निमित्त प्रभु ने भिजवाया है। चिन्ता और आश्चर्य न करो, किसी ने भूल नहीं की, यह प्रभु ही सब को भुला रहे हैं।

माई की सन्तुष्टी हो गई और वह उसी आटे में से आटा ले कर गूंधने लगी और दाल चढ़ा दी। भोजन किया और प्रभु का धन्यवाद गाया।
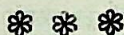
॥ ओ३म् ॥

सप्तदश अध्याय

शंका समाधान

ज्ञान प्रकाश जी की दुकान पर सभ्य व्यक्ति पहुंचा जो पहिले बड़ा धनी था, और अब अत्यन्त साधारण स्थिति (सफेद पोश) हो गया था। उसकी पुत्री का विवाह था उसके घर ही किसी बड़े घर की दो फैशनेबल देवियां आयी हुई थीं, जो पाठशाला के सत्संग से लौटने के पश्चात् मेरे साले की बहू जिसका पति न्यायाधीश (मजिस्ट्रेट) है, मुझे कहने लगी, फूफा जी ! आज सन्तोष कुमारी ने हमारा बड़ा अपमान किया है, मैं चाहती हूं यदि आप आज्ञा दें तो मैं सन्तोष कुमारी से विचार विमर्श कर लूं। वह कहती है कि मैं सन्तोष कुमारी को निरुत्तर (कायल) कर दूंगी और पुनः वह ऐसा प्रचार करना छोड़ देगी ।

ज्ञानप्रकाश—निःशंक आनन्द पूर्वक। परन्तु चूंकि वह नागरिक जीवन विताने वाली है और विदुषी भी पर्याप्त होगी, और मेरी पुत्री अभी बालिका है, ग्रामीण है, कहीं आपस में एक दूसरे का अनिष्ट न कर बैठें। इसलिए उनसे पूछ लें यदि वह मुझे भी उनके मध्य में एक ओर बैठकर सुनने की आज्ञा दें और उन्हें कोई बाधा न हो तो आज अथवा कल जिस समय जी चाहे घर पर आ जावें। परन्तु समय ४-५ बजे सायं का हो क्योंकि फिर भोजन और गौ की सेवा का समय हो जाता है।

(२)

सायं के चार बजे हैं महाशय ज्ञान प्रकाश जी के गृह पर कुछ एक देवियाँ नागरिक जोवन बिताने वालीं उसी वेषभूषा और ठाट-बाट से जैसे कि पाठशाला में थी, सन्तोष कुमारी से वार्तालाप करने आ गईं उन सब में मुख्या स्वरूपवती नाम की एक देवी थी, दोनों में निम्न प्रकार सम्वाद आरम्भ हुआ—

स्वरूपवती—अजी सन्तोष कुमारी जी ! (हंसते-हंसते) आज कल नवीन प्रकाश के युग में तुम्हें क्या हो गया । तुम्हें ऐसी कुमति किसने दो जो तुमने बाबा आदम के युग के वेद शास्त्रों की दुहाई मचा रक्खी है । परमेश्वर की रचना स्वयं पग-पग पर यह बता रही है कि समय के साथ-साथ चलने में ही सुख मिलेगा । यदि धृष्टता से प्राचीन बात स्थिर रखोगी तो तुम्हें सुख मिलना तो क्या, तुम्हारा नाश हो जायेगा । उदाहरण शरद् ऋतु में हम घर से बाहर नहीं निकलते थे । धूप और अग्नि के पास से उठने को जी नहीं चाहता था । गर्म वस्त्र सिर से पांव तक ओढ़ते थे, उस समय यही धर्म था । जिसने ऐसा किया, उसे ही शीत से सुख मिला । परन्तु अब ग्रीष्म ऋतु आ गई । सूर्य वही, चन्द्रमा वही, आकाश वही, नदी पर्वत, भूमि वायु, तथा जल वही परन्तु आज भी किसी को गर्म वस्त्र धारण किये देखा ? अथवा अग्नि वा धूप तापते देखा है ? उस समय तो शीतलजल जुकाम करता था । परन्तु अब शीतल जल के बिना निर्वाह नहीं । अन्दर जहां रजाई कम्बल लेकर बैठते थे, अब वहां बैठा ही नहीं जाता बच्चा छोटा है, माता का दूध पीता है, दांत निकलें तो तुरन्त दूध छूट गया, अन्न खाने लगा, कुछ

बड़ा हुआ तो गुडिड्यां और मिट्टी के खिलौने खेलने को मिल गये। मिट्टी में लेटने और बैठने से प्यार करने लगा। जीवन का काल और बदला तो अब सब खेल छूट गये। पढ़ने से प्यार हो गया। जीवन यात्रा में कोई राज्य अधिकारी बना, कोई व्यापारी बना अथवा वैद्य बना विवाहित हुआ तो अब सब पिछली बातें जाती रहीं जैसी अवस्था वैसे रहन-सहन, खान-पान विधि-विधान सब के सब बदल गये।

बहिनजी व पुत्री! सतयुग व त्रेता के इतिहासों में भिन्नता, त्रेता और द्वापर के व्यक्तियों में भेद, द्वापर और कलियुग की सृष्टि में भेद। वह आयु नहीं, वह बल नहीं, वह कद नहीं, वह विद्या और धन नहीं, वह ऋषि मुनि और मनुष्य नहीं, वह ज्ञान, वह तप, वह तेज नहीं। जैसा राजा वैसी प्रजा नहीं, यह सब क्या तुमने अथवा मैंने बनाये हैं? न केवल मनुष्यों अपितु पशुओं की भी यही अवस्था नहीं। सतयुग में एक शिष्य गुरु के केवल कहने मात्र पर १२-१२ वर्ष तक जंगलों में गुरु की गौएं चराया करता था और फिर आकर उपदेश लेता था। सत्यकाम जाबाल जब गौतम ऋषि के पास पढ़ने गया तो गुरु ने ४०० दुर्बल गौएं चुन-चुन कर उसे दीं और उसे कहा जब ये पूरी एक सहस्र हो जावें तब मेरे पास आना। त्रेता में महाराज जनक ने एक एक सहस्र गौ, दस दस स्वर्ण मुद्रिकाएं एक-एक गौ के सींगों में बांधकर ऋषियों को पेश कीं कि जो आप में से ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण हो, वह ले जावे।

द्वापर में राजा युधिष्ठर के यहाँ उसके लंगर में दस दस सहस्र विद्यार्थी अन्न खाते थे। क्या आज इस सारे कलियुग में जिसे पांच

सहस्र वर्ष बीते, एक भी उनकी तुलना का दृष्टान्त दे सकती हो? और कलियुग में ज्यों ज्यों समय परिवर्तन होता जाता है, उस उस समय का अपना प्रभाव जुदा जुदा पड़ता जाता है उदाहरण कभी नियोग युग था और उसे पाप समझा जाता था। कभी सती की प्रथा थी और उसे न कोई पाप समझता था और न अपराध ही। स्त्रियों के वही दिल थे, वही सीने थे। विधवाएं आयु गुजार देती थीं। आज समय कुछ और है। कितनी देवियां बेचारी हमारी बहिनें ऐसी हैं जिसके पति दुष्ट और आचारहीन हैं और वह बेचारी अत्यन्त दुःखी हैं।

पूर्व समय में कोई ऐसा होता था? आज तो समय ही ऐसा आ गया है मैं तो बड़े स्वतन्त्र विचार की हूं, मेरे पति अरोड़ा हैं। क्षत्रिय कुल में पैदा हुई, वह मजिस्ट्रेट हैं। बड़े धनपति हैं। मैं उन्हें कह भी दिया करती हूं आप और मैं स्वतन्त्र हैं। जिस दिन आपकी मेरे से न बने आप मुझे छुट्टी दें दें। जिस समय मैं रुष्ट हूंगी, तो मैं चली जाऊंगी। मेरी पुत्री को देख लो, यह समीप बैठी है। मैं बी. ए. हूं, यह एम.ए. में पढ़ रही हैं। अब मैं इसका विवाह किसी ब्राह्मण से करूंगी। हम क्यों बन्धन में रहें तुम सच्ची हो, तुम्हें केवल एक भाषा का ज्ञान है, चारदीवारी के अन्दर कर पढ़ी हो और सभ्यता सभ्यता चिल्लाती हो। तुम पाश्चात्य का भी तनिक स्वाध्याय करो तो तुम्हें पता लगे कि तुम ठीक कहती हो अथवा युग जो विचार हैं। वास्तव में वही समय की मांग है। अंग्रेजों में स्त्री पतियों का त्याग कर दें, मुसलमान पति स्त्रियों को त्याग दें। क्या वे सारे के सारे असभ्य, अपढ़ और लज्जाहीन हैं? जिस प्रकार नेता

लोग जनता की भलाई समझते हैं, वैसा ही कानून अथवा नियम शास्त्र बना देते हैं। खाना, पीना, पहनना यह सब गौण बातें हैं। प्रत्येक दरिद्र को यह प्राप्त नहीं। परन्तु एक धनी है, पुण्य करके आया है, परमेश्वर ने उसे दिया है, क्यों न वह आराम और सुख भोगे। निःसन्देह दान देकर धनहीन की सहायता भी करे और स्वयं भी सुख भोगे। यदि एक व्यक्ति ने ५० सहस्र रुपया इकट्ठा कर लिया हो और वह नानबाई की दो रोटी बिना चुपड़ी और बिना घृत के दाल साग से खावे और कहे कि मैं सादा रहता हूं, तो मन्द भागी और कृपण और अराती होगा अथवा सादा कहलायेगा ? हां ! जिन के पास नहीं वह इच्छा न करे और जिसके पास है वह परमात्मा के दिये को भोगे। मुक्ति है अथवा नहीं? स्वर्ग है वा नहीं? मैं तो इन बातों में जाती नही। मेरा तो यह सिद्धान्त है, मनुष्य बनकर रहो, सहानुभूति करो। दुःखी की सेवा करो। अपने पास जो कुछ है उसे खाओ भी और खिलाओ भी।

मैं अपने नगर में धनहीनों को बिना मूल्य औषधि देती हूं। मैं डाक्टरी भी जानती हूं। घर पर धर्मार्थ दवाई करती हूं महामारी (प्लेग) के दिनों में मैं बीच में घुस कर कार्य करती रही हूं। मैं तो निधड़क जीवन बिताने वाली हूं। अब बताओ हम पर तुम्हारे उपदेश का कुछ भी प्रभाव पड़ा है ? अब तुम मुझे सन्तुष्ट करो अथवा मेरी बातों का उत्तर दो। यदि तुम्हारे पास मेरी बातों का कोई उत्तर नहीं है तो कृपा करके ऐसा उपदेश वर्तमान युग में न किया करो। समय के अनुकूल सबको चलने दो। अब कलयुग है, कला और कौशल का युग है। चक्की और चरखे ही न चलवाती रहो।

जो कार्य दिनों का घंटों में हो सके उसे क्यों न देश में विकसित होने दिया जाये। पुरानी बातें अब जंचती नहीं। विज्ञान ने हमें बहुत ऊपर पहुँचा दिया है।

सन्तोष कुमारी—माता जी! मैं आपका बहुत धन्यवाद करती हूं। आप इतने ऊंचे कुल की धनाढ्य और हकूमत करने वाले घराने की ग्रेजुएट और बहुत सी भाषाओं का ज्ञान रखने वालीं, वयो-वृद्ध अनुभवी होकर मुझ जैसी अबोध छोकरी के साथ प्रेम, प्यार तथा सभ्यता के साथ वार्तालाप की है। यह आप का ही काम है। आपको पाश्चात्य का जो ज्ञान है, वह मुझे नहीं, यह सत्य है। परन्तु आपको अपने इतिहास का भी ज्ञान है वरन् मैं कहती हूं जिसने आयु भर पाश्चात्य का स्वाध्याय किया है वह शैक्सपियर को ही मुख्य समझेगा कालिदास का उसे ज्ञान कहाँ? वह दरया टेम्ज (Thames) के ही गुण गायेगा अथवा यदि यवन होगा तो दजला, फरात के गुण गान करेगा, उसे गङ्गा, यमुना सरस्वती का क्या ज्ञान! वह राम-कृष्ण जैसे महापुरुषों की कथा क्या सुना सकेगा? जिसे इधर का ज्ञान ही नहीं, उसे पूर्व से प्रेम ही क्यों कर हो क्योंकि संस्कारों का प्रभाव बड़ा गहन होता है, और चूंकि आप पूर्व के सम्बन्ध में भी बहुत कुछ जानती हैं अतः आपको मैं एक छोटी-सी पुस्तक देती हूं जिसे में कल से पढ़ती रही हूं।

इसमें आप की सभी बातों का पूरा-पूरा उत्तर है। यह 'वर्तमान शिक्षा" नामी पुस्तक श्रीमान हनुमान प्रसाद पोद्दार की बनाई हुई है। गोरखपुर गीता प्रेस में छपी है। आप पहले इसे ध्यान से पढ़ लें फिर जो आपको उचित प्रतीत हो वैसा ही कीजिए। आशा है

इससे आपको भली प्रकार समाधान होकर सन्तुष्टि हो जायेगी। मैं अपने मुख से इतना शुन्दर उत्तर न दे सकूंगी जितना कि यह पुस्तक।

तदनन्तर सन्तोष कुमारी की सास ने खाने के लिए कुछ फल भी उन देवियों को भेंट किये जिन्हें उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया और स्वरूपवती ने पुस्तक भी बड़े प्रेम से ली और सब देवियाँ प्रसन्नता पूर्वक नमस्ते कह कर चली गईं।

* ❀ ❀

॥ ओ३म् ॥

अष्टादश अध्याय

भक्ति का अधिकारी

विधवा

सर्वधर्मान् परित्यज्य का देवस्य शरणं व्रज

उपकार

आज सन्तोषकुमारी ने पाठशाला में पढ़ाने के बाद सब कन्याओं को सम्बोधन करके समझाया कि अपने-अपने गली-मुहल्ले में यदि वह स्वयं जानती हों अथवा अपने माता पिता के द्वारा पूछ ताछ कर बताएं कि कौन कौन-सी विधवा, दरिद्रे, निर्धन खाने-पीने में दुःखी है फिर प्रेमलता की माता से कहा कि माताजी! आप भी कृपा करके चौधरी साहब से इस बात का जिक्र कर दें कि नगर के अन्दर

कोई भी विधवा आजीविका के कारण भूखी तथा दुखी न रहनी चाहिए क्योंकि जो विधवाएं बेचारी इस प्रकार दुःखी होती हैं वह या तो आत्म-हत्या करके मर जाती हैं अथवा आचारहीन होकर अपनी उदरपूर्ति करती हैं। यह दोनो ही दोष महान् बुरे हैं और इस कुकर्म का भार नगर के जिम्मेदार व्यक्तियों अथवा पंचायत पर होता है। विधवाओं और निर्धनों को काम पर लगाना कोई बड़ा कठिन कार्य नहीं है। निर्धन देवियां सारा दिन कार्य पर लगी रहेंगी तो अपना पवित्र अन्न पैदा करेंगी, अन्यों की निन्दा स्तुति, गिला आदि कुविचारों से छूट जायेंगी उदर-पूर्ति करके जहां वह सुख की निन्द्रा सोयेंगी वहां उनसे कार्य कराने वाले को भी व्यवहार का लाभ होगा और मैं उस भूकम्प से पीड़ित विधवा के गृह पर जाती हूं, परन्तु मैं अभी बालिका हूं अतः वह मेरी बात को कुछ मान न देगी क्योंकि न तो वह मेरी परिचित है, न मैं उसकी। (प्रेम की माता से) माता जी! आप भी मेरे साथ चलें, आपको तो सब जानते हैं।

सबको विदा करके ये दोनों उस दुःखी विधवा के गृह पर जा पहुंची। वह उस समय सब्जी चूल्हे पर चढ़ाकर आटा गूंध रही थी इन दोनों को देखकर भी वह आटा ही गूंधती रही। उन्होंने जाकर नमस्ते की। उसने उत्तर तो दिया परन्तु फिर भी कार्य में लगी रही। यह दोनों बैठ गई तो उसने पूछा "कहिये! आप कैसे आईं? उन्होंने कहा, "आप आटा गूंध कर निवृत्त हो जाएं, आप से कुछ बातें करनी हैं।' जब वह कार्य कर चुकी तो परस्पर में निम्न प्रकार संवाद आरम्भ हुआ :-

प्रेमलता की माता—पुत्री! हमें पहले तो तुम्हारा पता भी न लगा, न तुम ही कभी हमसे मिलीं, न हम आपके पास कभी आईं।

आजकल जब तक पहले किसी से परिचय न हो कोई किसी की सुधि नहीं रखता। प्रत्येक अपने में ही मस्त है। कल जाते ही तुम्हारा दुःख भरा विलाप सुना तो इन्होंने (सन्तोष कुमारी ने) मुझ से कहा, यह हमारे पास के मुहल्ला में जो हमारा (नगर के चौधरी का) मकान है, उसमें कन्याओं और देवियों को गृहस्थ-सुधार की शिक्षा देती है, उनसे तुम्हारे दुःख की कथा सुनकर चित्त बड़ा दुःखी हुआ। तुम अब अपना सब वृतान्त दिल खोल कर सुनाओ।

दुःखभरी—माता जी ! क्या सुनाऊं ! क्वेटा में हमारा लाखों रुपये का व्यापार था। पुत्र पुत्रियां बहुएं सब ही थी। छोटे-बड़े गिन करके १५ जीव थे। मेरा पितृ परिवार भी चिरकाल से वहां रहता था। मैं वहां ही उत्पन्न हुई वहां ही पली, वहां ही ब्याही और परिवार बढ़ा। इसलिए न मुझे को यहां जाने न मैं किसी को जानूं। मेरे पितृ गृह में से भीं कोई न बचा। यह मकान जिसमें अब रहती हूं, मेरे नानी नाना का है। वह भी चिरकाल हुआ परलोक सिधार गये। मैंने उन्हें नहीं देखा। उनके कोई सन्तान नहीं थी। मेरे माता-पिता उनके उत्तराधिकारी बने थे। यहां का वर्णन किया करते थे कभी-कभी यहां आया जाया करते थे। यह मकान उनके जीवन में तो किराये पर था, परन्तु चिरकाल से रिक्त (खाली) पड़ा था। जब भूकम्प आया तो मेरा कोई भी······ (यह कहते कहते उसकी आंखों से छमाछम अश्रुपात होने लगा, कण्ठ बन्द हो गया, गला रूद्ध गया।) तब प्रेम की माता ने प्रेम से उस की पीठ पर हाथ फेरा, सन्तोष ने जल दिया और वस्त्र से अश्रु पूंछा।

और जब कुछ आश्वासन हुआ तो फिर बोली–बस वे सब दब गये। मैं भी दबी हुई थी जब निकालने वाले आये तो मेरे श्वास चल रहे थे। वे बाकी सब समाप्त हो चुके थे। बेचारे सेवादार लोग थे। मुझे गाड़ी पर ले गए। मार्ग में भी लोगों ने बड़ा उपकार किया। मैंने उनके सामने इस नगर का नाम लिया तो मुझे यहां पहुंचा गए। रात्रि को जब मैं यहां पहुंची तो बाहर कोई पुरुष खड़ा था। मैंने अपने नाना का नाम लेकर उनका मकान पूछा तो उसने कहा, वह चिरकाल हुआ, मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं। मैंने जब अपनी क्वेटा की आपत्ति का वृतान्त थोड़ा सा सुनाया और कहा कि मैं ही उनकी उत्तराधिकारी हूँ और बहुत संकट में हूं तो उसने रात में अपने पास स्थान दिया और प्रातः को मेरे साथ आकर मेरे इस मकान का ताला तोड़ दिया और उसी ने ही इसे साफ करा दिया और मैंने यहां वास किया। परन्तु यहां न तो कोई मेरा परिचित ही था और न मेरे पास ही कुछ था। लज्जावश किसी के पास भी न जा सकती थी। मेरे हाथ में सोने की दो मुद्रीकाएं थीं, कान में भी कुछ भूषण था। वह ईश्वर की कृपा से बच गए थे। उनको बेच कर कुछ दिन तो अन्दर ही बैठकर अपना निर्वाह करती रही। दो दिन हुए जब मेरे पास कुछ भी न रहा तो भूखी मरने लगी और रो धोकर जैसे तैसे दिन बिताती रही। उस दिन जब साधू ने अलख जगाई तो मुझसे न रहा गया। मैं दुःख से रोने लगी मेरे पास तो कुछ था ही नहीं जो उसे देती। साधु ने मुझे चुप कराया और मैंने केवल उसे ही स्वीकारकरने को कहा क्योंकि और तो मेरे पास कुछ था ही नहीं! पर उसने करामात दिखाई और कहा सुन्धडे से रोटी और

पतीली से सब्जी निकालो। मैं रोटी और सब्जी देखकर चकित हो गई। साधु ने मुझे प्रभु का विश्वास दिलाया। कल दिन और रात को भी मैंने वही रोटी खाई थी। पिछली पहर सायं से पहले जब मैं जङ्गल पानी गई थी, वापिस आई तो देखा कि मेरी अनुपस्थिति में कोई आटा, दाल, घृत, मसाला, लकड़ियां आदि रख गया है पहले तो मैं सामान देखकर भयभीत हो गई। रात भर वह वैसे ही रखा रहा। प्रातः को वही सन्त इधर से गुजरे तो उनसे मैंने जिक्र किया। उन्होंने कहा कि 'अद्रष्ट भोग है, प्रभु ने भेजा है इसे खाओ, कोई चिन्ता न करो।' पता नहीं वह सब्जी और रोटी कौन दे गया? और आटा, घी कौन रख गया? यह है मेरा संक्षिप्त सा वृत्तान्त। अब प्रभु में मेरा विश्वास हो गया है। अब मैं उसी की होकर रहूंगीं और उसी की भक्ति में अपना जीवन बिताऊंगी, वह आप ही मुझे देगा।

प्रेम की माता—पुत्री! इतनी आपत्ति देखी, पास कुछ न रहा वहां तो सब लोगों को उनकी दबी हुई सम्पत्ति वापस भी मिल गई। सरकार ने चैक भी दे दिये। तुम्हारा जो लाखों का व्यापार था, बैंक में ही अवश्य कुछ जमा होगा, कुछ माल आभूषण धनादि भी मकान से निकाला होगा।

दुःख भरी—माता जी! सब कुछ था। बैंक का तो मुझे कुछ पता नहीं कि हमारा उसमें कितना रुपया था। अपितु आभूषण बहुत थे। तिजोरी में रुपये और नोट भी बहुत से थे। मैं अकेली स्त्री जाति यहां आ गई। अब न सरकार को मेरा पता कि कहां है, न कोई मेरा सम्बन्धी जो मुझे ले जावे और सरकार से कहे।

प्रेम की माता——तू यहां किसी चौधरी अथवा पंच से कहती, तेरा तो किसी को पता ही नहीं। अच्छा जो बीती सो बीती। पुत्री! स्त्रियाँ विधवा होकर चार-चार पांच-पांच बालकों को पालती हैं, जिसके सिर पर कोई भी नहीं रहता, सम्पत्ति और आय का कोई भी साधन नहीं होता, ऐसी विधवा स्त्रियों ने भी अपने बालकों का पालन-पोषण किया। विवाह तक किए। बच्चों को पढ़ाती लिखाती भी हैं, तू तो कोई भी कार्य न कर सकी।

दुःख भरी—माता जी! भाग्य का फेर ही कुछ ऐसा है। इतनी आयु तक कभी चक्की को हाथ नहीं लगाया। मेरे माता-पिता के घर की चक्की तो थी परन्तु कभी पीसी नहीं और जब से विवाह होकर अपने घर आ गई तो चक्की देखी तक भी नहीं। स्थान-स्थान पर मशीनें चल रही हैं। झट दो आना मन में बोरियां की बोरियां पिस जाती हैं। कपास की कलाएं और कारखाने चल रहे हैं। सब वस्तुएं कलों से प्राप्त होती रही अतः कोई काम नहीं किया। सीखा नहीं करके देखा भी नहीं। करती तो क्या करती, जब काम करना ही नहीं आता। धनवान के घर जन्मी, लखपति से विवाह हुआ। बच्चों के सम्बन्ध भी बड़े-बड़े धनिकों के घर हुए नौकर चाकर काम करने वाले थे। क्या पता था कि यह दुर्दिन भी सिर पर आयेगा। कुछ शिल्प सीना पिरोना, मशीन चलाना, छापा-छापना, रङ्ग करना जानती होती तो अब लाभ देता। मैंने तो यह सब काम कराये पैसे धन के बल पर। यह पता ही न था कि मेरे लिए धनवान के घर विवाह होना भी एक दिन आपत्ति लायेगा। यदि मैं किसी निर्धन के घर जन्म लेती तो सब

कुछ कर सकती थी। न मुद्रिकाए ही बेचती और न कान के आभूषण। स्वयं ही उद्यम करके कम खा लेती। अब मैं श्रम तो कुछ करना जानती नहीं। दूसरे मुझे यह लज्जा आती है कि किसी से क्या जा कहूं? किसे कहूं? मुझ में एक बड़ा दोष था। मैं माता-पिता की अकेली पुत्री थी और कई भाई थे। सब मुझ से प्यार करते थे। मैं बड़े लाड से पली थी। किसी की क्रूरवाणी को सह न सकती थी। किसी से स्वयं बोलती चालती नहीं। किसी के पास आती जाती नहीं इसे अभिमान समझो वा बेपरवाही अथवा प्रमाद। मेरे भाग्य ऐसे खोटे हैं कि मैके और ससुराल दोनों स्थानों पर लाखों रुपयों की स्वामिनी रही, परन्तु मैंने कभी किसी पड़ौसी निर्धन की सहायता नहीं की, किसी दुःखी की देख-भाल नहीं की। माता पिता समझते थे कि दिया हुआ काम आता है। पति भी कभी-कभी कहता था। पुत्र भी समझाते थे कि कभी रलमिल बैठा करो, किसी के दुःख दर्द का समाचार पूछा करो। इस समय परमात्मा की कृपा से बहुत कुछ है। कुछ कर लो, आगे का तोषा बना लो। परन्तु मैं मूढ़मति सबकी अनसुनी करती रही। और आज यहां हो अपनी आंखों से प्रत्यक्ष देख रही हूं और उसका फल भोग रही हूं। वर्ष बीत गया मुझे यहां आये हुए परन्तु किसी ने पूछा तक भी नहीं और मैं मन ही मन में आपसे कहा करती हूं, देख ले, यह करयुग है, कलयुग नहीं। यहां सौदा दस्तबदस्ती है। इस हाथ दे उस हाथ ले।' माता जी! मुझे क्षमा करना, मैंने अपनी दुःख की कथा सुनाने में आपका बहुत समय नष्ट किया है।

प्रेम की माता ज्यों-ज्यों वृत्तान्त सुनाती जाती थी,

सन्तोष कुमारी की वह बातें उसे स्मरण आती जाती थीं जो उसने प्रेम को शिक्षा देते हुए कही थीं।

प्रेम की माता—पुत्री सन्तोष कुमारी! अब तू कोई बात कर।

सन्तोष कुमारी—माता जी! अब आपको घर जाना है। मुझे भोजन बनाना है. मैं पिताजी से कहूंगी, फिर इस देवी के लिये यहाँ ही अथवा अपने घर पर कुछ करूंगी और आपको भी बुला लूंगी।

(३)

सन्तोष कुमारी ने घर जाकर सब कार्य किया सबको भोजन करा पिता जी को दुःख भरी देवी का समाचार सुना दिया और कहा कि अब उसका कोई स्थिर प्रबन्ध होना चाहिए, वह बहुत पढ़ी-लिखी तो प्रतीत नहीं होती, वरना सरकारी पाठशाला में उसका आप प्रबन्ध करा देते। अब चाहे उसे यहाँ बुलवाएं अथवा उसके घर समझाएं, उसे शान्ति भी मिले और ईश्वर में विश्वास बढ़े।

ज्ञान प्रकाश जी ने कहा, पुत्री! उसके घर अपने आप तो मेरा जाना उचित नहीं। पिछले पहर तुम स्वयं चली जाना और वापसी पर उसे तथा प्रेम की माता को अपने साथ ही यहां ले आना। फिर उनके लिए कुछ करेंगे।

सन्तोष कुमारी सायं के चार बजे के समीप प्रेमलता की माता को साथ लेकर दुःखभरी के घर गई और फिर उसे साथ लेकर अपने घर पहुंची। ज्ञान-प्रकाश जी भी उस समय आ गये थे। उन्होंने दुःखभरी देवी से कहा, देख पुत्री! तू भी

भगवत् भक्ति के अधिकारी

सन्तोष के समान मेरी पुत्री ही हो। अब तक तो हमें कुछ पता न था, यह भी हमारे लिए एक पाप ही है कि तुम्हारी सुधि (खबर) न ले सके। अब मैंने तुम्हें इसलिए बुलाया है कि तुम बताओ कि क्या काम कर सकती हो ? ताकि तुम्हारे लिये किसी माननीय जीवन निर्वाह (आजीविका) का स्थिर प्रबन्ध करा दे। वैसे तो हम पंचायत से भी तुम्हारी सहायता करा सकते हैं परन्तु वह कुछ अच्छा नहीं। यह सहायता उनकी होती है जो कोई कार्य करने के सर्वथा योग्य न हो। तुम तो अभी सभी कुछ कर सकती हो परमेश्वर ने तुम्हारा शरीर अच्छा स्वस्थ तथा शक्तिशाली बनाया है।

दुःखभरी—पिता जी ! मैं तो माता जी (प्रेम की माता) और इन (सन्तोष कुमारी) को सब वृत्तान्त सुना चुकी हूं। मैंने आज तक कोई भी कार्य करके नहीं देखा। अब क्या कहूं कि कौन सा कार्य कर सकती हूं। हां पहले मैं आप डावांडोल थी परन्तु उस दिन से मैं समझती हूं कि मेरे भाग्य जग गए, वह साधु सन्त क्या आये, मेरे लिये एक मार्ग खोल गये, अब तो मुझे प्रभु पर पूरा विश्वास है कि वह अवश्य देगा। अब तो मैं केवल उसी की होकर रहूंगी और उसी की भक्ति करूंगी दिन रात उसी के आश्रय रहूंगी।

ज्ञानप्रकाश—पुत्री ! परमेश्वर का आश्रय ही पार करने वाला होता है, परन्तु किसी सन्त साधु अथवा मेरे कहने से परमेश्वर की भक्ति नहीं हो जाती। किसी बिरले को ही जिसका पूर्व पुण्य, संचित ज्ञान और वैराग्य ऐसा हो उसे तो एक ही आवाज

पर्याप्त हो जाती है परन्तु भक्त बनना सुगम कार्य नहीं। सबसे कठिन कार्य यदि कोई है तो वह परमेश्वर की भक्ति ही है। संसार में प्रायः बहुत से लोग कर्म के अधिकारी ही मिलते हैं और एकान्तवास के वास्तविक अधिकारी वे हैं जो भगवान की भक्ति में लीन है, जिसका हृदय प्रेम से परिपूर्ण है, जो भगवान के क्षण भर के विस्मरण से ही परम व्याकुल हो जाते हैं (जैसे माता के बिना नन्हा बच्चा भयभीत होकर चिल्लाने लग पड़ता है) प्रायः वाह्य ज्ञान में लिप्त रहने के कारण जिनके सांसारिक कार्य सुन्दर रूप से सम्पन्न नहीं हो सकते और जिनको भगवत् प्रेम की व्याकुलता से संसार के भोग अर्थात् भोग विलास को केवल दर्शन अथवा श्रवण मात्र से ही ताप होने लगता है, ऐसे अधिकारियों के लिए जन समुदाय से पृथक रह-रह कर एकान्त देश में निरन्तर अटल साधना करना ही अधिक लाभदायक होता है। ये लोग कर्म नहीं त्यागते, कर्म ही उन्हें त्याग कर पृथक हो जाते हैं। ऐसे लोगों को एकान्त में कभी आलस्य अथवा विषय चिन्तन नहीं होता। उनके भगवत् प्रेम की नदी में एकान्तवास से उत्तरोत्तर बाढ़ आती है और ये बहुत ही शीघ्र उन्हें परमात्मा रूपी महासागर में मिलाकर उसका स्वतन्त्र अस्तित्व इस सागर के असीम विशाल अस्तित्व में सांसारिक विक्षेप सताते हैं, वह अधिक समय तक कर्महीन होकर एकान्त वास के अधिकारी नहीं। जगत में ऐसे ही लोग अधिक हैं।

इसलिए शास्त्र नीति यह है कि कर्म ही उपयोगी है। हां, जो भी कर्म करो प्रभु आश्रय होकर करो, उसे प्रभु के समर्पण

करो। इसलिए कर्म को छोड़ना नहीं चाहिए। आगे जो भी तुम्हारी इच्छा हो। यदि काम करना नहीं भी आता तो भी करते-करते आ जाता है। यद्यपि इसमें कुछ दिन कष्ट तो अवश्य होता है। पुत्री यदि तुम सारा दिन भक्ति करो तो प्रथम तो तुमको भक्ति का भी ज्ञान नहीं कि वह क्या वस्तु है, कैसे की जाती हैं ? फिर भक्ति कैसे कर सकती हो ? यदि करो भी तो सब कुछ जो परमेश्वर तुम्हें पहुंचावेंगे वह भी अन्ततः अन्न, धन वस्त्रादि होगा तो दान का ही, अपनी कमाई का तो नहीं होगा, परन्तु गृहस्थी दान क्यों ले ? विवशता के समय तो यदि निर्धन दुखिया की कोई सहायता करे तो कोई दोष नहीं, परन्तु बिना विवशता के दान स्वीकार करना भी भक्ति में बाधक होता है, इसलिये भी सब महात्माओं और महापुरुषों ने कर्म करने पर ही बल दिया है।

दुःखभरी—पिता जी ! बात तो आपकी सत्य है, परन्तु जिस सन्त ने प्रभु में मेरा विश्वास सुदृढ़ किया है, तनिक उससे भी पूछ लूं।

ज्ञानप्रकाश—अवश्य उससे भी पूछ लो। वह भी तुम्हारे लिये कर्म को भक्ति से अवश्य श्रेयष्कर समझेंगे।

तदनन्तर सब उठ खड़े हुये, परन्तु जब द्वार पर गये तो सामने वही साधु-महात्मा उसी गली में आता दीख पड़ा। दुःखभरी ने उन्हें देखकर कहा, लीजिये ! सन्त जी को प्रभु ने अपने आप ही भेज दिया है। इतने में सन्त जी भी आ पहुंचे और फिर सब अन्दर जाकर बैठ गये।

महाशय ज्ञानप्रकाश जी ने सन्त जी को सब वृत्तान्त कह सुनाया अर्थात् देवी भक्ति का संकल्प और अपना कर्म और पुरुषार्थ करने का परामर्श। सब कुछ सुनकर सन्त जी ने कहा—

"भक्ति जैसे उत्तम मार्ग तो कोई नहीं। भक्ति से ही परमात्मा मिलते हैं। मनुष्य जीवन का लक्ष्य भी परमात्मा प्राप्ति है भोग तो पीछे लगा ही रहता है इसलिये भगवान कृष्ण ने अर्जुन से स्पष्ट कहा है—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहंत्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता अध्याय १८ श्लोक ६६)

अर्थात्—हे अर्जुन! सब वर्णाश्रम आदि धर्मों का त्याग करके मेरी शरण में आ जा। मैं ही तुझे सब पापों से मुक्त करके मोक्ष पद दूंगा।" तो फिर क्या?

ज्ञानप्रकाश—इसका अर्थ यह नहीं कि सम्पूर्ण धर्मों का स्वरूप से त्याग है यहाँ नहीं कहा क्योंकि इससे पूर्व अध्याय १६, श्लोक २३-२४ में शास्त्र विधि के त्याग से सिद्धि, सुख और परम गति का न होना बतलाकर शास्त्र विधि से नियत किये हुये धर्म का पालन करना कर्त्तव्य बतलाया है और अध्याय १८, श्लोक ३४-४८ में भी स्वधर्म पालन करने पर बड़ा बल दिया है, वहाँ ऐसा प्रतिपादन कैसे करते? यहाँ सब धर्मों का स्वरूप से त्याग करने की आज्ञा देना सम्भव नहीं, क्योंकि अध्याय १८, श्लोक ७३ "करिष्ये वचनं तव" आपकी आज्ञा का पालन करूंगा, कहकर अर्जुन का युद्ध रूप वर्ण धर्म का आचरण करना इससे विरुद्ध पड़ता है। भगवान ने सब धर्मों के त्याग की आज्ञा दी अर्जुन ने

ने उसे स्वीकार भी कर लिया फिर उसके विरुद्ध अर्जुन युद्ध क्यों करता ? इससे सिद्ध होता है कि भगवान ने सब धर्मों के त्याग की आज्ञा नहीं दी, यहां सब 'धर्मान् परित्यज्य से' उनका यही अभिप्राय है कि मनुष्य को सब धर्मों का आश्रय त्याग कर केवल एक परमात्मा का ही आश्रय ग्रहण करना चाहिए। यही मैंने कहा है, पुरुषार्थ करो, परमात्मा की कृपा पर विश्वास रखो। प्रातः और सायं परमात्मा की पूजा करो। उठते-बैठते स्नानादि काम करते हुए भी प्रभु को स्मरण करते रहो और अपनी आजीविका स्वच्छ श्रम और पुरुषार्थ की कमाई से करो और अपने उदर की पालना करो, जिससे अन्य निर्धन अनाथों की कुछ सेवा भी कर सको।

सन्त जी को भी यह बात पसन्द आ गई। इसलिए उन्होंने भी माई जी से कहा—पुत्री ! यह ठीक है, अब भक्ति भी करो और पुरुषार्थ भी। जब भक्ति में तुम्हारा मन लग गया और संसार के विषय वासनाओं और मरे हुए की स्मृति ने तुम्हें न सताया और न तुमने कोई चिन्ता ही की, अपितु परमेश्वर की ओर से ही सब दुःख-सुख, हानि-लाभ समझा तो फिर अपने आप ही संसार का सब कार्य तुमसे ऐसे ही छूट जायेगा जैसे कि फल जब पक जाता है तो अपने आप ही वृक्ष उसे नीचे गिरा देता है और वह वृक्ष से चिपटा नहीं रह सकता ऐसे तुम्हारी अवस्था भी सर्वथा वैसे ही हो जाएगी।

तत्पश्चात् सन्त जी ने पूछा, आप क्या काम करायेंगे ? ज्ञानप्रकाश जी ने कहा, हम नगर की सब निर्धन विधवाओं को भी काम पर लगाना चाहते हैं। पहले तो कपास मोल लेकर उनसे

वेलने पर उजरत देकर बिलवायेंगे । कई चर्खा कातेंगी । जो काम भी जिसका जी चाहेगा, करेगी । उसकी उजरत निश्चित कर देंगे जिससे उसकी आजीविका सुगमता से चल सके । सब ८-१० घन्टे काम करेंगी । जो जितना अधिक कार्य करेगी, उतनी अधिक उजरत लेगी । इसमें उनको स्वतन्त्रता रहेगी । कोई घर का कार्य हो, सम्बन्धियों में कहीं आना-जाना हो, मित मर्यादा का कार्य हो, सब कर सकेंगी, कोई बन्धन अथवा उपस्थिति न लगाई जावेगी। उनके ही लाभार्थ यह कार्य पंचायत तजवीज कर रही है । उन्हें स्वयं विचार रहेगा अपने लाभ अथवा स्वार्थ के लिये यह कार्य नहीं होगा । कपास का तोल देना, तोल लेना बिनौला रूई सम्हाल लेने के लिए कोई वृद्ध सज्जन व्यक्ति नियत किया जायेगा । विधवाओं की सूची तैयार हो रही है, एक सप्ताह में सब काम पर लगा दी जावेंगी ।

ओ३म्

एकोनविंशो अध्याय

एकान्त वास

भयानक बुद्धि भोग — पाप प्रायश्चित

गृहस्थ का अधिकारी

ओघट घाटी

सन्तोष कुमारी नगर की कन्याओं, देवियों, निर्धनों के सुधार संवार के कार्य में लगी हुई है और सत्यव्रत प्रतिदिन नित्य कर्म से निवृत्त होकर अपनी भूमि पर चला जाता है। कृषकों और सेवकों से कार्य कराता है। दुकान और अपना साहूकारी लेन-देन का सब कार्य सीख गया है। अवकाश मिलने पर दुकान पर भी आ बैठता है और लिख-पढ़, बही खाता, लेन-देन आदि का सब कार्य जो होता है कर लेता है।

ग्रीष्म बीत गई, वर्षा ऋतु आ गई। अब कृषि के कार्य में भी खूब रुचि लेता है। हलवाही, बीज वपन सामने कराता है। एक विस्तृत क्षेत्र में बनवाड़ (कपास) बिजवा दी है क्योंकि कपास का भाव मंहगा रहता था। जब बनवाड़ तैयार हो गये और चुनाई के दिन आ गये तो पिता जी ने कहा—पुत्र ! बड़ी सावधानी से चुनाई और बटाई करना, वस्तु व्यर्थ भी न जाये और किसी का

स्वत्व भी न मारा जाये। स्त्रियाँ, बूढ़ी, युवा तथा कन्यायें छोटी बढ़ी सभी एक बड़ी संख्या में होती है। सेवक भी रक्षा करें और तुम भी देखभाल करना। कोई चोरी अथवा मर्यादा उल्लंघन न करने पाये। भूमिहारी का कार्य है तो दान और उदारता का, परन्तु फिर भी अपने स्वत्व की रक्षा करना आवश्यक है। भूमिपति की सम्पत्ति को खाने, लूटने तथा चुराने वाले अधिक होते हैं, परन्तु भूमिपति सदा हरा-भरा रहता है, भूमिपति को कृपण न होना चाहिए। परमात्मा एक के अनेक इसी भूमि से कर देता है और भूमिपति कभी भूमि की उपज सारी की सारी घर नहीं ले जा सकता। कई दाने काटते समय गिर जाते हैं, कई गाहते, बांटते भरते और ले जाने तक गिरते ही रहते हैं। उन्हें पशु, पक्षी, निर्धन दरिद्र लोग चुन-चुन कर अपना उदर भरते रहते हैं। इसलिए हमें इस बात की चिन्ता नहीं होनी चाहिए। सब देवियों को जो कार्य करने आयें अपनी माता बहिन समझना।

मातृवत् परदारेषु, परद्रव्येषु लोष्टवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पष्यति स पंडितः॥

जैसे तुम्हारी भूमि में बेअन्त ढेले सहस्रों रुपये पैदा कर देने वाले हैं, तो भी तुम उन्हें ढेला जानकर छोड़ देते हो, यह द्रव्य (धन) भी मिट्टी से उपजता है इसलिये मिट्टी इससे अधिक मूल्यवान है, द्रव्य को इसकी अपेक्षा तुच्छ समझना चाहिये।

गिरावट के किनारे

चुनाई बारी-बारी से होती है, आज इस क्षेत्र में कल उस क्षेत्र में। भूमि बहुत बीजी थी। ईश्वर की कृपा थी सत्यव्रत निरन्तर जाता और अपना कार्य करता

कर लौट आता। वह प्रायः स्वयं दूर बैठा-बैठा ही इतस्ततः दृष्टि दौड़ाकर देख भाल करता रहता था।

एक दिन फिरकर देखने का विचार उसके मन में उत्पन्न हुआ कि कपास की फसल कैसे चुनी और उठाई जाती है, इसलिए क्षेत्र में चला गया और क्षेत्र के बाहर मुण्डेर (सीमा) पर भ्रमण करते हुए काम देखने लगा। क्षेत्र के एक कोण में एक बहुत ही सुन्दर रूपवती युवती देवी काम कर रही थी। उसने सत्यव्रत को आता देखकर कार्य छोड़ दिया और उसे आदर पूर्वक सलाम (प्रणाम) किया और बड़े मधुर कोमल शब्दों में पूछने लगी, 'गोदा ! (स्वामी) आज क्या देखने आया है ?

सत्यव्रत स्वयं भी बड़ा बिशाल काय और रूपरान था। ब्रह्मचर्य की कान्ति उसके मुख पर थी। उसने उत्तर दिया, यह देखने आया हूं कि गोगड़ा (डोडा) कैसे चुना और उतारा जाता है।

देवी ने अपनी दृष्टि उसके सुन्दर मुख पर टिका दी और बड़े विनोद से मुस्कराते ओष्ठों से बोली—'अच्छा तुम ऐसे ही दूध पीते बच्चे हो, जो तुम इतना भी नहीं जानते ?

यह शब्द सुनते ही एक बार तो सत्यव्रत का मन विचलित हो गया, पुनः उसने उसी लय तथा स्वर में मुस्कराते हुए कहा—तुम्हें यह शङ्का हो गई होगी कि कहीं कोई माल न चुरा ले जावे आ जाओ इधर एक ओर आकर मेरी तलाशी ले लो। मैंने कुछ नहीं चुराया।

सत्यव्रत का कलेजा कांपने लगा, शरीर पसीना-पसीना हो गया। मुख से बात न निकल सकी। खिसयाना सा होकर अपने तुरन्त स्थान पर वापस चला आया।

अब यद्यपि अकेला बैठा हुआ है परन्तु मन विह्वल है, उस सुन्दरी का चित्र आंखों के सामने नाच रहा है। उसके मुस्कराते हुये ओष्ठ और मधुर वाणी पुनः पुनः मस्तिष्क में चक्कर लगा रही है। अन्ततः विवश हो गया और यह सोचकर फिर उठा कि एक बार उधर फिर जाऊं। चार पग चला मन में विचार आया कि वह क्या कहेगी। अन्य स्त्रियों को सन्देह हो जायेगा, अपयश होगा, पिता जी रुष्ट होंगे, फिर वापस आकर वहीं बैठ गया।

अब तो अनेक प्रकार के विचार तन में घुसने लगे। जवानी दीवानी अपना वेग दिखाने लगी। वह देवी भी शायद जान-बूझ कर उसके सामने ही एक समीप वाली क्यारी में आ गयी और बार-बार उसे देखने लगी। सत्यव्रत बेचारा भयभीत हुआ-हुआ उठा तो नहीं, परन्तु कभी-कभी मन बहलाने के लिए उसे देखता रहा।

मध्याह्न से पूर्व ही चुनाई समाप्त हो गई। अब बटाई करने का समय आया। सब स्त्रियां इस्तस्ततः फैल गई, कई कारदार के पास जा बैठीं कई सत्यव्रत के पास आ गई। वह सुन्दरी भी जान बूझकर सत्यव्रत के पास आ कर बैठ गई परन्तु सबसे पीछे और ठीक उसके सम्मुख आकर बैठ गई, सब बारी-बारी से

अपनी बटाई कराकर अपना भाग लेती गई, परन्तु यह अन्त तक बैठी ही रही। अन्त में जब उसकी बारी आई तो कपास की ढेरी सामने रखी। सत्यव्रत भाग करने लगा तो उसने उसे मोचें से पकड़ कर कहा, क्या बाँट करते हो ? तुम्हारी मेरी क्या बांट? तुम सारी ले जाओ अथवा मैं सारी ले जाती हूं।"

यह कह कर मुस्करा पड़ी। सत्यव्रत ने आँख उठाकर देखा नेत्र में जवानी का मद्य चढ़ गया। मुख मे कुछ बोल न सका। सज्जन कुल का था। झटपट डर के मारे कुछ न्यूनाधिक भाग किये और कपास उसके पल्ले में डाल दी। उसे भय था कि यह अकेली बैठी है, कोई क्या कहेगा ? कारदार कुछ सन्देह न कर ले।

सुन्दरी ने दीर्घ ठण्डा श्वास लेकर कहा, "अच्छा तुमने तो मेरा कहना न माना, मैं तो अवश्य मानूंगी। मैं तुम्हारा कहा न मोड़ूंगी' सत्यव्रत यह सुनकर लज्जावश काँपने लगा।

पश्चाताप

सत्यव्रत को चलते-चलते मार्ग में अनेक प्रकार के विचार आने लगे कि यदि पिता जी को पता लग जावे अथवा सन्तोष कुमारी को ज्ञान हो जावे तो क्या हो ? फिर मन में विचार आया कि जब मैं पाप ही न करूंगा तो उनको पता कैसे लगेगा। कल मैं कारदार से कह दूंगा कि सब बटाई वह स्वयं करें। मैं किसी स्त्री की बटाई करूंगा ही नहीं। यदि वह किसी को रियायत करेगा भी तो हमारी हानि होगी। पिता जी तो कहते ही थे कि सारी उपज भूमिपति घर नहीं ले जा सकता। उसे कई खाने वाले और लूटने वाले होते हैं। वैसे भी तो बहुत सी उपज भूमि पर गिर जाती है।

यह विचारते-विचारते कभी उसकी सुन्दर मोहिनी आकृति सामने आ जाती तो फिर उसका मन उसे उसी रङ्गसे प्रवाहित कर ले जाता। देर तक कई प्रकार की उधेड़बुन होती रही और मार्ग चलते उसे पता ही न लगा कि नगर में पहुंच गया। घोड़ी को बांधा। माल लाने वाले पीछे घोड़ों और गधों पर माल लादे कारदार के साथ आ रहे थे। यह घोड़ी स्थान पर बांध कर पहले सीधा दुकान पर गया। अभी पिता जी दुकान पर ही बैठे थे। उसने नमस्ते की। उन्होंने जब सत्यव्रत को देखा तो पूछने लगे, 'पुत्र ! आज तुम्हारा मुख मलिन सा क्यों है ?"

यह सुनकर सत्यव्रत चकित हो गया कि पिता जी तो आकार से ही पहचान लेते हैं।

विवाह से पूर्व भी वह मुख को देखकर ही मेरा पाप जान गये थे और अब भी उन्हें मेरे उदास होने का कारणज्ञात हो गया होगा। वह पुराने अनुभवी और स्वाध्यायशील हैं। केवल पुस्तकों के ही नहीं, अपितु मनुष्यों, पशुओं और प्रकृति (नेचर)के स्वभाव के भी। अब तो सत्यव्रत सहम गया। जिह्वा पर ताला लग गया और जब पिता जी ने दूसरी बार पूछा तो रो पड़ा।

पिता—क्यों पुत्र ! कोई क्षति हो गई ? कुछ बताओ तो सही। क्या कोई धन सम्पत्ति माल खो गया ?

पुत्र—नहीं।

पिता—फिर रोती क्यों हो ? किसी ने अपमान किया, अपशब्द कहे अथवा आक्रमण किया ?

पुत्र—नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं।

पिता—फिर रोने का कारण। किसी साधारण व्यक्ति के लिए तो कोई और नहीं हो सकता, हां एक असाधारण पुण्यात्मा के लिए अवश्य हो सकता है, जो इन बातों से नहीं रोया करता, केवल पाप दर्शन से ही उसकी यह अवस्था हो सकती है क्या यही कारण है?

पुत्र—जी हां. पिता जी!

पिता—घबराओ मत पुत्र! तुम्हारी इस वीरता के लिए मैं तुम्हें शाबाश देता हूं। तुम वस्तुतः मेरे सच्चे पुत्र हो क्योंकि पाप को प्रकट करने वाला बड़ा वीर गिना जाता है। यह सब का कार्य नहीं। लोग

पाप मोचन

पाप को छिपाते और पुण्य को प्रगट करने में ही चतुराई समझते हैं परन्तु इससे पाप बढ़ता है और पुण्य का फल घटता है। पाप प्रगटाने और पुण्य को छिपाने वाले बिरले ही होते हैं। इससे पाप का फल घट जाता है और पुण्य का फल बढ़ जाता है।

देखो पुत्र! सर्व मानव जाति में कोई न कोई त्रुटि रहती है मनुष्य त्रुटियों से भरपूर है केवल प्रभु आप ही पवित्र और निष्पाप हैं। इसीलिए प्रत्येक मनुष्य के लिए प्रति दिन संध्या, जप, हवन ईश्वर की याद, सत्संग और स्वाध्याय आवश्यक रक्खा गया है, इन में कोई भी अनाध्याय नहीं होता। अभी तुमने पाप नहीं किया, केवल पाप के समीप पहुंचे ही हो, तुम्हें बड़ा पश्चाताप और अनुभव हो रहा है। तुम्हारा अन्तःकरण और आत्मा इस दर्शन पाप

के फल को स्वयं बुलाकर और भोग कर उज्ज्वल बना रहा है। जैसे मैले वस्त्र की मैल साबुन से निकलने लगती है तो वह उज्ज्वल और स्वच्छ हो जाते हैं। तुम्हारी जो अवस्था इस समय है उससे मुझे दुःख और शोक के स्थान पर सुख और प्रसन्नता प्राप्त हो रही है क्योंकि तुम्हारा नाम जो मैंने सत्यव्रत रखा था, उसे आज तुमने सार्थक कर दिखाया है। अब कुछ चिन्ता न करो। अब तुम पाप के स्थान से दूर चले आये हो और पवित्र स्थान पर अपने पिता के समीप उपस्थित हो, अब तुम्हें क्या भय ? अब तुम अपना वृतान्त सुनाओ !

सत्यव्रत ने बिना किसी मिलावट के यथार्थ रूप से सब वृत्तान्त सुना दिया। पिता ने उसके सिर और पीठ पर हाथ फेरा और उसे अपने गले से लगा कर पूछा, वह कौन थी, क्या नाम था ?

पुत्र—मुझे कुछ पता नहीं। किस ग्राम की है ? क्या जाति है ? क्या नाम है ? मैं तो वहाँ भी लज्जित होता रहा।

पिता—स्त्री की मूर्ति काष्ठ की भी हो, कागजी चित्र आकार अथवा मिट्टी की बनाई हुई मूर्ति हो क्यों न हो, तो भी वह पुत्र! बड़ी भयानक होती है। महाराज ऋषि दयानन्द जी को एक स्त्री का आकार सामने आ जाने पर ४८ घण्टे की समाधि लगानी पड़ी। उन्हें भय हो गया कि कहीं यह आकार स्वप्न में ही मुझे ध्यान से न गिरा दे। बड़े-बड़े तपस्वी और संयमी पुरुष भी इसके संग से विचलित हो जाते हैं। एक भले पुरुष के लिए उससे बचने का केवल एक उपाय है कि वह अपनी त्रुटियों पर विचार करके स्त्रियों से पृथक् रहे। धन के त्याग से भी स्त्री का त्याग कठिन है। स्त्री

का त्याग उससे पृथक रहने में नहीं अपितु भोग, बुद्धि से स्त्री का चिन्तन, दर्शन, स्पर्श और उसके चित्र का दर्शन भी विकार उत्पन्न करने वाला होता है क्योंकि भोग बुद्धि सदा हमारे अन्दर छिपी रहती है। मन को बहुत टटोल कर देखो। अपने दोष पहचानने की इच्छा से गुह्य अन्तर दृष्टि करो, तुम्हें पता लगेगा कि स्त्री के रूप पर उसकी वेष-भूषा पर, उसके शब्दों पर उसके हाव भाव पर ही पुरुष के मन मे आसक्ति है! इसी प्रकार स्त्रियों को भी पुरुष से बचना चाहिए, गुरु भाव से किसी पर पुरुष से एकान्त में कभी नहीं मिलना चाहिये, क्योंकि यह इन्द्रिया बड़ी प्रबल हैं। मैं स्वयं अपनी कहता हूं साधना करते-करते भी संयम से निकल भागती हैं, फिर स्वतन्त्र छोड़ने पर तो कहना ही क्या है।

सन्तान के प्रति पिता का उत्तरदायित्व

आज तुम्हारी इस बात से २७ वर्ष का संस्कार तुम से प्रगट हो रहा है। पिता पुत्र कभी परस्पर ऐसी बात हो नहीं कर सकते, परन्तु चूंकि मैं सुधारक हूं और तुमने अपना जीवन आदर्श जीवन बनाना है, अतः मैं इसे भी उचित ही समझता हूं। तुम अभी उत्पन्न नहीं हुए थे। मेरी भी तुम्हारी तरह युवावस्था थी। इसी क्षेत्र में इन्हीं दिनों वनवाड़, चुनवाई के लिए मैं भी गया और इसी तरह एक नवयुवती रूपवती स्त्री पर मेरा मन मोहित हो गया, परन्तु मैं एक सज्जन और कुलीन होने के कारण कोई साहस न कर सका। मुझे लज्जा और भय आता रहा। जब घर पहुंचा तो भी सारा दिन मेरा विचार उधर ही रहा, परन्तु

मेरा वायुमण्डल ऐसा नहीं था जैसा कि तुम्हारे लिए। केवल प्रभु की कृपा ने ही मुझे बचाए रक्खा। इसके पश्चात् रात्रि के इस विचार को दूर करने और काम वासना से तृप्त होने के लिए मैंने शीघ्र ही गृहस्थ कर लिया और ईश्वरेच्छा से गर्भ ठहर कर तुम उत्पन्न हो गए। मुझे इन बातों का पहले ज्ञान न था कि यह भी कोई संस्कार है और इसका भी कुछ प्रभाव पड़ेगा। न मेरी इतनी शिक्षा थी और न स्वाध्याय। न कोई मुझे यह सब बातें बतलाने वाला था। ९-१० मास तुम गर्भ में रहे। २५ वर्ष में तुम्हारा बिबाह हुआ। एक वर्ष तुम्हें विवाह किये भी हो गया। २७ वर्ष के पश्चात् आज फिर वही संस्कार जिससे तुम उत्पन्न हुए थे, तुम्हारे द्वारा मुझ पर प्रकट हुआ और जैसे मैं लज्जा और भय से बच गया था। वैसे ही तुम भी प्रभु की कृपा मे बच गये हो। मैं अपनी आयु में इस समय तक प्रभु की कृपा से इस कुमार्ग से बचा रहा चूंकि संस्कार का बड़ा प्रभाव होता है। (ज्ञान प्रकाश ने अब सत्यव्रत की परीक्षा रूप में उसको पथ प्रदर्शन करना चाहा और कहा) इसलिए मैं तुमसे भी कहता हूं कि तुम भी गृहस्थ करके इस कुवासना को दूर करने का विचार अपने मन में न लाना। दूसरे तुमने यह बहुत अच्छा किया कि मुझे सारा वृत्तान्त सुना दिया, परन्तु इसे अपनी स्त्री से न कहना।

सत्यव्रत—गृहस्थ तो पिता जी मैं नहीं कर सकता, क्योंकि हम दोनों की यह पारस्परिक प्रतिज्ञा है कि हम केवल सन्तानोत्पत्ति के लिए गर्भाधान करेंगे और वह भी जब हम दोनों की भूमि तैयार हो जावेगी, जैसी कि हमने आपकी आज्ञा पालन करके धारणा की

हुई है कि हम भी आदर्श सन्तान उत्पन्न करेंगे। इसीलिए हम स्वयं उस आदर्श के सांचे में ढल रहे हैं। दूसरे देवी से तो मैं यह घटना छिपा नहीं सकता, वरना हमारा सांचा आदर्श कैसे बनेगा ? यदि हम विवाह के समय हुई प्रतिज्ञाओं का पालन न करेंगे क्योंकि पाणिग्रहण के समय तो मैं यह कह चुका हूं "न स्तेयमद्मि मनसोद-मुच्ये" अर्थात् मैं कभी मन से भी तुझे वधु के साथ चोरी न करूंगा; अर्थात् तुझ से कभो कुछ गुप्त न रक्खूंगा।

ज्ञानप्रकाश—पुत्र ! मैं तुम्हारा पिता हूँ, तुम मेरे जाये हो। मुझे तुम्हारे दोष की सब बातें छिपानी और गुण की सब बातें लोगों पर प्रकट करनी हैं, क्योंकि इसी से मेरा नाम भी बुरा अथवा भला प्रसिद्ध होना है, परन्तु वह पराई जाई है, वह शायद बुरा माने और स्त्रियाँ तो इस बात से चिड़ती हैं बल्कि उनको ऐसे पति से घृणा हो जाती है।

सत्यव्रत—फिर मुझ में और साधारण नवयुबकों में क्या भेद रहा ? यदि मैंने आप जैसे धर्मात्मा पिता का पुत्र होकर भी ऐसी पवित्र सदाचारिणीं, आदर्श जीवन धारिणी, तपस्विनी धर्मपत्नी और सहधर्मिणी को प्राप्त करके जप, संन्ध्या, अग्निहोत्र, स्वा-ध्याय और आपका पवित्र सत्संग प्राप्त करते हुए भी अपनी किसी प्रतिज्ञा को भंगकर लिया और देवी तो इन बातों की मुझ से कहीं अधिक समझने वाली है. वह तो मेरे पास बिक चुकी है और मैं उसके पास पाणिग्रहण में वह कह चुकी है कि परमात्मा की कृपा से आप मुझे मिले हैं, मेरे लिए आपके बिना इस जगत में अन्य पति, पूजा के योग्य स्वामी, सेवा के योग्य और पालन करने वाला

कोई नहीं, न मैं आपके बिना किसी दूसरे को मानूंगी।

पिता—(प्रसन्न होकर) तुमने बहुत उचित कहा है। मैंने तो केवल तुम्हारी परीक्षा ली थी। शाबाश! तुम तो इस परीक्षा में भी उत्तीर्ण हो गये।

सत्यव्रत—अब मुझे इसका उपाय बतलाइये कि मैं इस भय से कैसे बचा रहूं यह तो प्रतिदिन का कार्य है। एक से नहीं दो से नहीं, सैकड़ों स्त्रियों से काम पड़ता है, उसमें छोटी बड़ी और युवती बूढ़ी सभी होती हैं।

पिता—इसका उपाय भी सन्तोष कुमारी ही तुम्हें बतायेंगी।

सत्यव्रत—वह बेचारी इन बातों को क्या जानें?

पिता—नहीं पुत्र! वह इतनी पवित्र है और उसका इतना ओज तेज है कि उसे देखते ही पापी का पाप दग्ध हो जाता है। कई दिन बीते, एक प्रसिद्ध गुण्डा रात को मेरे पास आया और मेरे चरण-स्पर्श करके बैठ गया। मैं जानता था, यह गुण्डा है। इसे कोई स्वार्थ अथवा दुःख होगा, वरन् यह मेरे पापों को कैसे स्पर्श करता? यह लोग तो किसी की परवाह नहीं करते। मैं अपने मन में कुछ भयभीत भी हुआ कि पता नहीं, यह क्यों आया है। और क्या मांग बैठे? यदि इसकी सहायता न की अथवा बात न मानी तो यह अभी अपमान करने में संकोच न करेगा। मैंने कड़ा मन करके फिर सोचा कि यह मेरा क्या कर सकता है? उससे पूछा, आज इस समय कैसे आये? आज तक

पवित्रता का ओज और तेज

तो कभी दर्शन देने की कृपा नहीं की ?

गुण्डा—पिता जी ! आज प्रभु की कृपा से मैं अपने गुण्डेपन से मुक्त और पवित्र होकर आपको धन्यवाद देने और आपके दर्शनों के लिए उपस्थित हुआ हूं ।

मैं—वह कैसे ?

गुण्डा—मैं परमेश्वर को साक्षी जानकर कहता हूं कि आपकी पुत्री सन्तोष कुमारी की इस नगर में बड़ी चर्चा और घर-घर में उसकी प्रशंसा सुन कर मेरा मन उसे सहन न कर सका । मैंने सोचा स्त्री जाति है, अभी सर्वथा कन्या युवती इसमें इतना धर्म तप और बल कहां से आया ? मेरे सिर पर राक्षसी भाव सवार हो गये । मन अपवित्र हो गया । आपके धर्मात्मापन, उपकारवृत्ति नगर पर असंख्य उपकार, हित और निष्पाप बेलाग जीवन, सबको ही भूल गया । अपने गुण्डेपन की चतुराई वीरता के अहंकार के सिवाय मुझे कुछ न सूझा और मैं यह सोचकर गया कि उसे सबके मध्य से भी उठा लाऊंगा, परन्तु मुझे वह उस समय अकेली मिल गई । मैंने देखा तो ईश्वर जानें क्या हो गया कि उसे देखते ही मेरे मन की सब मैल धुल गई, नेत्रों में यह पवित्रता आ गई कि मुझे वह तुम्हारी पुत्री नहीं दिखाई दी अपितु मेरी अपनी ही जाई पुत्री धर्मवती की आकृति दृष्टि पड़ी और मेरा शरीर पसीना-पसीना हो गया । बस उसी समय से मैंने अपने मन में यह शपथ खाई कि अब मैं भी मनुष्य बनकर जीवन बिताऊंगा और अपना शेष जीवन सेवा और परोपकार में गुजारूंगा और उसी समय अर्थात् मध्याह्न से लेकर इस समय तक एकान्त में जाकर जोर-

जोर से रोता रहा और इतना रोया कि मेरे सब वस्त्र भीग गये। अब मेरा मन प्रभु ने उज्ज्वल कर दिया है। पिताजी! तुम धन्य हो, तुम्हारे भाग्य धन्य हैं, तुम्हारे पुत्र के भाग्य धन्य हैं, तुम्हारी पुत्री सन्तोष कुमारी धन्य है, उसकी माता धन्य है, हमारा यह नगर धन्य है। अब मैं अपने आप से यही कहता हूं कि ऐ नीच पापी! तू भी धन्य है कि इस देवी के दर्शन से तेरे जीवन की काया पलट गई। महाराज! आप ने ऐसी पुत्री को प्राप्त किया है। इसलिए मैं आपको धन्यवाद देने तथा दर्शन करने के लिये आया हूं। मेरें इस मानसिक पाप को क्षमा कर दीजिए।

पुत्र! उसकी यह बात सुनकर मैं चकित हो गया और मैंने सर्व प्रकार से सन्तुष्ट कर विदा किया। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं कि वह तुम्हारा भी अपने ओज और तेज के बल से नेतृत्व करेगी वरन् मैं तो कहीं दूर नहीं, कल प्रातः पूछ लेना।

सत्यव्रत—अच्छा पिता जी! ऐसा ही करूंगा, परन्तु मैं आज प्रायश्चित करता हूं अब अन्न नहीं खाऊंगा, और सायं तक प्रभु की आराधना और जप करूंगा कि प्रभो। मुझे सुमति और पवित्र बुद्धि प्रदान करें।

पिता—बहुत अच्छा, तुम्हारा सङ्कल्प ऐसा है तो निःसंकोच करो इससे तुम्हारे हृदय को शान्ति आयेगी।

पिता भोजन करने घर चले गये और सत्यव्रत एकान्त में जाकर प्रभु ध्यान में मग्न हो गया। सन्तोष कुमारी ने पिता जी को भोनज परो दिया जब वह खा चुके तो कहा तुम सब खाना

खा लो, सत्यव्रत का आज व्रत है, वह सायं को खायेगा।

ज्ञानप्रकाश जी तो यह कह कर चले गये। सत्यव्रत की माता ने भोजन पान किया परन्तु सन्तोष कुमारी ने न किया। सास ने कहा, पुत्री! तुम खा लो, तुमने रात भी न खाई, कहीं पड़ न जाओ।

सन्तोष कुमारी—मैं पतिदेव से पहले कैसे खाऊं? पता नहीं कैसा यह व्रत है। कहीं व्रत का मेरे साथ भी कुछ सम्बन्ध न हो क्योंकि हम लोग व्रत रखने तथा मानने वाले तो नहीं, इसलिए व्रत का कारण जाने बिना मैं खाना नहीं खाऊंगी। रात तो मैंने वैसे ही नहीं खाई।

बड़ा समझाया परन्तु सन्तोष कुमारी ने हाथ जोड़कर क्षमा मांगी और कहा–माता जी! यह शारीरिक कार्य नहीं है, आत्मिक कार्य है इसलिए मुझ पर ही छोड़ दीजिए।

इस समय उनके पास घर में कोई पुरुष नहीं था, जिसे वह सत्यव्रत के पिता जी के पास भेज कर सत्यव्रत को बुलवाती, इसलिए बेचारी चुप ही रही।

❀ ❀ ❀

॥ ओ३म् ॥

त्रिंशो अध्याय

जात कर्म संस्कार

प्रसूता की प्राण रक्षा

तीसरे पहर का समय था। राजकुमारी दौड़ती हुई सन्तोष-कुमारी के घर पहुंची और खड़े-खड़े ही कहने लगी—बहिन जी! मेरी माता बड़े संकट में है कृपया मेरे घर तक चलो।

सन्तोष कुमारी ने और कुछ न पूछा। तुरन्त सास की आज्ञा लेकर उसके साथ हो ली। घर पहुँच कर क्या देखा कि राज-कुमारी की माता को प्रसव की पीड़ायें लगी हैं और एक दाई पास बैठी है तो पूछा—क्या बात है?

दाई—अत्यन्त कष्ट है, कुछ बाहर नहीं आता। बेचारी दर्द से विलबिला रही है।

संतोष कुमारी—(सांत्वना देकर) बहिन जी! घबराओ नहीं "मर गई, मर गई" न कहो। प्रभु का नाम लो। जब दर्द होवे तो ओ३म् ओ३म् जपो। परमेश्वर ही दुःख दर्द से छुड़ाता है। "मर गई" का शब्द तो छुड़ाएगा नहीं।

वह—(निराशा से) अब मैं नहीं बचूंगी, अब मैं नहीं बचूंगी।

दाई—डाक्टर को बुलाया जावे, वह उदर चोर कर बच्चा निकाल देगा, ऐसे तो नहीं निकलेगा।

यह सुनकर वह बेचारी और घबराई और रो कर कहने लगी, "हाय मेरा उदर चीरा गया तो मैं मर जाऊंगी, मेरे छोटे बच्चे कौन पालेगा, गृहपति तो रोटी भी पूरी नहीं कमा सकता, बेचारा श्रमी (मजदूर) है। हाय मेरे मन्द भाग्य ! ओह ! मैं मर गई, हाय मैं उत्पन्न ही न हुई होती, माता ! माता ! मुझे उत्पन्न हो क्यों किया ?"—वह बड़े आर्द्र स्वर में अपनी दीनता, पति की बेकारी और छोटे-छोटे बच्चों को याद करके विलाप करने लगी। यह अवस्था देख कर बच्चे भी रो पड़े। वह समझे, हमारी माता वस्तुतः मर रही है। राजकुमारी बड़ी थी, सन्तोष कुमारी के पास पढ़ा करती थी, वह भी रोने लगी।

यह देखकर सन्तोष कुमारी ने राजकुमारी से कहा, "तू अपने कनिष्ठ भ्राता को संग लेकर मेरे पिता जी को बुला ला"। दाई बोली, "वह क्या करेंगे" ? सन्तोष कुमारी ने कहा, 'वह आवेंगे तो मैं कोई औषधि मंगवाऊंगी। ईश्वर करेगा तो बिना कष्ट बच्चा बाहर आ जावेगा।"

राजकुमारी दौड़ती गई और महाशय ज्ञानप्रकाश जी को बुला लाई। उन्होंने यह चीख और पुकार सुनी तो सन्तोष कुमारी से पूछा, "पुत्री ! मुझे क्यों बुलाया ?"

सन्तोष कुमारी ने पिताजी को पृथक ले जाकर धीमे से कहा

कि यदि किसी के भशुण्डी (बन्दूक) हो तो उससे कहें कि वह द्वार के बाहर एक खाली फायर कर दे। यह सुनकर वह शीघ्रता से चले गए एक बन्दूकची को बुलाकर उससे द्वार के बाहर एक खाली फायर करवा दिया। उस ध्वनि के धमाके से तुरन्त बालक ठीक हो गया और बाहर आ गया। यह देखकर दाई चकित हो गई। देवी ने प्रभु का धन्यवाद किया, उसकी जान में जान आ गई। राजकुमारी का पिता भी आ गया था। उसने कृतज्ञता के स्वर में कहा, "पुत्री सन्तोष कुमारी। तूने इसके प्राण बचाए, हमारा भला किया। परमेश्वर तेरा भला करेगा। अब इस बालक का हम क्या करें हम तो इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानते। यह उपकार भी आप कर देवें।"

(२)

सन्तोष कुमारी - यदि वैदिक रीति से संस्कार कराना हो तो मैं पिताजी को बुलवा देती हूं, वह संस्कार करा देंगे और सब कुछ समझा भी देंगे। जब तक दाई

नवजात बालक

बालक को शुद्ध करे और बलिष्ठ भर नाड़ी को छोड़ कर सूत के धागे मे बांध डाले और उस स्थान से ऊपर किसी तीव्र कैंची से अथवा चाकू से काट देवे। फिर गर्म जल से बालक को स्नान करा और किसी स्वच्छ वस्त्र से पूंछकर अन्य स्वच्छ वस्त्र में उसे लपेटकर माता को देवे। यह सब तो दाई स्वयं जानती है और आप भी जानती होंगी। घर में मधु तो होगा ही यदि न हो तो मंगालो।

यह कह कर सन्तोष कुमारी गई और हवन कुण्ड तथा हवन का शेष सब सामान अपने घर से ले आई। महाशय ज्ञानप्रकाश जी भी आ गए और मुहल्ले की कई स्त्रियां भी इकट्ठी हो गई।

(३)

जात कर्म

महाशय ज्ञानप्रकाश जी ने स्थान ठीक करके बालक के पिता को बिठाया और बड़ी श्रद्धा और प्रेम से विधिपूर्वक हवन यज्ञ किया। बालक का पिता तो बेचारा कुछ जानता ही न था। महाशय ज्ञानप्रकाश ने घृत और मधु को कांसी के कटोरे में मिलाकर घिसा, अपने पास से सोने की शलाका निकाली और अपनी हार्दिक भावना की विद्युत उस घृत और मधु में प्रविष्ट करके बालक की जिह्वा पर 'ओम्' शब्द लिख दिया और उसके दक्षिण कर्ण में 'वेदोसीति' अर्थात् तू वेद (ज्ञान) है बोलकर बड़ी श्रद्धा के साथ बालक को सात बार उसी सोने की शलाका से वह घृत और मधु चटाया। सब स्त्रियाँ और धायी तो यह क्रिया देखकर हंसने लगीं, परन्तु बालक का पिता अज्ञानी होकर भी श्रद्धालु था, वह विचार कर बड़ा प्रसन्न हुआ कि मेरा यह बालक बड़ा भाग्यवान उत्पन्न हुआ है। उसने कहा कि महाशय जी! यह सब तो नितान्त नई विधि है, जिसे देखकर ये देवियाँ हंस रही हैं। मुझे तो यह पूरा विश्वास है कि आपने जो कुछ किया है और मन्त्र पढ़े हैं, उनसे सब काम शुद्ध हो गया, पर इनको भी कुछ मति मिल जानी चाहिए, क्योंकि यह सब भी सन्तान वाली हैं और होंगी।

ज्ञानप्रकाश—देवियों ! यही क्रिया जो मैंने की है सनातन और वास्तविक है परन्तु लोग इसे अविद्या के कारण विस्मरण कर गये ! देखो, सब धातुओं में से सोना सबसे मूल्यवान धातु है और यही सर्व तिजारत तथा व्यापार व्यवहार का प्राण है। आज जिसके पास सोना है वही महान् व्यक्ति है । सब रसों में मीठा रस सबको प्रिय है और सब मिठासों में मधु जैसा मीठा, गुणकारी और लाभकारी अन्य कोई मिठास नहीं । सब पौष्टिक पदार्थों मे घृत अधिक बल दाता है । इसमें दो गुण हैं एक तो बल देता है, दूसरे विषको नाश करता है, अन्य बलदायक वस्तुओं में भी यह दोनों गुण न्यूनाधिक होंगे परन्तु इस समय जबकि बालक के अन्दर विषैला अंश भरा हुआ होता है, घृत तथा मधु मिलकर एक तो भोजन बन जाता है, दूसरे उसका मल (डासा) निकलता है । स्वर्ण भी विष को दूर करके शुद्ध परमाणु पैदा करता है, मेधा वर्धक है परन्तु इसका वास्तविक अभिप्राय यह है कि मनुष्य के पास चाहे कितना भी स्वर्ण क्यों न हो, चाहे वह बड़ा धनवान भी हो, उसमें बल चाहे कितना ही क्यों न हों, और चाहे वह रसों का स्वामी अर्थात् मधुमयी वाणी युक्त हो परन्तु इनसे अधिक बलवान धनवान वह नहीं हो सकता इसलिए इन सबको ही ओ३म् अर्थात् परमात्मा के नाम पर न्यौछावर कर देना चाहिए । जो मानव अपना धन, बल सम्पत्ति तथा मान-मर्यादा सब प्रभु के लिए अर्पण कर देता है अथवा उन्हें प्रभु की देन समझ कर प्रयोग में लाता है, उसकी वाणी में बल और रस आ जाता है और उस मानव की वाणी को

लोग स्वर्ण की लेखनी से लिखने योग्य समझते हैं। इस बालक के लिए भी यही प्रार्थना परमात्मा से की गयी है।

(५)

यह सब क्रिया कर चुकने के बाद जब मन्त्र पढ़ कर बालक को उसकी माता के दोनों स्तनों से दुग्ध पान कराने लगे तो महाशय ज्ञान प्रकाशजी ने उन्हें समझाते हुए कहा कि बालक की माता को दुग्ध पान कराते समय अपने मन में बड़ी तीव्र और कल्याणकारी भावना करनी चाहिए। आज की और इस समय की यह भावना ही बालक के लिए अमृत की घुट्टी बन जायगी। देखो, परमात्मा ने दो स्तन पैदा किए हैं, एक है धीरता का और दूसरा है वीरता का। मनुष्य को संसार में आकर जब शत्रुओं का सामना करना पड़ता है तो वह वीरता से ही कर सकता है। जो वीर नहीं, बलहीन और भीरु है, वह शत्रुओं से सदा ही पादाक्रान्त होता रहेगा। इसलिए माता को इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि यदि वह अपने बालक ऐसा वीर बनाना चाहती है कि संसार में कोई भी शत्रु उसके सामने न ठहर सके और वह सबका दलन करने वाला हो। माता के दूध में परमात्मा ने बड़ी भारी ताकत भरी है यह सब कोई जानता है, इसलिए वह अपने दुग्ध के अन्दर वीरता के भाव खूब भर ले।

दुग्ध पान : धीरता-वीरता

दूसरा स्तन है धीरता का। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन में दुःखों और आपत्तियों का कभी न कभी सामना ही पड़ता है, इसलिए मनुष्य के अन्दर जब तक धीरता न होगी, वह दुःख

और आपत्ति को हल्का नहीं कर सकेगा। इसलिए इस संस्कार में यह मन्त्र आया है :—

अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतं भव।
वेदो वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम्॥
मं० ब्रा० १।५।१८॥ आश्व० १।१५।३॥

अर्थात् हे बालक! ईश्वर करे कि तू चट्टान की तरह दृढ़ संकल्प वाला और धैर्य स्वभाव वाला हो और अपने दुष्ट शत्रुओं के लिए फौलाद की तरह सख्त हो और स्वर्ण जैसा तेजस्वी तथा सर्वप्रिय हो। वेदों का ज्ञाता हो तथा सौ वर्ष तक जीता रहे।

(६)

फिर यह शिक्षा दी कि प्रसूता स्त्री के सिर की ओर जल पूर्ण कलश रख दें। दस दिन तक उसे ताजा जल से भरते रहा करें क्योंकि प्रसवागार में गन्दगी के कारण बहुत सी विषैली वायुएं और विषैले कीटाणु पैदा हो जाते हैं और जल ऐसी विषैली गैस तथा कीटाणु को अपने अन्दर समाविष्ट करने की शक्ति रखता है।

शिक्षाएं

महाशय जी ने बालक की माता को यह भी आज्ञा की कि वह जब भी दुग्ध पान करावे, किसी के सामने न पिलावे। यदि कोई बैठा हो तो उसके ऊपर वस्त्र डाल दे और स्तन को पहले धोकर शुद्ध कर ले। जब तक बालक दुग्ध पान करता रहे, मन में 'ओ३म्' अथवा गायत्री का जाप करती रहे। कभी क्रोध की अवस्था में दुग्ध न पिलाये, न कभी पिलाते हुए किसी की निन्दा, चुगली क्रोध करे, असत्य भी न बोले, जहां तक सम्भव हो सके मौन रह

कर जप में निमग्न रहे। जब तक दांत नहीं निकलते, अपना ही दुग्ध पिलाती रहे। गौ, बकरी अथवा भैंस का दूध न पिलाए। यदि दुग्ध कम हो तो गौ के दुग्ध में जल मिलाकर अपने जैसा हल्का बना कर पिलाना चाहिए बच्चे के बार-बार रोने पर स्तन उसके मुख में नहीं दे देना चाहिए क्योंकि जब बालक रोता है तो वह एक प्रकार का व्यायाम करताहै, इससे उसके अङ्ग बढ़ते हैं। इसलिए इस बात की चिन्ता न करनी चाहिए। दुग्ध पान का समय नियुक्त कर लेना चाहिए और उसी समय पर बालक को दुग्ध पिलाते रहना चाहिए। आगे पीछे नहीं पिलाना चाहिए। बालक का स्वास्थ्य खिलाने पिलाने में अनियमितता करने से विकृत हो जाता है। नियमित खाने से नियमित जीवन बनता है। बालक के साथ कभी कटु और तीव्र नहीं बोलना चाहिए। कड़वे नेत्र से भी नहीं देखना चाहिए। छोटे बालक परमेश्वर का रूप होते हैं। गन्दें, अपवित्र हाथों में उसे नहीं देना चाहिए। तीन मास तक उसे भ्रमणार्थ घर से बाहर न निकालना और उसकी खूब रक्षा करनी चाहिए। इसमें लज्जा नहीं करनी चाहिए। यह शिक्षाएं जो मैं दे रहा हूं, सब शास्त्रानुकूल दे रहा हूं।

प्रसवागार में ऐसे पुरुष को कभी नहीं आने देना चाहिए जिसमें निम्न दोष हों।—

ओ३म् आखिघन्ननिमिषः किवदन्त उपश्रुतिः हर्यक्षः कुम्भी शत्रुः पात्र पाणिर्नृमणिर्हन्त्री मुखः सर्षपारुणश्चयवनो नश्यतादितः स्वाहा॥ पा० गृ० सू० का० १ क० १६।

(१) जो अन्यों की वस्तु बिगाड़ने वाला हो, (२) जो अन्यों

को दवाने के लिए व्यापार करता है. (३) खोटा बुरा बोलने वाला पृष्ट पिशु निन्दक चुगली खाने वाला, (४) क्रोधी और पीत नेत्र-युक्त (५) दीनों पर अत्याचार कर के स्वार्थ सिद्ध करने वाला, (६) व्यर्थ अन्यों को कष्ट पहुंचाने वाला, (७) सर्वदा भिक्षुक बना रहने वाला, (८) मनुष्य को मारने वाला, (९) पशुओं का हिंसक (१०) गिरगिट की तरह बात-बात में रग बदलने वाला और, (११) जिसके संग से मनुष्य अपने धर्म कर्म से पतित हो जाय।

इस मन्त्र में बालक को दुष्ट जनों की संगत और ऐसे प्रभाव से बचाने पर वल दिया गया है जिससे वालक को शारीरिक तथा आत्मिक रूप से क्षति पहुंचाने की सम्भावना हो। अतः प्रसूता स्त्री के पास हर समय कोई स्वजन हितेच्छुक स्त्री तथा पुरुष बैठा रहना चाहिए। इस समय प्रसूता के पास किसी धर्मात्मा और भद्र स्त्री पुरुष के बिना किसी और को न जाने देना चाहिए। दाँत निकलने से पूर्व अन्न अथवा कोई वस्तु उदाहरणार्थ क्षीर, पेड़ा आदि वच्चे को न खिलाना। सोए हुए बालक को सहसा न जगाना। झटका देकर कभी ऊपर-नीचे नहीं करना। बहुत छोटे बालक को बिना आश्रय कभी न बिठाना वरन् कुवड़ा हो जाएगा। तीव्र वायु, कड़कती धूप, विद्युत की चमक, घने वृक्ष, निर्जन स्थान जैसे—कब्रिस्तान, शमशान आदि भयप्रद स्थान, कूप तालाब, गन्दी मोरी, गर्म पवन (लू), वर्षा, अन्धेरी आदि से सदा बचाये रखना चाहिये। किसी अरक्षित स्थान पर कदापि नहीं छोड़ना चाहिए। जब तक बालक को दुग्ध पिलाओ तब तक ब्रह्मचर्य रखना आवश्यक है।

वस, अन्त में यह कहना चाहता हूं कि इस बालक को कभी गन्दे हाथ न लगाना और न अपवित्र हाथ से कभी दुग्ध देना। इसे अतिथि, गुरु, परमेश्वर का रूप अथवा प्रतिनिधि जानकर इसकी सेवा और पालन करोगी तो बड़ा लाभ उठाओगी।

सन्तोष कुमारी—पिता जी ! बालक जब माता के गर्भ से बाहर आता है तो उसकी दोनों मुट्ठियां बन्द क्यों होती हैं ?

वन्द मुट्ठी वल और पवित्रता

ज्ञानप्रकाश—पुत्री ! इसमें प्रभु का एक बड़ा रहस्य छिपा है। प्रत्येक बालक चाहे वह किसी देश की माता से जन्मा हो, पहले "उवां—उवां" करता है। न लन्दन में उत्पन्न बालक उसी समय कोई अंग्रेजी का शब्द बोलता है न काबुल में जन्मा पशतो का न अरब देश में पैदा हुआ अरबी का। सभी बालक उत्पन्न होते ही "उवाँ—उवां" कहते हैं। यही अ+उ+म् का यथार्थ उच्चारण करता है यही प्रभु का निज नाम 'ओ३म्' है। इसीलिए जिस नाम को पुकारता हुआ वह संसार में आता है, वही नाम उसी की जिव्हा पर मधु तथा घृत से स्वर्ण की लेखनी से लिख दिया जाता है। यदि कोई मुट्ठी खोलने लगे तो भी वह "उवाँ—उवां' करके चिल्लाता है। यह मुट्ठी वन्द क्या आदेश देती है ?

जीवित पुरुष अपनी मुट्ठी तब बन्द करता है जब उसे कोई वस्तु प्राप्त हो जाये अथवा तब बन्द करता है जब उसे किसी शत्रु का सामना करना पड़े। शत्रु का सामना करने के लिए आवश्यकता है बल की और शास्त्रों की। भौतिक शत्रुओं के लिए तो

भौतिक शस्त्रों की आवश्यकता होती है। दैविक तथा आध्यात्मिक शत्रुओं के लिए दैवी तथा आध्यात्मिक शास्त्रों की आवश्यकता है। संसार में आकर बालक का कार्य काम, क्रोध, लोभ, मोह अहङ्कार से संग्राम करना होता है, ईसके लिए कोई भौतिक शस्त्र प्रयुक्त नही हो सकता। इमे पवित्रता की आवश्यकता है और पवित्रता बिना बल के स्थिर नहीं रह सकती।

बालक पवित्रता का आकार है, उसे कोई भी विषय वासना नहीं होती, इसलिए उसकी एक मुट्ठी में बल और दूसरी में पवित्रता बन्द होती है। संसार के शत्रुओं का सामना करने के लिए यह दोनों परसात्मा ने उसे पहले प्राप्त करा दिये हैं, इसलिए जब कोई उसकी मुट्ठी खोलना चाहता है तो वह 'उवां—उवाँ' अर्थात् ओ३म्–ओ३म् कह कर परमात्मा को पुकारता है और उससे सहायता मांगता है और पुकार करता है कि उससे क्या पदार्थ छीने जा रहे हैं।

बालक का पिता—तो क्या बालक की मुट्ठी नहीं खोलनी चाहिए।

ज्ञानप्रकाश—क्यों नहीं खोलनी चाहिए यह तो परमेश्वर के एक रहस्य की बात बतलाई है।

(८)

एक धनी कुल की देवी—कतिपय पुरुष पुत्रों का जन्म दिन मनाते हैं, क्या यह दिन सबको मनाना चाहिए। और क्यों मनोना चाहिए।

जन्म दिन

ज्ञानप्रकाश—जन्म दिन मनाने का तात्पर्य तो बाल पर संस्कार डालने और प्रतिवर्ष उसे स्मरण कराने का है

कि जन्मते ही उसके सिर पर जो सबसे महान् ऋण है उसे उतारने से ही वह मुक्त हो सकता है। जब वह कुछ समझदार होता है तो उस पर संस्कार का अवश्य प्रभाव पड़ता है परन्तु पूरा-पूरा लाभ तब है जब उसे यह सिद्धान्त भी समझा दिया जाये। यह ऋण कई प्रकार के हैं।

(१) धाई उसे कुम्भी कुए से निकालती है। उसका भी कर्त्तव्य है जैसे उसे कुम्भी नर्क से निकाला गया है, वैसे ही वह भी अन्य दुःखी जीवों को नर्क से बचावे और निकाले। (२) उसको संसार में जीवित रहने और श्वास लेने के लिए धाई उसके ऊपर का पर्दा फाड़ती है। (३) और मल के अपवित्र भोजन के स्थान पर दुग्ध जैसा दिव्य भोजन लेने के योग्य बनाने के लिये उसका नाड़ा (नाल) भी वही काटती है ऐसे ही वह भी संसार में अन्यों को स्वतन्त्र जीवन बिताने योग्य बनाने के लिए उनकी पराधीनता का पर्दा फोड़े और उन्हें आवागमन के अपवित्र चक्र से निकालने के लिए उनकी अज्ञानता की नाल काटे। यह तीन बड़े ऋण उसके जिम्मे होते हैं। जो इनको उतारता है उसका जन्म-दिन मनाना सफल है और इसलिए जन्म दिन मनाते हैं परन्तु इसके महत्व को बहुत कम लोग समझते हैं।

(६)

ज्ञानप्रकाश जी सन्तोष कुमारी को साथ लेकर घर पहुंचे। सायं होने को थी। देर बहुत लग गई थी।

संस्कारी जीव सन्तोष की सास ने पूछा—क्या हुआ ? सन्तोष ने उत्तर दिया—"पुत्र" परन्तु साथ ही आश्चर्य

से कहा—माता जी मुझे अब एक बात का आश्चर्य हो रहा है कि जिस समय बालक पैदा हुआ न तो उसकी माता ने ही यह पूछा कि क्या जन्मा है ? और न किसी और ने ही । जब दाई ने कहा, "बधाई हो, पुत्रोत्पन्न हुआ है" तो भी उसे कोई हर्ष न हुआ और न किसी ने बधाई ही दी । मेरे मुख से भी उस समय कुछ न निकला क्योंकि मैं एक तो उसकी अत्यन्त व्याकुलता से व्याकुल हो रही थी, दूसरे उसके बहुत से छोटे-छोटे बालकों को इधर-उधर देख कर यह आश्चर्य कर रही थी कि इन वेचारों की पालना भी पूरी नहीं होती ।

सास—मत मारी गई है आजकल स्त्री-पुरुषों की । घर में खाने को नहीं है, तन ढकने को वस्त्र नहीं, पुरुष वेकार है फिर इतने बालक ! पता नहीं दाई को भी देने के लिए भी कुछ होगा या नहीं । प्रतिवर्ष बालक, प्रतिवर्ष बालक, उन्हें न कभी बालकों पर दया आती और न अपने आप को ही लज्जा आती है ।

सन्तोष कुमारी बेचारी ने तो यह सुनकर लज्जा से सिर झुका लिया । ज्ञानप्रकाश जी ने कहा— सत्यव्रत की माता ! हमारा देश निर्धन है, इसलिए तो निःसन्देह अधिक सन्तान माता-पिता के सन्ताप का हेतु होती है । परन्तु यह तो विधि का विधान है । पूर्व कर्म भी कोई वस्तु है । उसका फल सहज में ही टल नहीं सकता जिस जीव का जहाँ जन्म बना हो, वहीं होगा । यह एक सिद्धान्त है । वह बेचारे भी क्या करें । कौन कह सकता है कि कोई जीव भाग्यशाली हो । घर भर के सारे दुःख निवारण कर दे ।

निःसन्देह स्त्री और सन्तान दुःख भी देते हैं, नर्क की खान भी बनते हैं, परन्तु सुख स्वर्ग के देने वाले भी तो यही बन जाते हैं परमात्मा की लीला परमात्मा ही जानें। मैं तो समझता हूं कि यह बालक संस्कारी प्रतीत होता है, जिसका ऐसे गृह में जन्म होकर भी विधिपूर्वक यज्ञ और वेद की प्रिय ऋचाओं द्वारा संस्कार हुआ है। चाहे बधाई किसी ने भी न दी हो, परन्तु प्रभु की लीला कौन जान सकता है। वही परमेश्वर सबकी लाज रक्खे और सब को सुखी करे! यही शुभ भावना हमें सदैव अपने मन में रखनी चाहिए।

❀ ❀ ❀
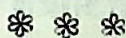
॥ ओ३म् ॥

गृहस्थ सुधार

तीसरा भाग

अग्नि परीक्षा

एकविंशो अध्याय

किये पाप का प्रायश्चित-मनन
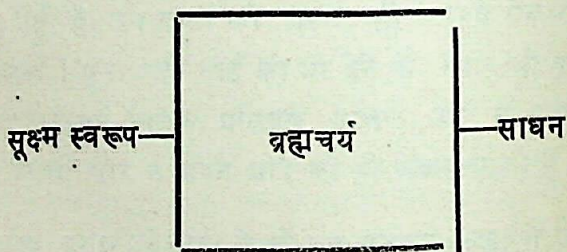
रात्रि का समय है। पहले तो सन्तोष कुमारी घर के सब कार्य से निवृत्त होकर सोते समय सबको नमस्कार करके अपनी खाट पर प्रार्थना करके सो जाया करती थी परन्तु आज वह किसी की प्रतीक्षा में मौन बैठी जप कर रही है। इतने में सत्यव्रत जी आ गये और अपनी खाट पर बैठने की अपेक्षा नियम विरुद्ध सन्तोष कुमारी की खाट पर आ बैठे और बोले—आज तुम इतनी देर तक क्यों बैठी हो ? तुम्हें तो प्रातः शीघ्र उठना होता है।

सन्तोष कुमारी—आपके लिए ही बैठी हूं।

सत्यव्रत—क्यों ?

सन्तोष कुमारी—आज कैसा व्रत था कि मध्याह्न को आपने भोजन नहीं किया ?

सत्यव्रत—बताता हूं। परन्तु तुमने यह नहीं पूछा कि आज नियम के प्रतिकूल मेरी खाट पर क्यों आ बैठे।

सन्तोष—प्रथम तो मुझे यह पूछने का अधिकार ही नहीं, क्योंकि खाट तो क्या मैं स्वयं भी आपकी ही हूँ, फिर यह कैसे पूछ सकती हूं। हां शायद पूछ ही बैठती, यदि आप पहले ही यह प्रश्न न कर देते। अच्छा, अब आज्ञा कीजिए।

सत्यव्रत—आज मैं एक पाप का प्रायश्चित कर रहा था, इसलिए भोजन नहीं किया। मुझ से एक महान पाप हो गया है और इस पाप को प्रकट करने के लिये ही मैं तुम्हारी खाट पर आ बैठा हूं।

सन्तोष—स्वामिन् ! किये पाप का प्रायश्चित कैसे ? वह तो हो गया, इसलिये अवश्य दुःख देगा और यही उसका फल होगा।

सत्यव्रत—नहीं-नहीं ! अभी उस पापी की अवस्था मानसिक थी। मन में ही पैदा हुआ था कि प्रभु कृपा हो गई जिसका मुझे बड़ा पश्चाताप हुआ। दोपहर तक कांपता और रोता रहा, जब कुछ भार हल्का हुआ तो यह प्रायश्चित भी बड़ा लाभदायक समझा।

सन्तोष—आपने अपने पाप का भार आत्मा पर से हल्का कर

दिया। ईश्वर की कृपा हो गई, फिर मुझ से इसके वर्णन करने का क्या लाभ ?

सत्यव्रत--पाणिग्रहण के समय की यह प्रतिज्ञा पूरी करने की मैं मन से भी कभी चोरी नहीं करूंगा और न कोई बात अथवा वस्तु तुमसे गुप्त रखूंगा, और कुछ परामर्श लेने के लिए भी यह वर्णन करने लगा हूं।

सन्तोष--धन्य हो भगवान् ! आप धन्य हो, आपकी बड़ी कृपा है। साधारण पुरुष तो स्त्री को पांव की जूती समझते हैं, यह आपका महान् अनुग्रह है कि अपना मानसिक पाप भी आप मुझ से छिपाना नहीं चाहते। यह आपके सत्य का ही बल है। आपके प्रेम का प्रभाव है।

सत्यव्रत—मैं धन्य नहीं, धन्य तुम स्वयं ही हो। मेरे गृह की साक्षात् देवी ! मुझे तुम पर पूरा-पूरा विश्वास होने से अब भय नहीं होता और कोई बात भी अथवा वस्तु तुम से गुप्त रखने में लज्जा आती है।

सन्तोष—प्राणेश ! यों कण्टकों में न उलझायें। अब अपना समाचार सुनाइये।

सत्यव्रत ने प्रातः से लेकर सायंकाल तक का सब समाचार ज्यों का त्यों सुना दिया और अन्त में कहा, अब बताओ, मैं ऐसे पापों से कैसे बचूं।

सन्तोष—स्वामी ! ऐसे पाप रोकने के साधन तो मैं नहीं जानती, यह साधन तो वही तजरबाकार और अनुभवी पुरुष जो

इन भूमियों से गुजरा हो अथवा जिसने ऐसे पाप किये हों, बतला सकता है शायद पिता जी कुछ बतला सकें। मैं तो केवल इनका कारण बतला सकती हूं कि आपके मन में यह इच्छा उत्पन्न क्यों हुई ?

सत्यव्रत—अच्छा कारण ही बतलाओ।

सन्तोष कुमारी—हमने आदर्श सन्तान उत्पन्न करने के लिए ही गर्भाधान करने की प्रतिज्ञा की थी और उसके लिए आवश्यक था कि हम अपना कोई और आदर्श सांचा बना लें। इसका एक-मात्र साधन है "ब्रह्मचर्य" का पालन।

सत्यव्रत—ब्रह्मचर्य तो मेरा कायम ही है, यह तो तुम्हें ज्ञात ही है।

सन्तोष कुमारी—(दबे स्वर से) यह तो सिद्ध नहीं होता। हां ! इन्द्रियां निस्सन्देह रुकी हुई हैं परन्तु मन नहीं रुका।

सत्यव्रत—मन में कभी भूल कर भी ऐसा विचार नहीं आया। किसी पर कभी बुरी दृष्टि नहीं डाली। विचार तक भी उत्पन्न नहीं हुआ।

सन्तोष कुमारी—नहीं भगवान् ! यह सब तो ब्रह्मचर्य का स्थूल रूप है, सूक्ष्म रूप नहीं। क्या मैं आपसे यह पूछ सकती हूं कि कभी स्वप्न में आपका वीर्यपात हुआ ?

सत्यव्रत—स्वप्नदोष तो अवश्य होता रहा है, परन्तु कभी-कभी, वह जब भी हुआ स्वप्न में, तुम से ही प्रेमालाप करते हुए, परन्तु गृहस्थ कर्म कभी नहीं हुआ।

सन्तोष कुमारी—(प्रेम पूरित स्वर में) बस, यही कारण है महाराज जी! स्त्री आलिंगन, स्त्री स्पर्शन, स्त्री दर्शन, स्त्री चिन्तन ये सब मैथुन कहलाते हैं। यदि मन में यह गुप्त विचार न हो तो रात को कैसे जागता ? निःसन्देह आप निर्दोष तथा निष्पाप हैं आपने बिना मेरे और कहीं दृष्टिपात नहीं किया और मैं आपकी स्त्री हूं। मुझ पर आपका पूरा अधिकार है, इसमें न कोई पाप है और न कोई दोष, न आचार सम्बन्धी, न सामाजिक और न प्राकृतिक, इसलिए तो आप देखते हैं कि सवा वर्ष बीत गया, मैं और आप पृथक्-पृथक् शयन करते हैं। मैं आप से जान-बूझ कर कोई ऐसी वैसी बात नहीं करती, बल्कि आपके तन की स्थूल सेवा तक भी नहीं करती। हां, आपकी माता जी की सब प्रकार से सेवा सुश्रुषा करती हूं केवल इसीलिए कि किसी प्रकार हमारे ब्रह्मचर्य पालन में कोई दोष न आ जाये।

सत्यव्रत—क्या तुम्हें कभी स्वप्न भी नहीं आया ?

ब्रह्मचर्य का साधन

विवाह के पश्चात् कुछ दिनों तक तो मुझे अपनी माता जी के स्वप्न आते रहे, परन्तु जब-जब वह मिलती थी कोई न कोई उपदेश देती ही दिखाई देती थी। कुछ काल के बाद आपके भी स्वप्न में दर्शन होने लगे। परन्तु जब आप मुझे जरा भी स्पर्श करने लगते तो मैं हाथ जोड़कर यही प्रार्थना करती कि नहीं भगवान् ! हमने प्रतिज्ञा की हुई है। उस पर आप तुरन्त लोप हो जाते और मुझे अपनी प्रतिज्ञा याद आ जाती। परन्तु अब ५-६ मास से अर्थात् जब से कि पाठशाला का कार्य आरम्भ हुआ कभी किसी रात कोई स्वप्न नहीं

आया, क्योंकि दिन और रात सारे ही समय जागृत समय में मेरा शरीर और मन किसी न किसी काम में लगा रहता है इसे इतना अवकाश मिलता ही नहीं कि कुछ और सोचे। जिस करवट सोती हूं जागने पर भी अपने आपको उसी पार्श्व पर पड़े हुए पाती हूं, पता नहीं दूसरी करवट भी बदलती हूँ अथवा नहीं। ऐसी गाढ़ निद्रा आती है कि शरीर और मस्तिष्क के सभी अङ्ग हल्के, चुस्त और नवीन अनुभव होते हैं। स्वप्न तो सदा मन के निकम्मे रहने अथवा शरीर को पूरी तरह विश्रांत न होने से आया करते हैं।

सत्यव्रत—देवी फिर तुम धन्य हो, परन्तु मेरी अवस्था तुम्हारे जैसी कैसे बने ?

सन्तोष कुमारी—भगवान् ! मैं क्या निवेदन करूं, यह सब कुछ तो मन पर ही निर्भर है। जिसका मन शुद्ध है, उसके लिए सारा जगत शुद्ध है। यदि मन में काम अथवा क्रोध नहीं और मनोवृत्ति इन्हें पहचानती तक नहीं, तो इन्द्र की अप्सरा उर्वशी भी यदि १६ श्रृंगार करके आये तो भी उस पर काम अथवा क्रोध का प्रभाव नहीं हो सकता। नाथ ! शरीर से भी पाप तभी होते हैं जब कि मन में पाप हो। आप देखें छोटे बालक के मन में काम नहीं होता तो युवतियों के वक्षस्थल पर क्रीड़ा करते हुए भी उनके शरीर में कोई विकार जाग्रत नहीं होता। प्रत्येक पुरुष इन्हीं नेत्रों से माता को देखता है और इन्हीं से अपनी स्त्री को। इसी हाथ से माता का अङ्ग स्पर्श करता है और इसी हाथ से स्त्री का, परन्तु माता की अवस्था में कोई शरीर विकार पैदा नहीं होता और दूसरी में तुरन्त काम वासना जाग पड़ती है। इसका कारण क्या

है ? यही कि माता के दर्शन अथवा स्पर्शन के समय मन में काम नहीं रहता और स्त्री के दर्शन स्पर्शन में रहता है। जो मन में रहता है। जो मन में होता है, वही बाहर निकलता है। दूसरे शब्दों में क्रिया ही वैसी होती है जैसा संकल्प मन में आता है।

सत्यव्रत—परन्तु मैंने तो मन में किसी भी स्त्री का विचार नहीं किया। हां ! तुम्हारे पास जब आता हूं, तो मन में यह इच्छा अवश्य होती है कि तुम से प्रेम करके अपनी आत्मा को प्रसन्न करूं। परन्तु तुमसे प्रकट करते हुए लज्जा आ जाती है। कई दिन हुए तुमने कहा था वीर वह नहीं जो अपनी इन्द्रियों और मन को वश में न कर सके।

संतोष कुमारी—बस यही इच्छा तो संकल्प बनाती है; परन्तु यह भी भूल है। आत्मा को प्रसन्न करने के लिए तो ऐसा कर्म हो ही नहीं सकता। यह तो सब मन को प्रसन्न करने के लिए है। मन ही चाहता है, आत्मा नहीं चाहती। मन की यह चाह ही एक विषय को उत्तेजना देने अथवा उस उत्तेजित विषय को पूरा करने का एक साधन अङ्ग है। यही पतन है। निस्सन्देह आपका संकल्प मेरे लिए ही रहा, परन्तु चूंकि यह भी विषय के लिए एक वासना ही है। इसलिए मन को रूप देखने का अवसर जहां भी मिल गया, वहां ही वह जाग उठी।

फिर यह समझिए कि अच्छे अथवा बुरे भाव केवल एक ही बार मन में उदय होकर सुख या दुःख नहीं दे जाते, अपितु वह अपना संस्कार भी बीज रूप छोड़ जाते हैं और वह अनुकूल वातावरण पा कर बार-बार अंकुरित और प्रफुल्लित होते रहते हैं। इस

बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए और जब आप काम को पहचान जावें, तो इस बीज को भी दग्ध करने का सदा प्रयत्न करना चाहिए।

सत्यव्रत--इसी का उपाय तो मैं पूछ रहा हूं।

संतोष कुमारी--अपने सद् विचारों, सद् भावनाओं और सात्विक संकल्पों से ही इतनी शक्ति आ जाती है कि उसकी झलक नेत्रों पर मुख पर और वाणी पर आच्छादित हो जाय और आपको देखते ही वा आपकी वाणी सुनते ही वा नेत्र से नेत्र मिलते ही इसी वातावरण से पवित्रता फैल जावे। पवित्र विचार, पवित्र भावनाएं और पवित्र संकल्प उदय हो जावें। कल तो नहीं, क्योंकि मुझे पाठशाला जाना है और कन्याओं तथा देवियों को कुछ कह सुनकर नहीं आई, परन्तु परसों मैं भी आपके साथ कपास चुनवाने चलूंगी और आपको क्रियात्मक रूप से सुरक्षित रहने का साधन दिखाऊंगी। शेष रहा उपाय वह पिता जी से पूछें, हाँ, एक बात मैं आपको प्रत्यक्ष करा देना चाहती हूं। देखिए, इतनी देर से हम दोनों एक ही खाट पर इकट्ठे जानू से जानू मिलाये बैठे हैं क्या आपके मन में कोई वासना जागी ?

सत्यव्रत--नहीं, नितान्त (बिल्कुल) नहीं।

सन्तोष कुमारी--क्यों ?

सत्यव्रत--पता नहीं।

सन्तोष कुमारी--क्योंकि हमारे मन में भाव ही कुछ और था, इसलिए नहीं जागी। यदि केवल स्त्री के देखने अथवा उसके साथ

बैठने मात्र से ही यह वासना जागने वाली होती तब तो मनुष्य संसार में जीवित ही न रह न सकता, क्योंकि शुभाशुभ वासनाएं तो सदैव मन में रहती हैं परन्तु गुप्त अवस्था में। जब भी मन में संकल्प हुआ वे तुरन्त जाग उठीं।

सत्यव्रत—तुम जो सारी रात वाम पार्श्व (बाएं करवट) पर वाम पार्श्व सोना सोती हो, उसमे कोई हानि तो नहीं होती।

सन्तोष कुमारी—वाम पार्श्व पर सोने से श्वास की यातायात साधारण रहती है और दक्षिण पार्श्व पर सोने से अधिक तीव्र हो जाती है, क्योंकि वाम ओर हृदय है और दक्षिण ओर यकृत। रात्रि को यदि दक्षिण ओर सोया जाय तो यकृत अपना कार्य ठीक न कर सकेगा क्योंकि वह चित्त का स्थान है। परन्तु वाम ओर सोने से सूर्य नाड़ी चल पड़ती है और अमाशय की सब गिजा ठीक पच जाती है। यकृत पर बल न पड़ने से वह भी अपना कार्य सुगमता से कर सकता है।

दोनों इसी तरह देर तक वार्तालाप करते रहे। तदनन्तर प्रार्थना करके अपनी-अपनी खाट पर सो गये।

(२)

प्रातःकाल पूर्व प्रकार उठकर और सब नित्य कर्म से निवृत्त होकर सत्यव्रत अपने पिता जी के साथ चला गया।

बचाव का उपाय मार्ग में उसने रात्रि का सारा समाचार सुनाकर अपने बचाव का उपाय पूछा तो ज्ञान प्रकाश जी ने कहा, इसके लिए बड़े अभ्यास की आवश्यकता है, परन्तु स्थूल

अर्थात् पर स्त्री को माता समान समझो। इस भाव को इतना दृढ़ करलो कि जब कोई स्त्री सामने नजर आवे, तुरन्त अपने माता के प्रतिबिम्ब (छाया) की छाप उसके मुख पर लगा दो. यहाँ तक कि तुम्हें कल्पनात्मक रूप में उसके मुख में अपनी माता का चित्र दीखने लगे। बस सबसे बड़ा गुर यही है परन्तु उसके बार-बार अभ्यास करने की आवश्यकता है। आजकल तो तुम्हारे लिए लिए बहुत ही सुगमता है क्योंकि सैंकड़ों स्त्रियाँ काम पर होती हैं। तुम प्रतिदिन अनेकों बार यह अभ्यास कर सकते हो, फिर शनैः शनैः यह स्वभाव ही बन जाएगा और कोई भी स्त्री तुम्हें माता के अतिरिक्त दीख न पड़ेगी। यदि इस समय यह अभ्यास शीघ्र न कर सको तो अपनी माता का एक छोटा सा चित्र हर समय २४ घंटे अपने जेब में रखो। जब कोई स्त्री सामने दीख पड़े माता का चित्र निकालकर उस पर छाप लगा दो। यदि किसी स्त्री के देखे बिना भी कोई विचार उत्पन्न हो तो भी तुरन्त माता का चित्र सामने कर लिया करो और वह कुविचार तुरन्त दब जायगा। इसके अतिरिक्त एक और विधि भी है, जिसमें चित्र भी साथ न रखना पड़े, वह यह कि जब भी एकान्त में बैठो, 'त्रिकुटि' स्थान में अपनी माता का आकार जमाकर उसमें ध्यान टिका दो यहाँ तक कि तद् रूप हो जाओ। फिर तुम्हें जब भी कोई स्त्री नजर आयेगी तब अपनी माता का चित्र अपने आप सामने आ जाया करेगा।

दूसरी बात—"पर द्रव्येषु लोष्टवत्" 'पर धन धूलि समान' का भी अभ्यास करना चाहिए। सोना, चांदी, पैसा एक हाथ में और

दूसरे हाथ में मिट्टी का ढेला लेकर उन दोनों में यह विचार करो कि सोना किस काम आता है ? सामान खरीदने के लिए। सब सामान किस से पैदा हुआ। इसी मिट्टी के ढेले से। तो मिट्टी का ढेला इन दोनों अर्थात् स्वर्ण चाँदी की माता है। इसलिए यह उससे अधिक मूल्यवान है, जिसे कोई भी चोर नहीं उठाता। यह अभ्यास प्रतिदिन करना पड़ता है। परन्तु यह पहले अभ्यास से भी कठिन है क्योंकि इसकी समझ शीघ्र नहीं आती। जब तुम जाओ यही क्रिया करना वह युवा स्त्री तुम्हें घेरने और तुमसे बात करने का पुनः यत्न करेगी, तुम जाते ही उसके बोलने से पहले जाकर यह कहना 'माताजी ! कपास अपने पुत्र की समझकर चुना करो, बेगार अथवा पराया काम न समझा करो''। बस, उसे स्वयं ही समझ आ जाएगी और जब तुम सबके सामने ऐसा कह दोगे तो यह शब्द बाड़ बनकर तुम्हारी रक्षा करेंगे, बल्कि सब को ही, मां जी ! माता जी ! माता जी !! माई जी !!! के शब्द से पुकारते हुए काम लिया करो। यह अनुपम विधि है।

सत्यव्रत—मैंने यह निश्चय किया था कि अब मैं एकान्त में बैठकर पढ़ता ही रहूंगा और कारदार से कहूंगा, कि सब बटाई आप ही कर दे। मेरे पास कोई न आए।

ज्ञानप्रकाश—पुत्र ! यह उपाय यथार्थ नहीं है। न इसका कुछ विश्वास ही है। तुम्हारा कर्त्तव्य है अप्राप्त को प्राप्त करना, प्राप्त की रक्षा करना और बढ़ाना। यह उपाय जो तुमने सोचा, नपुंसकों का है, इससे तुम उत्थान कैसे कर सकोगे ? और विषयों के साथ तुम्हारा संग्राम

वीरवत् जीओ

और उन पर विजय कैसे प्राप्त करोगे ? यदि कोई राजा रण में पीठ दिखाकर भाग जाये। अथवा अपना देश ही शत्रु के अर्पण कर दे और यह सोचे कि जो कुछ बच जायेगा भाग से, तो क्या यह ठीक है ? तुम्हें सूरमाओं और वीरों का सा जीवन जीना चाहिए। परवाह मत करो। जीवन में ऐसी क्रान्तियां आया ही करती हैं। यह अवसर भी तुम्हारे सामने समय पर आ गया, इससे ही तुम संभल-संभल कर पग धरना सीखोगे और कठिनाइयों पर विजय पाने के साधनों की तलाश करोगे, यही जीवित जीवन (जिन्दा-दिली) है।

संसार का कोई भी कार्य हो, सब में कोई न कोई बाधा आती ही है। किसी में काम ने अपना रूप दिखाया। किसी में क्रोध अथवा अहंकार ने, किसी में लोभ और मोह ने, इनसे अतिरिक्त कोई भी काम नहीं। तुम्हारे तो वही रूप सामने आया है जिसकी तुमने प्रतिज्ञा की है। अपनी प्रतिज्ञा निभाने से ही तुम्हें वह साधन हाथ लग जावेंगे। यदि यह अवसर अब तुम्हारे सामने न आया तो तुम किसी से कुछ पूछते। कब कोई तुम्हें यह उपाय बतलाता और कब तुम किसी की परीक्षा कर सकते ? शाबाश ! अब जाओ और दृढ़ संकल्प होकर अपना कार्य आरम्भ करो।

(३)

एक नहीं दो

सत्यव्रत अपने पिता की आज्ञा मान कर चला गया अपनी भूमि पर पहुंचा तो सब स्त्रियां कार्य कर रही थीं। वह देवी दिखाई ही न दी। भोला भाला सरल स्वभाव सत्यव्रत बेचारा सब क्षेत्रों में उसकी खोज करने लगा।

कारदार बड़ा पुराना और चतुर व्यक्ति था, उसने ताड़ लिया कि कि कल यह बातें कर रहा था, उसी को ढूंढ़ रहा है। यह भी व्याकुल है और वह भी व्याकुल। अब दोनों का काम शीघ्र बन जायेगा और मैं भी श्रेय कमा लूंगा, खूब पुरुष्कार मिलेगा। अच्छा उल्लू हाथ लगा है, अब मेरी मौज ही मौज है।

कारदार ने सत्यव्रत को बुलाया "गोदा (स्वामी) आओ। आराम से बैठो, स्त्रियां कार्य कर रही हैं, क्यों ढेलों में दुःख पाते हो ?" जब सत्यव्रत आ गया तो कारदार ने व्यंग से पूछा, "ढूंढ़ने गए थे ?"

सत्यव्रत—क्यों पूछते हो ?

कारदार—जिसकी तुम्हें खोज है, वह आज नहीं आई। वह बेचारी अत्यन्त व्याकुल है। तुम्हारी पूर्ण युवावस्था और मनोहर आकार पर वह लट्टू हो गई है। है भी बड़ी रुपवती। उसे अपने रुप पर गर्व था, परन्तु तुमने उस पर विजय पा ली है। उसने मुझे कल कहा कि 'गोदा को किसी प्रकार मेरा साथी बना दो, नहीं तो मैं रुग्ण होकर मर जाऊंगी।' इधर आप भी उसे ढूंढ़ रहे थे। मैं जान गया। आज तक इतना काल बीता, आप कभी किसी क्षेत्र में नहीं गए या तो कल उसको देखकर गये थे अथवा आज उसकी खोज में गये। गोदा ! कोई बात नहीं यौवन हैं, प्रभु ने दिया है। व्यापारी, धनी, भूमिपति, युवक सब ऐसा ही करते हैं। यह कोई नवीन बात नहीं। हम कारदार लोग स्वामी के बड़े विश्वास पात्र और शुभचिंतक होते हैं और ऐसी गुह्य बातों को गुपचुप पचाया करते हैं। तुम भी विश्वास रखो। तुम्हारे और मेरे मध्य में परमात्मा

जामिन है मैं कभी भी यह बात प्रकट न करूंगा। तुम उस बेचारी को मृत्यु के मुख से बचाओ। यह भी बड़ा पुण्य है। तुमसे कुछ मांगती नहीं केवल तेरे दर्शनों की प्यासी है। उसे हां कर दो तो मैं तुम्हारा सन्देश पहुंचा दूं वह सिर आंखों से सहर्ष आ जायेगी। आज न आयेगी तो कल जरूर ही आ जायेगी। यदि तुम भी उसी के समान अकुला रहे हो तो वह अभी आ जायेगी मैं मंगवा दूंगा।

सत्यव्रत ने यह सुनकर अपने मन में कहा 'यक न शुद दो शुद' अर्थात् एक नहीं दो पातक हैं। 'एक तो कीचड़ और ऊपर से भेड़ ने मूत दिया।' वाली बात बन गई। सहम गया। और सोचने लगा कि अब क्या उत्तर दूं ? वस्तुतः यह तो बड़ा अपयश हो गया। कारदार को उसने कहा उसने कह दिया, "मैंने बड़ी मूर्खता की कि उसे खोजने लगा।"

कारदार—आप निश्चित रहें अकुलाएं भी न। प्रभु भला करेगा। जरा सावधान होकर बोलें, आपको भय किसका है ?

सत्यव्रत—अरे बाबा भय तो मुझे अपने स्वामी का हैं ? यह तो मेरी माता है।

कारदार—कल तो आप भी उसके इच्छुक मालूम होते थे। उसने मुझे सब वृतान्त कह दिया हैं, अब क्यों मुकरते हैं (छिपाते) हो ?

सत्यव्रत—कल वाली बात के लिए ही तो आज मैं उसे खोज रहा हूं, ताकि उसे स्पष्ट कह दूं कि "तू मेरी माता है और कोई विचार मन में न ला, अपने पुत्र का कार्य समझ कर ध्यान से किया कर।"

कारदार—वह तो अभी तुम्हारी आयु की होगी, तुमसे भी शायद कुछ छोटी हो। तुम्हारी माता कैसे बन बन सकती है। तुम उसे माता कहोगे तो सब हंसी उड़ायेंगे।

सत्यव्रत—ये सब छोटी-बड़ी और सर्व स्त्री जाति बिना अपनी स्त्री के, माता ही कही जाती हैं। तुम हम स्वामियों के अच्छे शुभ चिन्तक हो हमें आचार से पतित करके अपना दास बनाते रहे और गढ़े में गिराते रहे। क्या इसीलिए कारदार (सेवक) बने हुए थे ? क्या इसी विश्वास पर पिताजी ने तुमको इतना बड़ा सेवक बनाया है ? कभी मेरे पिताजी से भी तुमने ऐसे कहा है जैसा मुझे कह रहे हो ?

कारदार—हम तो तुम्हारे सेवक हैं। जिससे स्वामी प्रसन्न हो वैसा ही आचरण करते हैं। हमें तो अपने स्वामी की प्रसन्नता देखनी है और तो हमारा कोई अभिप्राय: नहीं होता। तुम्हारे पिता जी तो महाशय साहिब हैं, वह बड़ा पवित्र व्यक्ति है। जब आते थे तो सब कन्यायें और युवती स्त्रियां भी यही कहती थी, "वह पिता जी आ गये, पिताजी आ गये" और वह सबको माई ! पुत्र !! कह कर बुलाते थे और प्राय: सबके नाम भी उनको स्मरण थे। जैसे बच्चों को पुकारा जाता है, वैसे ही उनको भी नाम लेकर पुकारते थे। यह तो हुए अब वृद्ध। तुम अभी युवा हो, यौवन में ही सब विलास किये जाते हैं।

सत्यव्रत—अच्छा ! मैं अब वापिस जाता हूं। तुम उसे कह देना, वह कल अवश्य आवे और सब बटाई तुम स्वयं करके घर पहुंचा देना।

कारदार—क्यों बैठते क्यों नहीं, घर पर कोई कार्य है अथवा उदास हो गये हो ?

सत्यव्रत—हाँ, मैं तुम्हारी बातों से उदास हो गया हूं । मेरा मन तुम्हारे जैसे व्यक्तियों से फिर गया है अब मुझ से बैठा नहीं जाता । मैं जाकर पिताजी से सब समाचार कह दूंगा ।

कारदार बेचारे पर बड़ी विपदा पड़ गई, पिस्सू पड़ गये ।

कारदार की चतुराई

कारदार भी सोचने लगा, 'मैं तो समझा था कि यह सत्यव्रत बड़ा भोला आदमी है इस तरह चतुराई से मैं उसका राज्य संभाल लूंगा । अब तो मेरी जीविका भी गई । बड़ी मेहनत, पुरुषार्थ तथा चाटुता से ऐसे भद्र जन की कारदारी मिली थी । उसके द्वारा मान भी सर्वत्र था । खाने को भोजन भी अच्छा मिल जाता था । अब तो यह बड़ी बुरी बात हुई ।" परन्तु बड़ा चतुर व्यक्ति था, तुरन्त सम्भल गया और झट बात का कांटा बदलकर बोला—

"सत्यव्रत जी ! तुम्हारा पिता मुझे भली प्रकार जानता है । कोई वर्ष दो वर्ष का संगी नहीं, मैं चिरकाल से उनके पास हूं । मुझे ऐसे ही कारदार नहीं बना दिया, कोई गुण तो उसने मुझ में देखा है । कारदार तो स्वामी का मुख्त्यार और प्रतिनिधि होता है । तुम निःशङ्क जाकर कहो । वह समझ जायेगा कि मैंने तुम्हें ऐसे क्यों कहा ? तुम मेरे गोदा भी और अजीज भी । तुम नातजुर्बाकार हो ? मैं अनुभवी हूँ । मैंने कल केवल जरा सी बात तुम्हारी देखी और उस कामिनी को बुलाकर पूछा तो उसने जब कहा तो मैंने उसे

डाट-डपट की कि तू नीच स्त्री है । ऐसे पवित्रात्मा के पुत्र को बद-नाम करना चाहती है । तू देखती नहीं कि सत्यव्रत अपना मुंह सिर छिपाये बैठा रहता है । कभी माला फेरता है, कभी पढ़ता है। सावधान ! तू न आया कर यदि कल तुझे किसी क्षेत्र में देखा तो मार-मारकर गंजा बना दूंगा । गोदा जी ! मैं तो तुम्हारी परीक्षा कर रहा था।"

सत्यव्रत बड़ा सरल स्वभाव था । जैसे वह स्वयं मिथ्या नहीं बोला करता था, वैसे ही असत्य को पहचान भी सकता था। उस की बात को युक्ति संगत समझ कर विश्वास कर गया और बोला, यह बात है तब तो तुम मेरे भी शुभचिन्तक निकले । अच्छा अब मैं बैठता हूं तुम उस माई से कह देना कि वह निःसंकोच आया करे। किसी निर्धन की जीविका मार देना अच्छा नहीं दूसरे उसका सुधार करना चाहिए । शायद प्रभु उसको सदा के लिए सुमति दे देवे ।'

॥ ओ३म् ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

ईश प्राप्ति

तप | | त्याग

ईश प्राप्ति

विश्व सेवा | | पतिप्रेम

सन्तोष कुमारी पाठशाला में कन्याओं को पढ़ा रही है । कई देवियाँ भी आ गई हैं । लज्जावन्ती ने कहा "बहिन जी ! एक दिन आपने कहा था कि स्त्री परमेश्वर को शीघ्र प्राप्त कर सकती है और उसका विवाह करने का उद्देश्य भी परमात्मा की प्राप्ति ही है। यह बात मेरी समझ में नहीं आई थी । मैंने अपनी जेठानियों से इसका वर्णन किया और अपते पति देव से भी कहा । सब कहने लगे कि कभी भली प्रकार समझ के आना । क्या आज आप कृपा करके बता सकती हैं ?

सन्तोष कुमारी—शाबाश ! लज्जावन्ती बहिन ! शाबाश तुमने खूब स्मरण रखा । (अन्य स्त्रियों से) यह बात सब स्त्रियों के समझने की है, सावधान होकर सुनें ।

संसार में अपने आपको अपना समझने, अपना जानने, अपना बनाने में कोई कठिनाई नहीं और न इसमें बुद्धि की आश्वकता है। परन्तु किसी बेगाने (पराये) को अपना समझना, अपना जानना

और अपना बनाना एक बड़ा कठिन कार्य है और इसके लिए विशेष बुद्धि और ज्ञान की आवश्यकता भी है किसी को अपना बनाने में बड़े तप और त्याग की आवश्यकता है। विवाह का अर्थ है वि= विशेष, वाह = विधि अथवा नियम, विवाह संस्कार में वर बधु को एक विशेष वर्ताव और नियम सिखाया जाता है और त्याग तथा सेवा, प्रेम और प्रसन्नता की शिक्षा का एक आदर्श उसके सामने पेश किया जाता है।

कन्या भी इस कठिन कार्य की शिक्षा अपने माता-पिता से ग्रहण करती है, अतः माता-पिता के गृह का त्याग पति तथा पति परिवार की सेवा, पति प्रेम और पारिवारिक प्रसन्नता पैदा करती है।

विश्व कुटुम्ब

अपने माता-पिता, भाई-बन्धु तो स्वाभाविक रूप से अपने थे ही, परन्तु अब वह एक अन्य गृहोत्पन्न को अपना स्वामी बनाती हैं और उस स्वामी के माता-पिता को अपना माता-पिता, उसके भ्राता तथा भगिन को अपना भ्राता और भगिन समझती और उसके सारे परिवार को ही अपना परिवार जानती, समझती और बनाती हैं। उनके लेन देन को अपना बनाती है। अपने माता पिता को वह एक कौड़ी भी नहीं देती। अपितु माता-पिता तथा उनके सम्बन्धियों से जो कुछ उसे मिलता है, उसे भी अपने पति परिवार में विभाजन कर देती है। यह कितने कमाल का त्याग है। कितनी उदारता और वीरता है। वस्तुतः त्यागी ही वीर और सुरमा होते है। इसलिये प्रत्येक बड़ी आपदा और कठिनाई का समाधान स्त्री ही है, क्योंकि पराये को

अपना बना लेना ही सबसे महान और कठिन कार्य है। स्त्री जब अपने पति के दूर तथा समीप के परिवार को अपना जानने लग जाती है तो वह अपना परिवार बड़ा विस्त्रत समझती है। उसके पश्चात् उस अभ्यास को बढ़ाने से वह परमात्मा जो पतियों का पति है, उस के परिवार अर्थात् विश्व परिवार को भी अपना जानने और बनाने के योग्य हो जाती है और सम्पति को जो भी उसे माता-पिता अथवा पति से मिले उसे उसके परिवार में बाँटती है। इस समय प्रकृति उसके माता-पिता और परमात्मा ही उसका पति होता है। अपनी सब सम्पति वह प्रभु के विश्व परिवार में बाँट देती है। निर्धन परतन्त्र, दुःखी, निःसहाय, दीन को तो वह परमात्मा के नजदीकी परिवार में समझने लग जाती है। अन्य सब को दूर का परिवार। यहां तक कि "वसुधैव कुटुम्बकम्" (सारा संसार ही कुटुम्ब है) के अनुसार सब को वह अपना परिवार हो समझने लगती है।

दूसरी बात—कन्या पति मार्ग को प्राप्त करके कैसे परमपति परमेश्वर को प्राप्त कर सकती है। यह सम्बन्ध और सब सम्बन्धियों से विचित्र है। माता-पिता तथा पुत्र, गुरु तथा शिष्य स्त्री पुरुष के नाते बिला-वास्ता (Direct) सीधे हैं। इन सब सम्बन्धों में से

केवल एक सम्बन्ध

एक स्त्री अपनी वास्तविक माता के अतिरिक्त अपनी सास तथा अन्य सब वयोवृद्ध स्त्रियों को "माता" के नाम से पुकारती है और पुरुषों में बड़ों को "पिता" कह कर पुकारती है और पुरुष भी सब देवियों को "माता" के नाम से पुकारता और पूर्वजों तथा पितरों को 'पितर' अथवा 'पिता' के नाम से पुकार सकता है, परन्तु स्त्री

संसार में कभी भी किसी पुरुष को अपने वरे हुए पति के अतिरिक्त "पति" के नाम से नहीं पुकार सकती, न ही पुकारेगी और न पुकारती ही है और न पुरुष ही किसी अन्य देवी को सिवाय अपनी पत्नी के 'पत्नी' नाम से पुकार सकता है। इस प्रकार यह सम्बन्ध दोनों का केवल अद्वितीय सम्बन्ध हो जाता है। सबको अपना जाने सबका मान, सेवा और सत्कार करे। परन्तु प्रेम तथा अर्पण अपने आपको पत्नी पति के ही कर सकती है और पति पत्नी को। परमात्मा की प्राप्ति भी इसी एक ही नाता को मानकर और अपने आप उसके अर्पण करने से ही होती है।

ज्ञान और भक्ति की तुलना

तीसरी बात—कि यह शीघ्र कैसे प्राप्त कर सकती है। ज्ञान पुरुष है और भक्ति स्त्री। किसी यात्रा में अथवा किसी अपरिचित स्थान पर किसी के गृह के अन्दर प्रविष्ट होना हो अथवा किसी वस्तु की खोज करनी हो तो पुरुष यदि जायेगा तो वह द्वार के बाहर ही खड़ा रहेगा और किसी के द्वारा अन्दर पता निकलवायेगा। परन्तु यदि स्त्री जाये तो वह बिना किसी अड़चन के स्वयं भीतर चली जायेंगी। इसी प्रकार ज्ञान भी अन्य का पराधीन है, परन्तु भक्ति में कोई पराधीनता नहीं। जिसको कुछ अर्पण करना है, उस को क्या परतन्त्रता ? ज्ञान में तो लिया जाता है, परन्तु भक्ति में प्रेम अर्पण किया जाता है। इसी लिए स्त्री, पुरुष की अपेक्षा शीघ्र परमात्मा को प्राप्त कर सकती है।

चौथी बात—जब कन्या की मंगनी हो गई अर्थात् उसने वर ले लिया है, पर अभी अपनी माता के गृह में ही है और उन्हीं पर निर्भर रहती है तब तक पति न तो उसका मुख ही देखता है, न उसे दर्शन ही देता है, न उसे अपनी सम्पत्ति का अधिकारी ही बनाता है। परन्तु जब कन्या अपने आपको पति के अर्पण कर देती है, उसकी शरण में चली जाती है और उसकी होकर रहती है, तब से वह अपने पति की सर्व सम्पत्ति की अधिकारणी बन जाती है और पति सब प्रकार से उसका उत्तरदायी बन जाता हैं*। ऐसे ही भगवान और भक्त की बात है। जब तक भक्त भरोसा तो माया पर रखता है परन्तु कहता यह है कि प्रभु ही मेरा स्वामी है, तब तक उसे कुछ नहीं मिलता अथवा यूं समझो की माया अर्थात् प्रकृति मनुष्य का मेका है और परमेश्वर पति का गृह। यथावत स्त्रीं अपने पितृगृह से प्राप्त हुई सब वस्तु समेत अपने आपको पति के अर्पण करके सब वस्तुएं उसके परिवार के लिए समझती है,

भगवान भक्त के वश में

* (इस स्थान पर यदि कोई सज्जन आपत्ति उठाएं कि यह रीति पौराणिक है। स्वयंवर विवाह में दर्शन पहले हो जाता था अतः यह युक्ति ठीक नहीं है। प्रतिवादी युक्ति तब भी यथार्थ है जब कन्या स्वयंवर संकल्प करती है तो भावी पति स्वयं कन्या के पास आता है और फिर जब कन्या स्वीकार कर लेती है तो विवाह में ले जाने को पति फिर भी वधु द्वार पर आता है। वधु भक्ति है तो वर भगवान, भगवान भक्त के वश में तो ठीक है। भक्त दौड़ा नहीं गया, भगवान ही आया।)
—अनुवादक

तदावत जो ईश्वर भक्त माया से प्राप्त सब पदार्थ को प्रभु प्रियतम के परिवार अर्थात् दीन दुःखी, निर्धन, कङ्गाल तथा सुपात्रों में बांट देता है और अपने आपको स्त्री के समान प्रभु अर्पण कर देता हैं, तब ही वह प्रभु का दर्शन पाता है। इसीलिए स्त्री एक आदंश है। इसका त्याग और प्रेम का अभ्यास विस्तृत होने से उस प्रभु प्राप्ति शीघ्र हो जाती है। स्त्री चूंकि अपने पति की जो सेवा करती है, कभी किसी पर प्रकट नहीं करती, अपितु अपना कर्त्तव्य जान कर सदैव बड़ी प्रसन्नता से करती है। जितना भी उसका प्रेम है वह सब गुप्त रहता है और हृदय से होता है जितना भी त्याग करती है उसमें कृत्रिमता नहीं होती, अहंकार शून्य होता है।

माता-पिता भी पुत्र से प्रेम करते हैं, उसकी सेवा भी करते हैं और उनके लिए त्याग भी करते हैं परन्तु यह प्रत्यक्ष सबको विदित हो जाता है, परन्तु परमेश्वर माता पिता के रूप से भी गुप्त हैं.अतः हमारे दिल में भी उनका प्रेम, उनकी भक्ति तथा उनके लिए त्याग सब गुप्त रहना चाहिए।

लज्जावन्ती—प्रेम, त्याग और सेवा तो सब ही स्त्री-पुरुष करते हैं, परन्तु यह नहीं सुना गया कि किसी स्त्री ने परमेश्वर को प्राप्त किया हो ?

सन्तोष—जिस स्त्री ने अपने विवाह का, माता के गृह तथा सम्बन्ध के त्याग का और पति अर्पण होकर उसके सेवा भाव का उद्देश्य ही नहीं जाना और नहीं समझा, वह परम पति परमेश्वर को कैसे प्राप्त कर सकती है ? निःसन्देह अब भी प्रेम है सेवा भी है और त्याग भी है परन्तु सब अपने विषय भोग और स्वार्थ आनन्द

के लिए आजकल का प्रेम तो बहुत विषैला प्रेम है और सेवा और त्याग तो रहा ही नहीं। कोरा प्रेम ही प्रेम है और उसकी नींव भी बालू पर है वर्तमान युग के प्रेम का हाल तो तुम स्वयं देख ही रही हो।

(२)

लज्जावन्ती— बहिन जी ! मैंने तो अपने लिए भी आपसे कोई विशेष परामर्श भी लेना है, इसलिए मुझे एकान्त का समय चाहिये और आज ही चाहिए।

सन्तोष कुमारी पढ़ा तो चुकी ही थी, अतः सब कन्याओं, देवियों से कह दिया, बहिनों ! आप अब जाएँ।

चुनाँचि सब चली गईं तो एकान्त हो जाने पर लज्जावन्ती ने कहा।

बहिन जी ! अब एक आपत्ति और मेरे लिए उपस्थित हो गई है, जिसका मुझे न तो कोई प्रतिकार ही दृष्टिगोचर होता है और न किसी से कुछ कह-सुन कर परामर्श ही ले सकती हूं, आपके बिना और कहूं भी किससे ? आप मेरी बहिन भी हैं, और गुरु भी और फिर आपको जाति सुधार का दर्द भी है। अतः आशा है कि आप बात को गुप्त भी रख सकेंगी।

मेरे पतिदेव अब तक तो मुझ से प्यार करते ही थे और मैं भी उनकी सेवा करती रहती हूं। परन्तु अब कई दिनों अन्न का प्रभाव से उनके भावों में कुछ परिवर्तन सा आ गया है। वह कहते हैं कि रात्रि को तो तुम अपना यह वेष

बदल दिया करो। कभी-कभी वह इत्र फुलेलादि भी ले आते हैं। रात के वस्त्र भी ऐसे दीप्तिमान और सूक्ष्म ले आए कि उनके धारण कर लेने पर भी सारा शरीर नग्न ही नजर आता है और कहा कि इनको पहन लो। और भी कई प्रकार के भोग विलास के सामान ले आये। उनमें एक जोड़ी स्वर्ण कंगन की थी। नितान्त (बिल्कुल) नवीन ढङ्ग की थी। उसमें बड़े चमकदार हीरे और मोती जड़े हैं। कानों और माथे के भी कई प्रकार के आभूषण हैं। अब उनसे मेरी जिद और संग्राम चल रहा है। मैं कहती हूं कि मैं ऐसा नहीं कर सकती। मैं तो पाठशाला में कन्याओं के साथ पढ़ती हूं। बहिन जी को इस इत्र फुलेल की सुगन्ध आ जायेगी तो वह क्रुध होकर मुझे निकाल देंगी और मेरा मन भी इन वस्तुओं से उठ चुका हैं, उन्हें चाहता ही नहीं। मुझे अब कंजरियों और वेश्याओं के वेष से घृणा हो गई है, परन्तु आप कहती हो कि स्त्री पति के पास बिक चुकी है। स्त्री अपने पति को परमेश्वर, अपना इष्टदेव समझे, सर्वस्व उसके अर्पण कर दे। उसका प्रेम सर्वस्व उसी के लिये है और यही प्रतिज्ञा भी हो चुकी है।

सन्तोष कुमारी—बहिन! अर्पण और प्रेम तो शास्त्र की विधि से धर्म और न्याय अनुकूल है। जिस समय विवाह में सप्तपति हुई थी, उस समय तुम्हारे पति ने पलोपली (गठजोड़ा) बांधते हुए एक शपथ ली थी और परमेश्वर को साक्षी करके और सभा के सामने यह मन्त्र पढ़ा था "बध्नामि सत्यग्रन्थिना मनश्च हृदयं च ते" तेरे हृदय और मन को सत्य की ग्रन्थि से बांधता हूं। इसलिए इसमें सत्य की ग्रन्थि है। महात्मा गाँधी ने लिखा है, "जहां सत्य है वहां

ही ज्ञान है और ज्ञान ही शुद्ध है। जहाँ सत्य नहीं वहां ज्ञान भी नहीं हो सकता।" इसलिए परमेश्वर के साथ चित्त (ज्ञान) शब्द जोड़ा गया। ज्ञान है जहां वहां सत्य हैं और वहां ही आनन्द हो सकता है। शोक वहाँ आ नहीं सकता। अतः इस सत्य की आराधना के लिये ही हमारा अस्तित्व है और इसी के लिये हमारी प्रत्येक प्रवृत्ति भी है। स्त्री का आत्मसमर्पण भी सत्य की प्राप्ति के लिये ही है और पति उस सत्य का ही एक साकार रूप है। अच्छा! यह समाधान तो हो ही जायेगा।

(३)

अब तुम यह बताओ कि तुम्हारे पतिदेव काम क्या करते हैं?

लज्जावन्ती—आपको अभी तक यह भी ज्ञान नहीं? हम सब तो चिरकाल से आपके चरणों में आती हैं।

सन्तोष कुमारी—मुझे किसी का क्या पता। ऐसे पते पूछकर मैं किसी के बन्धन में क्यों आऊं? यही सब तो बन्धन का कारण है। मुझे तो अपने काम से काम है, नाम से नहीं। मुझे परमेश्वर ने इसी लिए जन्म दिया है कि प्रभु के इस विशाल नाट्यगृह में उसकी ही आज्ञानुसार मैं अपना पार्ट पूरा कर जाऊं और बस। अब आवश्यकता पड़ गई तो पूछ रही हूं।

लज्जावन्ती—मेरे श्वसुर बड़े धनाढ्‌ व्यापारी और भूमिपति हैं। मेरे सब देवर, जेठ उन्हीं के साथ काम करते हैं। मेरे पतिदेव बी. ए. पास हैं और 'सीनियर सब जज' साहिब के रीडर हैं। उनकी दैनिक आय बहुत बड़ी है, उसे भी वह दुकान पर अपने पिता जी

तथा भ्राताओं के अर्पण कर दिया करते हैं। अपनी भावजों और माता जी को भी कभी-कभी कुछ दे दिया करते हैं, बच्चों को भी खूब खिलाते-पिलाते हैं। मुझे तो प्रतिदिन रात के समय ५) दे दिया करते हैं, इसलिए सभी उनसे प्रसन्न रहते हैं, और उनकी ही चलती है। इसी कारण मुझसे भी सब प्रेम करते हैं; मेरी मानते और सहते हैं। वह बड़े सर्वप्रिय और उदार हैं। निर्धन, कंगाल तथा साधु फकीरों को भी खिलाते-पिलाते रहते हैं। सभी उनसे प्रसन्न हैं।

सन्तोष कुमारी—तो उनके साहिब भी घूंस लेते होंगे तभी तो वह उनको कुछ नहीं कहते अथवा यह उनसे भय नहीं खाते।

लज्जावन्ती—यह साहब घूंस तो नहीं लेते, परन्तु मेरे पतिदेव बहाने से कभी-कभी उनके घर घृत का टीन, कभी आटे की बोरी, कभी चनों की बोरी और प्रायः प्रतिदिन फलों की एक टोकरी, कभी मिठाई, कभी वस्त्रादि, यहाँ तक कि घर की सब उपयोगी वस्तुएं पहुंचाते रहते हैं, वह भी इनका ख्याल रखते और मान करते हैं मेरे पतिदेव कभी किसी को तंग करके कुछ नहीं लेते। बड़ा विभाग (Department) है। बड़े जटिल अभियोग होते हैं। अर्जी, परचे, जमानतें, कई प्रकार के दीवानी, फौजदारी तथा अभ्यर्थनाओं (अपीलों) के कार्य होते रहते हैं अतः प्रतिदिन ही ४०-५० और कभी तो १०० रु० भी ले आते हैं।

सन्तोष कुमारी—तो साहब को भी यह ज्ञान होगा कि उसके घर इस प्रकार सब वस्तुएं पहुंचती हैं। यदि वह ईमानदार सद्व्यवहारी है तो कहता क्यों कुछ नहीं ?

लज्जावन्ती— एक रात जब मैंने यह पूछा तो उन्होंने यही सुनाया था कि "एक दिन साहब ने मुझे घर पर बुलवाकर कहा था कि 'भाई! तुम इतना जो ये सामान ला देते हो, मेरा वेतन तो ५००) रुपये है और तुम्हारा ६०-७० रुपये होगा। ये सब कहां से लाते हो?' तो मैंने उत्तर दिया, 'श्रीमान्! ईश्वर ने बहुत कुछ दिया है। कनक, छोले, अनाज तो सब हमारी अपनी भूमि के होते हैं और फल-फूल हमारी बगीची के। पवित्र घी हमारी दुकान पर बहुत से व्यापारियों का आता है, वस्त्रादि का कोई थान कभी आप के बच्चों के लिए बाजार से ला दिया, तो कौन सा बड़ा धन लग जाता है। फिर मैं वेतन पर थोड़ा बन्धा हुआ हूं' बड़ा कुटुम्ब है। सब भाई कमाने वाले हैं। सहस्रों रुपये की आय है। आढ़त की, दलाली की, ब्याज की, जमींदारी की, किराया आदि की। मैं आप की क्या सेवा कर सकता हूं, हां बच्चों के लिए थोड़ा बहुत हो जाता है"। साहिब तो यह सुनकर हंस पड़े और कहा बाबू! प्रथम तो ऐसा होना नहीं चाहिए परन्तु यदि तुम विवश ही करते हो तो तुम स्वयं आकर न दे जाया करो। फल, मिठाई अथवा और ऐसी वस्तुएं, तुम्हारे घर की देवियां यदि हमारी घरवाली को रीति प्रीति से दे जावें तो कुछ बात नहीं। कनक, छोले आदि बड़ी वस्तुएं मेरा सेवक जब जब आवश्यकता होगी, स्वयं तुम्हारी दुकान से ले आयेगा। हमें लोगों के व्यर्थ की बदनामी से भी तो डरना चाहिए।'

सन्तोष कुमारी— बस बहिन जी! मैंने चोर पकड़ लिया। तुम जाकर पहले पूछना, यदि बात यथार्थ निकली तो मैं तुमको एक

सुगम मार्ग बनाऊंगी, वरन खैर! फिर जो प्रभु इच्छा!

लज्जावन्ती—कौन सा चोर! कैसा चोर?

सन्तोष कुमारी—मुझे अन्तरात्मा से ऐसा खटक रहा है कि तुम्हारे पति ने किसी अभियोग में किसी वैश्या का माल लिया है अथवा किसी और स्थान से लूट का सस्ता माल हाथ लगा है। इस लिए ही तुम्हारे यह हाव भाव और शृङ्गार देखने को उनका मन चाहता है, वरन् अब तक तो उन्होंने कुछ नहीं कहा, अपितु उलटा तुम्हारे सहमत बने रहे। यह सब उसी अन्न का प्रभाव है। तुम अवश्य आज रात को यह बात उनसे पूछना फिर मैं तुम्हें इसका हल (समाधान) बताऊंगी कि तुम्हें क्या करना चाहिए।

❀ ❀ ❀

॥ ओ३म् ॥

त्रयोविंशोऽध्याय

सुधार-संवार-बेड़ापार

कारदार आज दिन भर सत्यव्रत के संग रहकर उसे इधर-उधर घुमाता रहा, कार्य दिखाता रहा। केवल इसलिए कि उसका मन बहला रहे और वह मेरी पहली बात को नितान्त अशुद्ध और परीक्षा समझ ले, चुनाचे फिर बटाई कराने के बाद भी वह सत्यव्रत के साथ नगर में गया ताकि वह पिता जी से उसकी कोई बात न कर सके। महाशय ज्ञान प्रकाश जी ने कारदार को देखकर उसे बिठाय।

उसके सामने तो सत्यव्रत ने कोई बात न करनी थी न उसके पिताजी ने पूछनी ही थी। कारदार को भोजन भी वहां ही खिलाया। अन्ततः कई घड़ियों के पश्चात् वह निश्चिन्त होकर चला गया कि अब यह बात आई गई हो गई।

एकान्त होने पर ज्ञानप्रकाश जी ने पूछा, 'बताओ, आज कैसा रहा ?''। तो सत्यव्रत ने आद्योपांत सारा वृत्तान्त ज्यों का त्यों सुना दिया। ज्ञानप्रकाश जी के मन में यह बात तुरन्त खटक गई कि कारदार ने अपनी चतुराई से सत्यव्रत को बहका दिया, इसलिए वह साथ भी आया होगा कि कहीं यह मेरी कुछ निन्दा न कर दे। वास्तव में उसने परीक्षा रूप यह बातें नहीं कहीं अपितु कुनीति से अपना स्वार्थ सिद्ध करने के अभिप्राय से ही कहीं हैं। वरन् उसकी परीक्षा से क्या ? वह मेरा लगता ही क्या है ? और कौन सी बड़ी स्थिति है जो मेरी भलाई के लिए ऐसी बातें करेगा। अच्छा कल पता लग जायेगा।

सत्यव्रत—क्यों पिता जी ! क्या कारदार हमारा इतना हितेच्छुक है कि वह परीक्षा करता होगा ?

ज्ञानप्रकाश—पुत्र ! मनुष्य के मन का क्या कहा जावे ? समुद्र की तह तो विद्वानों ने पा ली है, परन्तु मनुष्य के इस अल्प मन की तह किसी ने भी नहीं पाई। और तो और मनुष्य स्वयं भी अपने मन की गति को नहीं समझ सकता, यह तो ईश्वर ही जानने वाले हैं। प्रत्यक्ष रूप से तो दोनों ही बातें हो सकती हैं, परन्तु यथार्थ बात जो होगी वह भी देर तक छिपी न रहेगी। एक न एक दिन इसका पता लग जावेगा, इससे पूर्व उसे कुछ नहीं कहना।

(२)

रात्रि बीत गई। प्रातः नित्य कर्म से निवृत्त होकर सन्तोष कुमारी ने कहा, पिता जी! आज मैं इनके साथ आपके क्षेत्रों में जाकर वहाँ का कार्य देखना चाहती हूं। ज्ञानप्रकाश जी के उत्तर देने से पूर्व सत्यव्रत की माता बोल उठी, "पुत्री! कभी हिन्दू देवियां भी यों क्षेत्रों में गई हैं।

ज्ञानप्रकाश जी तो सत्यव्रत से सब वृत्तान्त सुन चुके थे इस लिए जानते थे कि सन्तोष कुमारी क्यों जाना चाहती है। वह बोले--जाने दो, क्या हर्ज है। पुत्री है, इसको भी अपने प्रभुत्व का माल का और सम्पति का कुछ पता लगे। चतुर स्त्रियां केवल गृह की ही सिंहनी नहीं होती, वह बाहर भी सिंहनी रहती हैं। अपना माल तथा सम्पति जहां भी हो, वह वहाँ उसकी सम्भाल करती हैं। वीर रानियां राज्य चलाती रही हैं। खड्ग हाथ से लेकर शत्रु की सेना में घुस गई तो शत्रु के छक्के छुड़ा दिये और तुम उसे भयभीत कर रही हो।

चुनांचे दोनों चले गये। क्षेत्र में कपास चुनने वाली स्त्रियों ने जब सत्यव्रत को एक स्त्री के साथ आते हुए देखा तो उसी देवी ने कारदार से पूछा—आज यह सत्यव्रत किसके साथ आ रहा है।

कारदार—बहिन तो इसकी हैं नहीं और यह माता भी इसकी नहीं हो सकती, क्योंकि वह बूढ़ी होगी। यह तो कोई युवा स्त्री है। शायद कोई यात्री हो और मार्ग पूछा हो तो उसने कहा हो मेरे साथ चली आओ' आगे मार्ग समझा देंगे। उस देवी ने विनोद

ने कहा—नहीं, वह अपनी स्त्री को ही आज अपने क्षेत्र दिखाने लाया होगा।

कारदार ने आँख दिखाकर तर्जना करते हुए कहा—"अरि अधम! कुछ होश से बोला कर।"

इतने में दोनों भी क्षेत्र में पहुंच गये। कारदार ने पहले ही उसी स्त्री को सब वृत्तान्त जाकर सुना दिया था, परन्तु वह समझती थी कि सत्यव्रत कल मेरी खोज में फिरता रहा, इसलिए कारदार से लज्जित हो गया। आज मैं उसे उलाहना देकर सीधा कर लूंगी। सब स्त्रियां उधर ही देखती रह गयीं, परन्तु उस स्त्री से न रहा गया और वह मुस्कराती हुई बोल पड़ी "गोदा, यह माई कहां की है, इसे कहां ले जा रहे हो।

सन्तोष कुमारी उसके रूप तथा स्वर और उच्चारण से ताड़ गयी कि हो न हो, यही वह स्त्री होगी, इसलिये हंसती हुई बोली–बहिन मैं भी कपास चुनने आई हूं। यह कहते-कहते वह भी उसके पास पहुंच गई और उससे पूछने लगी—बहिन! कैसे चुनी जाती है, मुझे भी सिखा दो। तेरा क्या नाम है?

'मेरा नाम कमनी है,' उस स्त्री ने उत्तर दिया। फिर वह कुछ सोचकर वैसे ही विनोद भरे स्वर में बोली—परन्तु हिन्दू देवियां तो कभी चुनती नहीं देखी। वे तो चाहे निर्धन भी क्यों न हों घर से बाहर नहीं निकलती। तुझे सत्यव्रत ने कैसे फंसा लिया।

सन्तोष कुमारी—बहिन! मैं आज यह काम देखने आयी हूं और चुनूंगीं भी। इस क्षेत्र के स्वामी की बहू हूं।

अब तो कमनी सब कुछ समझ गई और जोर से हंसती हुई कारदार से बोली—कारदार! तू क्रुध होता था यह बहिन सत्यव्रत गोदा की स्त्री निकली कि न ? मैंने ठीक ही समझा।

अब तो बूढ़ी स्त्रियाँ भी आकर एकत्र हो गयीं और प्रेम से पूछने लगीं—पुत्री तू सत्यव्रत की सुहागिन है ?

सन्तोष कुमारी—हां माँ जी ! मैं इन्हीं की सेविका हूं। यह सुनकर सब वृद्ध स्त्रियां मिल कर उसे प्यार करने और आशीर्वाद देने लग गई सन्तोष कुमारी ने कमनी से पूछा—बहिन कमनी! तेरा नाम कमनी क्यों रखा गया ?

कमनी—मुझ से पूर्व भी मेरी माता के कन्यायें ही जन्मती रही थीं। जब मैं भी कन्या उत्पन्न हुई तो मेरे पिता के मुख से निकला एक और कमियानी उत्पन्न हो गई। हमारी जात कमीं (नींच) है। कहा तो उसने था कि एक और कमियानी उत्पन्न हो गई पर सब कमनी-कमनी ही कहने लग पड़े।

सन्तोष कुमारी—अच्छा मुझे भी कपास चुननी सिखा दे।

कमनी ने फिर विनोद से कहा तू अकेली चुनती हुई अच्छी नहीं लगेगी, हमारे गोदा से भी चुनवा। वह तो कुछ-कुछ सीख गया है।

सन्तोष कुमारी ने सोचा और तो सब सैकड़ों स्त्रियां चुप हैं। परन्तु यह वड़ी बड़बोली है। उसने कहा— 'अच्छा-अच्छा वह भी चुनेंगे। अपना क्षेत्र, दोष ही क्या है ?

चुनांचे सन्तोष कुमारी कपास चुनने की विधि देखकर दूर के

एक क्षेत्र में चली गई और सत्यव्रत भी वहां ही पहुँच गया। सन्तोष कुमारी ने कहा—देखिये यह उपाय सबसे अच्छा है। निकम्मा बैठने के स्थान पर अथवा पुस्तक पढ़ने के स्थान पर जब आये, किसी दूर के क्षेत्र में जाकर कपास चुनने में लग गये और जप भी साथ-साथ करते रहे। न यह मन बेकार रहेगा, न खेल रचायेगा, न आंखे निकम्मी होंगी, न किसी को देखेंगी। नेत्र, कर्ण हस्त तथा चित्त की सब वृत्तियां कपास चुनने में संलग्न होंगी। चाहे थोड़ा ही चुना जाए, परन्तु हर बात का बचाव तो रहेगा। लगान की उपज तो आपके पिता जी की है। अपनी कमाई तो आप वही समझें जो अपने हाथ से करेंगे। हलवाही भी एक क्षेत्र में स्वयं कर ली। बीज भी अपना ही डाला। चाहे दो-चार कृषि-कार भी रख लेवें। परन्तु कमाई अपने हाथ की ही पवित्र होती होती है। लगान की कमाई कोई कमाई नहीं। वह तो पैनशन है, पूर्व कर्मों का फल। इस जन्म की कमाई नहीं। वह भी थोड़ी बहुत अपने हाथ से जरूर करनी चाहिए। परन्तु इस भाव से नहीं कि इससे हमारे बिना और कोई लाभ न उठावे। अपितु इस भाव से कि हमारा शरीर स्वयं मेहनत करे, पुरुषार्थ करे। व्यायाम का व्यायाम हो जाये और कमाई कीं कमाई। देखिये ! महात्मा गांधी जी भी तो स्वयं चर्खा कातते ही थे। महाराज विक्रमादित्य इतने बड़े महाराज थे, परन्तु भोजन उनकी महारानी स्वयं ही पकाती थी। औरंगजेब सम्राट के सम्बन्ध में कहते हैं कि वह बड़ा अत्याचारी था, परन्तु वह भी कुरानशरीफ अपने हाथ से लिख कर और बेचकर अपनी जीविका कमाता था। अपने राज्य कोष से नहीं

खाता था। लोग चाहे कुछ कहते रहें, परन्तु आप महान् व्यक्ति हैं, बी० ए० भी हैं। आपको देखकर अन्य भी आपका अनुकरण करने लग जायेंगे।

दोनों दूर के क्षेत्र में देर तक कपास चुनते रहे। कमनी से अब भी न रहा गया। काम का भूत और रूप का गर्व उसके सिर पर आरोह (सवार) था, विशेष कर सन्तोष कुमारी के रूप से तुलना करके तो वह और भी अभिमान करने लगी। इसलिए उच्च स्वर से बोली—बहिन जी! इतनी दूर जा खड़ी हुई हो, भाग्यवश आई हो, कुछ बातचीत भी न की। अच्छा बहिन मैं वहीं आती हूं और तुम्हारे साथ ही मिलकर चुनवाती हूं।

सत्यव्रत ने पूछा—क्या मैं इसे रोकूं?

सन्तोष कुमारी—नहीं, आने दीजिये! आज इसका मन निर्लज्जता पर उतरा हुआ है। मैं भी इसकी सब बातें सुन लूं।

कमनी बिना बुलाये और उत्तर पाये ही शीघ्र-शीघ्र तीव्रगति से उधर जाने लगी। एक क्षेत्र की सीमा पर एक छोटा सा बेरी का पौधा था, उससे एक ओर होकर मुड़ने लगी तो पांव फिसल गया और मौच आ गई और उसी बेरी पर जा गिरी। कण्टकों से वस्त्र उलझ कर छिल गये और अनायास मुख से हाय की ध्वनि निकली, यह हाय और गिरने की आवाज सुनकर सन्तोष कुमारी और सत्यव्रत उधर दौड़ पड़े। सन्तोष कुमारी ने जाकर उसे उठाया। वस्त्रों में कण्टक उलझे हुए थे, वेग करके उठती तो सूक्ष्म वस्त्र जो आज वह विशेष उमङ्ग से धारण कर आई थी, सब फट जाते। सन्तोष कुमारी ने उसे बड़े प्रेम और सावधानी से

से धैर्य देकर उठाया । शनैः-शनैः उसके वस्त्र कण्टकों से छुड़वाये। उसके पांव को जिसमें मोच आ गई थी। दबा कर ठीक किया और बड़ी मेहनत से उसकी सेवा की। फिर प्रेम पूरित स्वर में कहा, बहिन कमनी ! यूं आपे से बाहर न होना चाहिए, यह उसी का परिणाम तुझे मिला है ।

कमनी—दण्ड तो मुझे अपने किये का मिल गया, परन्तु तू बड़ी उत्तम जाति की देवी है और मैं अधम जाति की हूं। वस्तुतः इसलिये विनोद करती रही थी कि देखूं तुझे अथवा सत्यव्रत गोदा को क्रोध आता है अथवा नहीं। परन्तु अन्ततः मैं परास्त हो गई। तुम दोनों को क्रोध नहीं आया। स्वामी होकर, धनवान होकर भूमिपति होकर भी तुम मुझ कमनी की सब बातें सहन कर गये, तुम धन्य हो !

सन्तोष कुमारी—देखो बहिन ! हम तुम सब एक परमेश्वर के जाये हैं। वही परमेश्वर सबका माता-पिता है। राजा और न्यायधीश चाहे अल्पायु भी हों और मुल्ला, फकीर, औलिया, साधु महात्मा, ब्राह्मण, भूमिपति और स्वामी चाहे छोटा भी हो फिर भी ये सब अपनी रियाया, प्रजा, मुरीदों, यजमानों के माता-पिता ही होते हैं। ये सब उनके पुत्र और पुत्रियों के समान ही हैं। सब प्रजा सेवक सेविकायें आदि उनको अपना माता-पिता समझते हैं। पिता कभी अपनी पुत्री से विवाह नहीं करता चाहे वह कैसी ही रूपवती क्यों न हो ? जिस बालक का जिस बालिका के साथ परमेश्वर ने जोड़ मेल कर दिया है वह उसके स्वत्व की हो जाती है। अपने स्वत्व (हक) का त्याग कर अन्य को अपना बनाने का

यत्न करना ही नाहक है (दूसरे का स्वत्व मारना है) और इसके समान दूसरा कोई पाप नहीं। प्रभु परमेश्वर अथवा स्वामी की, की हुई बात को लात लगाकर अपनी मनमानी करना खुदा या परमेश्वर को कभी नहीं भाता। इससे वह रुष्ट हो जाता है। अब तुम अपने मालिक को साक्षी समझ कर कहो कि तुमने परसों कारदार से क्या कहा था ?

कमनी सन्तोष कुमारी के सौजन्य (शरीफाना) व्यवहार, हौसला, सेवा तथा उसके प्रसन्नता पूर्वक मधुर भाषण से और पाप का यह दण्ड प्राप्त करने से बड़ी प्रभावित हुई यद्यपि उसके पांव में पीड़ा सख्त हो रही थी और भली प्रकार चल भी न सकती थी, हालांकि सन्तोष कुमारी ने भी कोई विशेष भावुक भाषण नहीं किया था, परन्तु उसके पवित्र भावों ने कमनी के मन के सब मैल को दग्ध कर दिया। वह अपनी करतूत पर बड़ी लज्जित हुई और सिर झुका कर मूर्तिवत् मौन रही।

सत्यव्रत ने कहा—कमनी ! तू मेरी माता है, केवल तू ही नहीं अपितु ये सब देवियां मेरी मातायें हैं, तू अब कुछ भय न कर, लज्जा न कर, मैंने कल और परसों का सारा वृत्तान्त इन्हें सुना दिया है और अपने पिता से जाकर कह दिया है। तू यह न समझ कि मेरे मन में कोई पाप था। हम लोग तो शास्त्र पढ़ते हैं और ऐसे काम से अधिक और कोई पाप नहीं समझते। चोरी ही नहीं हत्या तक भी क्षमा की जा सकती है, क्योंकि चोरी और लूट का माल लौटा दिया जा सकता है। कोई किसी को मारे अथवा अपशब्द कहे, उससे कर जोड़ क्षमा की याचना की जा सकती है। हत्या

का भी प्रतिकार हो सकता है। परन्तु इस निन्दनीय कर्म का तो कोई बदला हो नहीं है। हमारे शास्त्र तो ऐसे स्त्री पुरुषों को जीवित जला देने की आज्ञा देते हैं।

(३)

भाव का परिवर्तन

कमनी अब चल सकने के योग्य नहीं। पांव में पीड़ा अधिक है और सूज रहा है। बड़ी हृष्ट-पुष्ट और युवा स्त्री थी। अब कोई भी अन्य स्त्री बूढ़ी बलहीन अथवा छोटी और इतना बल न रखने के कारण उसे अपनी पीठ पर अथवा गोदी में तो उठा नहीं सकती थी और कारदार भी इतना बलवान न था कि उसे उठाकर घर छोड़ आता। कोई आबादी भी उस क्षेत्र के आस-पास नहीं थी जहां से कोई खाट अथवा पीढ़ी ले आते। इसलिये कमनी ने कहा, गोदा ही मुझे उठा सकते हैं, यदि वह मुझ पर दया करे तो··।

सत्यव्रत तो विचित्र दुविधा में पड़ गया। उसने सन्तोष को पृथक् ले जाकर कहा—मैं पर स्त्री को कैसे हाथ लगाऊं। सीता ने तो हनुमान जी को अपना भक्त और हितैषी जानते हुए भी उसकी पीठ पर आरोहित होकर रावण के कारावास से निकल जाना अधर्म समझा था।

सन्तोष कुमारी—(दृढ़ता भरे स्वर में) भगवान् आप इसे पर स्त्री क्यों समझते हैं? आप तो इसे माता कह चुके हैं। ऐसे दुःख के समय में माता को पीठ पर उठाने में क्या दोष है? श्रवणकुमार तो अपने चक्षुहीन माता-पिता को कन्धे पर उठाये फिरा था। इस प्रकार उठाने से तो माता और पुत्र का सच्चा सम्बन्ध बन जाता

है। मनोसंकल्प से ही यह सृष्टि सब दृष्टि भेद कर रही है। जब मनोसंकल्प ही माता का हो गया तब दृष्टि तो स्वयं माता-पुत्र की बन जाती है।

सत्यव्रत ने अपनी पत्नी की यह युक्ति स्वीकार कर ली। दो स्त्रियों ने मिलकर कमनी को उठाया और उसके कन्धे पर बिठा दिया। अब सत्यव्रत उसे ले चला और उसे कहा—कमनी माता अब तो तेरा भाव परिवर्तित हुआ या नहीं ?

कमनी थी तो पीड़ा से व्याकुल परन्तु उसके उपकार का भार भी कुछ कम न था और उधर यौवन का भी प्राबल्य था।

कहने लगी, प्रभु ने मुझे इतना रूप दिया है, परन्तु मुझे पति भद्दा कुरूप दिया और तुमको देखकर यह चाहने लगी कि तुम से एक बार मुझे तुम जैसी सन्तान मिल जावे। इसके बिना और कुछ भावना मन में नहीं रखती थी।

सत्यव्रत—मगर अब तो मैं वस्तुतः तेरा पुत्र बन गया। मेरे जैसे की तो अब तुझे जरुरत ही न रही और क्या पता परमेश्वर मुझ से मेरे जैसी सन्तान देता भी या नहीं। यह तो सब ऐसे स्त्रियों के बहाने और चतुराईयां ही है। हमारी कथाओं में भी ऐसी बातें आती हैं। परन्तु यह सब त्रिया चरित्र है। पवित्र देवी तो अपने पति के बिना अपना अङ्ग भी किसी दूसरे को स्पर्श करने नहीं देती। वैसे तो तू भी पापिन बनती और मैं भी पापी बनता। यहां भी जूते खाते और परमेश्वर के न्यायालय में तो नर्क बना बनाया था ही। धन्यवाद कर कि तेरे साथ यह घटना हो गई

और तू सुधर गई । प्रभु ने तुझे करनी का प्रत्यक्ष फल दे दिया । नहीं तो तू कितनी दुराचारिणी बन जाती । माता-पिता को कलङ्कित करती, पति को अपमाणित करती और अपनी जाति और कुल को कलुषित करती । कोई स्त्री तुझे अपने समीप न बिठाती, सब ही तुझसे घृणा करतीं । अब प्रभु को साक्षी समझ कर सच्चे हृदय से कहो ।

कमनी—मैं प्रभु को साक्षी जान कर और शपथ लेकर कहती हूं कि मैं कभी अपने पति के अतिरिक्त किसी और को रूपवान न समझूंगी और न अपना ईमान और दिल किसी को दूंगी । मेरा पति ही मेरे दिल और इमान का स्वामी है और इस दुःख और आपत्ति का आश्रय सत्यव्रत मेरा पुत्र मुझे अपने सिर पर उठा कर ईमान और अमान (आश्रय) दे रहा है ।

सत्यव्रत थोड़ी ही दूर चलकर थकावट अनुभव करने लगा । पीछे-पीछे कारदार और अन्य स्त्रियां भी चली आ रहीं थीं । उसी मार्ग से एक पथिक नई पीढ़ी नगर से बनवा कर कन्धे पर रखे घर जा रहा था । सत्यव्रत ने उसे कहा—इस माता को नीचे उतरवा दो । शेष स्त्रियां भी पीछे से आ गयीं और उस पथिक से कहा कि यह पीढ़ी हमें दे दो । हम इसे फिर तेरे घर पहुंचा देंगे क्योंकि मैं थक गया हूं । उस भद्र पुरुष ने पीढ़ी दे दी और उस पर कमनी को बिठाकर दो व्यक्ति अर्थात् कारदार और दूसरा वह पीढ़ी वाला इकट्ठे उठा कर उसे उसके घर पहुंचा आये ।

यह घटना देख कर सब स्त्रियों और कन्याओं के मनों पर सत्यव्रत और सन्तोष कुमारी के सौजन्य (शराफत) और स्वभाव का सिक्का बैठ गया । देवियां कहने लगीं अब तक तो ज्ञानप्रकाश ही

सेवा करने में विख्यात था, परन्तु उसका पुत्र और बहू उससे भी बढ़ गये। ग्रामों में यह चर्चा बनकर फैल गई और ग्रामों के जाट मुसलमानों में भी सत्यव्रत और सन्तोष कुमारी की कीर्ति आदर से सुनी जाने लगी।

गृह पर ज्ञानप्रकाश तथा उसकी स्त्री ने भी जब यह समाचार सुना तो बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने हार्दिक आशीर्वाद देकर प्रभु का धन्यवाद किया।

❀ ❀ ❀

॥ ओ३म् ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

वैश्या धन—राशि मन

रात्रि का समय है लज्जावन्ती अपने पतिदेव से पूछ रही है। 'भगवन्! यह स्वर्ण कङ्कन. और इतरादि सर्व सामान कहां से लाये हैं।

बद करदारी किस्मत मारी

मुनीश्वर—तुम्हें क्या? कहीं से लाऊं? क्या तुम्हें पसन्द नहीं, खराब है?

लज्जावन्ती—भगवान्! अच्छे लगते तो मैं पहन न लेती। आप कितने दिनों से कह रहे हैं, परन्तु प्रति दिवस मैं आपकी आज्ञा का तिरस्कार कर देती हूं। इसका मुझे पश्चाताप सा भी

होता है। आपको मुझ से कितना प्रेम और मेरी आपमें कितनी श्रद्धा थी, परन्तु अब तो जब रात्रि आती है, मुझे भय सा प्रतीत होता है कि आप पुनः मुझे विवश करेंगे। अब इतने काल पश्चात् आपको हो क्या गया? आप रुष्ट न हों तो एक बात कहूं।

मुनीश्वर—बेशक, दिल खोलकर कहो। मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि रुष्ट न हूंगा।

लज्जावन्ती—मुझे शृङ्गार का यह सब सामान सज्जन पुरुषों का प्रतीत नहीं होता। यह तो वैश्या का सा वेश है। क्या आप मेरा भी वैश्या का स्वांग भर मुझ से प्रेम करना चाहते हैं। शायद अब मेरी वैसी साधारण रूप आकृति आपको नहीं भाती। इसलिये पूछती हूं कि सब सामान कहां से लाए हो? जो जो वस्तुएं मेरे पास हैं, वे सब मेरी जेठानियों के पास भी हैं, वस्त्र और आभूषण सब कुछ। और अब भी आप श्वसुर जी अथवा ज्येष्ठ जी जो वस्तु बनवाते अथवा लाते हैं, सबको एक जैसी बनवा देते अथवा लाते हैं। आप भी सबकी एक जैसी सेवा करते हो ये सामान तो मैं उनके पास नहीं देखती। मैं तो वैसी भी आजकल पढ़ने के कारण इनसे नितान्त भागती ही हूँ, परन्तु वे तो फिर भी कुछ न कुछ शृङ्गार करती ही हैं।

यह सुनकर मुनीश्वर कुछ सहम गया। मन ही मन में विचारने लगा, ओहो! वैश्याओं का सामान श्रेष्ठों से भिन्न प्रकार का होता है। मेरी धर्म पत्नी चूंकि कुलीन वंश से है, 'इसमें जब सन्तोष कुमारी से एक ही बार समझाने से इतनी सरलता आ गई और इसके जीवन ने इतना पलटा खाया तो वह अब वैश्या का सा रूप

कैसे बना सकती है, शोक ! मुझे यह ज्ञान नहीं था कि इससे वेश्या का स्वांग भरा जाएगा।

लज्जावन्ती ने उसे मौन देखकर पूछा, क्यों भगवान्! मौन क्यों हो गये ? क्या रुष्ट हो गए ? मैं तो पहले ही भय खाती थी।

मुनीश्वर—नहीं प्रिय, नहीं ! मैं रुष्ट नहीं हुआ। मुझे तुम्हारे इन शब्दों और पवित्र विचारों से अपने ऊपर लज्जा आ रही है। वस्तुतः यह माल एक वेश्या का है। उस पर हत्या का अभियोग चल रहा है। अभियोग है तो असत्य ही, क्योंकि वह निरपराध है। केवल उस पर यह सन्देह किया गया है कि हत्यारे ने वध करने के लिए संख्या (विष) इस वेश्या से लेकर अपहृत (मृतक) को दी है। उसी ने ही सब हार-शृङ्गार का सामान तो मुझे तेरे लिये दिया है और स्वर्ण कङ्कन साहिब की रानी के लिए। मैंने विचार किया कि वैश्या इस अभियोग से मुक्त तो हो ही जायेगी, क्योंकि साहिब को भी मैंने वैश्या के निरपराध होने का निश्चय दिला दिया है। मिसल में भी इस पर सन्देह के अतिरिक्त कोई प्रमाण नहीं। अभी तो यह बीस सहस्र रुपया नक़द जमानत पर कारावास से बाहर रह रही है। यदि रानी साहिबा को कङ्कन देता हूं तो साहब बहादुर को भी पता लग जायेगा। चाहे रानी साहिबा ले भी लें, परन्तु साहिब रुष्ट होगा। और सब समाचार विदित हो जाने पर सन्देह भी हो जायेगा कि मुनीश्वर हमारे नाम पर घूंस लेता है और लोग इसे दलाल समझकर घूंस देते हैं। इससे अपयश भी बढ़ेगा और साहिब भी पता नहीं क्या करें।

लज्जावन्ती--अब देखिये कितने पाप आपको करने पड़ गये। एक वैश्या के दुराचार की कमाई का क्या जादू का सा प्रभाव है कि आप मुझे धर्म से भी पतित करते थे, वैश्या जैसी बनाते थे। फिर भ्राताओं से, माता से, भावजों से, साहिब से, रानी साहिबा से चोरी की। मन में असत्य घड़ा, ईश्वर ने सब कुछ दिया है। भूमि है, माल सम्पत्ति है, घर है, ऐश्वर्य है, प्रतिष्ठा है, धन है, राज्य में मान है, विद्या है, पुनः आपको ऐसा पाप करने की क्या आवश्यकता ? अच्छा परमात्मा न करे यदि यही बात प्रसिद्ध हो जाय, या कोई और शत्रु खड़ा हो जाये और अभियोग बन जाय, आपको पकड़ेंगे या मुझ को अथवा आपकी माता, भावज, भ्राता अथवा पिता को ! यह तो सत्य है कि हम सब दुःखी होंगे, हमारा नाम बदनाम तथा अपमान होगा, परन्तु मारे तो आप ही जायेंगे। कहते 'खावे गला (समूह), भोगे कल्ला (अर्थात् समूह खावे और दण्ड अकेला भोगे) और यदि आपके भ्राताओं और भावजों को ज्ञान हो जाये तो वे कहेंगे कि शायद आगे पीछे भी ऐसे ही चोरी-चोरी माल छिपाते होंगे। हरे भरे घर में फूट पड़ जायेगी। मैं तो कहती हूं यह घूंस लेना ही त्याग दें। अगले जन्म में इसका फल अवश्य भुगतना होगा आखिर तो यह काम पाप का ही है पुण्य का नहीं। कल प्रातः ही ये वस्तुएं वैश्या को वापिस भिजवा दें।

मुनीश्वर—यह लत (व्यसन) तो है ही पर त्यागना कठिन है। मैं किसी को तङ्ग करके तो लेता ही नहीं, सब सहर्ष दे जाते हैं। परन्तु अब वेश्या का आया हुआ यह माल वापिस कैसे करूं ? ये तो मैं भी समझ गया कि वेश्या का धन हराम का धन है और

बहुत ही निकृष्ट है। इसीलिये उसने मेरे हृदय और मस्तिष्क को भी चकरा दिया है। अच्छा, यह कल सोचेगें कि किस प्रकार लौटाया जाये। अभी तो कई दिन पड़े हैं, अथवा अभियोग का निर्णय हो जाने पर जब यह मुक्त हो जावेगी, तब देंगे तो और भी यश होगा कि बचा भी दिया और लिया हुआ माल भी लौटा दिया।

लज्जावन्ती—जैसे आपकी इच्छा : मैं तो फिर भी यही कहूंगी कि विपदा को मेरे डब्बे और घर से तुरन्त दूर कर दें। ये बातें करते-करते दोनों सो गये।

प्रातः उठे। लज्जावन्ती तो पाठशाला चली गई और मुनीश्वर अपने समय पर न्यायालय चला गया।

(२)

उधर वैश्या ने अपने वकील के मुन्शी से अभियोग का समाचार पूछा, उसने कहा 'किसी को देना दिलाना मत, न किसी कर्मचारी अथवा चपड़ासी से मनौत माननी, वकील साहब अभियोग की सम्पूर्ण मिसल का सावधानी से अध्ययन कर आये हैं, वह कहते थे कि मिसल में तुम्हारे प्रति कोई भी प्रमाण नहीं, तुम अवश्य मुक्त हो जाओगी। वरन अभ्यर्थना (अपील) में तो पहली ही पेशी पर मुक्त करा लाऊंगा। यह सुनकर तो वैश्या अति प्रसन्न हुई, परन्तु भय से बेचारी का मुखड़ा सफेद पड़ गया था। जीर्ण पुराने मैले वस्त्र पहने निढाल हो रही थी। २० सहस्र रुपया नकद जमानत में दिया था उधर सब अच्छा माल भी दे बैठी थी। अब उसके

पास रहा हो क्या था ? कहने लगी, मैं तो बड़ी दुःखी और भय-भीत थी। मेरा मान और आजीविका का यह द्वार भी बन्द हो गया था। मैंने स्वर्ण कङ्कन मुनीश्वर रीडर को रानी साहिबा के लिए दिये थे कि उस तक पहुंचा दे, किसी प्रकार मेरी मुक्ति करा दे।

मुन्शी—ओहो, तुमने कितनी गलती की। न मुझ से पूछा, न वकील साहब से। किसी अभियोग में यदि कोई तुम्हारा सच्चा और महान् शुभचिन्तक हो सकता है तो तुम्हारा वकील। मैं चूंकि उनका मुन्शी हूं, अभियोग में विजय हो जावे तो मुझे लोभ रहता ही है। मैं भी अपने अभियुक्त को असत्य मार्ग नहीं बता सकता। वेश्याएं तो बड़े-बड़े छल चरित्र जानती हैं, बड़े-बड़े धनियों को अपने जाल में फंसा लेती हैं, तुमने क्या किया ? तुम्हारी तो होश भी मारी गई।

वेश्या—मरती क्या न करती। परन्तु अब बताओ कि मैं क्या करूं ?

मुन्शी—जज साहब तो दयानतदार (सद्व्यवहारी) हैं, वह तो पाई लेने वाले नहीं। मेरा तो विचार है कि उनकी रानी साहिबा भी ऐसी वस्तु कैसे ले सकती है ? यह कोई छिपी रहने वाली वस्तु नहीं, कोई फल मिठाई तो नहीं कि घर में आ जावे, एक दो दिन में सब बाल वच्चे खा जावें और किसी को पता न चले। ये स्वर्ण के मूल्यवान कंगन तो सदैव रहने वाले हैं और आखिर तो धारणीय वस्तु है, दबाकर रखने वाली तो नहीं। अब तू मुनीश्वर से पूछ ले।

वैश्या—कहीं मुनीश्वर रुष्ट न हो जाय । वह कहेगा कि इतने दिन तक वह मेरे घर में ही रखे हुए हैं ? तुम्हें विश्वास न था तो मुझे दिए ही क्यों थे ? वह भी साहिब का दक्षिण हाथ है। कहीं उल्टा काम बिगड़ न जाये ।

मुन्शी—तो फिर रानी साहिबा से पूछ ले ।

वैश्या—मैं एक अधम पापिन वैश्या उनके पास कैसे जाऊं और मुझे वहाँ तक कौन जाने देगा ।

मुन्शी—तो फिर उनके नौकर अथवा चपड़ासी को लोभ देकर कहो कि वह रानी साहिबा से पूछ देवें । अथवा तुम कहो तो मैं मुनीश्वर से पूछ लूं, परन्तु वह फिर मेरे पूछने पर यही समझेगा कि अन्यों तक यह समाचार पहुंच गया है । यही अच्छा है कि चपड़ासी से अथवा सेवक के द्वारा पूछा जाय । चपड़ासी से भी सेवक अच्छा रहेगा ।

वैश्या यह परामर्श करके भय खाती-खाती साहिब के घर के द्वार से बहुत दूर एक वृक्ष के नीचे बैठ गयी, जहाँ से सेवक जल भरने आता जाता था । बहुत समय तक बैठी रही और मन में कई प्रकार की युक्तियाँ सोचती रही कि सेवक से कहूं अथवा न कहूं कैसे और क्या कहूं ? कुछ सोच न सकी । अन्ततः अकुलाकर उठ खड़ी हुई कि 'घर चलूं, देखा जायेगा, अब तो दे बैठी हूं, कहीं उल्टी मैं ही न फंस जाऊं । इतने में उसने देखा कि एक व्यक्ति हाथ में बाल्टी लिए उस घर से बाहर आ रहा है । वह सेवक न जानता था कि यह कौन है, न उसकी उस समय की आकृति थी,

न रूप ही वेश्याओं जैसा था। जब वह समीप आया तो वेश्या ने उससे पूछा, 'अरे भाई ! तू कहां रहता है ?"

वह— मैं जज साहब का सेवक हूं, उसके घर रहता हूं।

वेश्या—जरा ठहर कर मेरी बात तो सुन ले।

वह ठहर गया। तो वेश्या ने कहा, रानी साहिबा किसी और को मिलने के लिए आने जाने भी देती है अथवा नहीं ?

सेवक—हां नगर की बहुत सी स्त्रियां आती जाती हैं। मुनीश्वर बाबू के सब घर वाली प्रायः एक दूसरे दिन आया जाया करती हैं।

वेश्या—रिक्त (खाली) हाथ आती हैं अथवा कोई फल मिठाई साथ लाती हैं ?

सेवक—ले आती हैं परन्तु अभियुक्त से कुछ नहीं लेती। साहब कड़ा कड़ा है। नगर वाली भाई चारे के रूप में आती जाती हैं।

वेश्या—(हाथ जोड़कर कहने लगी) मेरे ऊपर अभियोग है। मैं वेश्या हूं। मैं रानी साहिबा को अपनी निर्दोषता का वृत्तान्त सुनाना चाहती हूं। तुम कृपया जरा उनसे पूछ आओ, यदि वह दया करके मुझे आने की आज्ञा दे दें, मैं तो खाली हाथ हूं। यदि तुमने आज्ञा ले दी तो मैं तुम्हारी भी कुछ सेवा कर दूंगी।

सेवक ने कहा, अच्छा ! तू बैठ। मैं बाल्टी भरकर वापिस आ जाऊं तो उत्तर ला दूंगा।

सेवक चला गया—वेश्या बैठ गई। मन से धन्यवाद करने लगी कि परमात्मा ने अच्छी सुझाई। समझ न आता था। क्या

कहूं ? अब यदि रानी साहिबा को कङ्गन पहुंच गये होंगे तो वह बुला लेगी । यदि न पहुंचे होंगे तो न मिलेगी । यह धारणा करके वह बैठ गई ।

सेवक बाल्टी भरकर घर गया और रानी साहिबा से कहा कि एक वेश्या पर अभियोग है । वह कहती है मैं निर्दोष हूं । मैं रानी साहिबा को अपना हाल सुनाना चाहती हूं । यदि आज्ञा हो तो''।

रानी साहिबा—उसे कहो मैं किसी अभियोग में हस्तक्षेप नहीं किया करती और न मैं अभियुक्तों का वृत्तान्त सुनती हूं । यह तो वह करे जिसे कुछ लेना देना हो अथवा कुछ लिया करती हो। उसे समझा देना । सावधान ! किसी को कोई वस्तु मेरे देने के लिए न देवे न किसी से कुछ कहे । साहब को पता लगा तो वह कैद कर देगा ।

सेवक झट बाहर आया और उस वेश्या को सब हुक्म सुना दिया । वेश्या ने सेवक का धन्यवाद करके प्रणाम किया और धन्यवाद करती हुई वापिस चली गई ।

(३)

घर में बैठकर वेश्या सोचने लगी कि क्या मुनीश्वर मेरे कङ्गन पचा जायेगा ?

मैं नगर में किसी भद्र पुरुष से अपना दर्द वर्णन करूं तो शायद किसी प्रकार कङ्गन वापिस मिल जायें । रानी साहिबा तो लेती ही कुछ नहीं । यह सोचकर घर से चल पड़ी । सोचते-सोचते विचार आया कि उसके पिता से कहूं । फिर डरी कि कहीं उनका पिता

और भ्राता मेरा अपमान न कर दें। महाशय ज्ञानप्रकाश का नाम याद आया तो बड़ीं प्रसन्न हुई और उनकी ही दुकान पर चली गई और बोली 'महाशय जी, नमस्ते !

ज्ञानप्रकाश जी किसी कार्य में संलग्न थे । सिर उठाकर देखा तो यह वेश्या सामने खड़ी है, परन्तु बड़ी दुरावस्था में । उन्होंने पूछा, क्या माता जी ! यह तुम्हारी कैसी दुर्दशा हो गई ?

वेश्या—आपको पता नहीं मुझ पर हत्या का अभियोग बना कर सन्देह में मुझे पकड़ लिया गया है, इसलिए ऐसी दुर्दशा है ।

महाशय जी—बहुत दिन हुए कुछ सुना तो था, परन्तु इधर ध्यान नहीं दिया । अपने कार्य में ही फंसे रहे । फिर कुछ नहीं सुना । अब यहां कैसे आई ?

वेश्या—निर्दोष होते हुए भी अपने दुराचार तथा दुष्कर्मों का दण्ड तो भोग रही हूँ । अपने बचाव के लिए वकील भी बड़ा अच्छा रखा है और भी बहुत खर्च किया है । एक भिक्षा माँगने आई हूं, यदि मेरी कुछ सुन लो तो''

महाशय जी—माता जी ! मेरे वश की बात होगी तो पूरा यत्न करूंगा, यदि वश की न हुई तो विवश हूं ।

वेश्या ने सब वृत्तान्त सुनाकर अन्त में कहा कि रानी साहिबा को तो कङ्गन मिले नहीं, न वह कुछ लिया करती है । मुनीश्वर से मेरे कङ्गन वापिस करा दीजिए ।

महाशय जी—अच्छा माता जी ! तुम जाओ, मैं आज ही इसका यत्न करूंगा । यदि उसने रानी साहिबा को नहीं दिए तो

आज रात तक तुम्हारे कङ्गन तुम्हें अपने घर में ही मिल जायेंगे। मुनीश्वर बड़ा सज्जन बालक है। श्रेष्ठ कुल का है, तुम्हारी वस्तु ऐसे नहीं पचायेगा।

वेश्या—यदि वह माने ही न, कोई साक्षी तो है नहीं। भय से लज्जा से, मान के भय से अथवा अभियोग के भय से मेरा तो कोई साक्षी देने वाला भी नहीं है।

महाशय जी—इस बात से तुम निश्चिन्त रहो। यदि तुम्हारे सामने पूछूं तो शायद मुकर भी जावे। परन्तु जब मैं अकेले एकान्त में पूछूंगा, तो फिर मुझ से क्या भय? दोनों एक ही नगर के हैं, तुम सन्तुष्ट रहो। चुनाँचे वेश्या महाशय जी का धन्यवाद करती हुई चली गई।

(४)

मुनीश्वर न्यायालय में बैठा है। रह-रह कर रात्रि के विचार उसके मन में भ्रमण कर रहे हैं। कभी कहता है कङ्गन और अन्य सब सामान वेश्या को आज ही लौटा दूं। कभी विचारता है अभियोग के पश्चात् दूं। कभी तम वृत्ति आ जाती है तो कहता है चलो क्या देना है भोग विलास का सामान सूक्ष्म वस्त्र और इत्र आदि तो उसे यह कहकर लौटा दूंगा कि मेरी स्त्री स्वीकार नहीं करती, परन्तु कङ्गण तो उसने रानी साहिबा के लिए दिए हैं, अभियोग के बाद उसे तुड़वा कर स्वर्ण बनवा लूंगा और बेच डालूंगा। रुपये को तो कोई आपत्ति न लगेगी। वे तो वेश्या के नहीं होंगे।

अन्ततः यह अपना अन्तिम संकल्प उसनें अपने मन में वाह-वाह करके स्वीकार कर लिया और यह निश्चय कर बैठा कि घर जाते

ही यह सब चीजें लज्जावन्ती से ले लूंगा। इस प्रकार उसका संशय और भय मिट जावेगा और मैं भी निश्चत हो जाऊंगा।

आज न्यायालय के समय से पूर्व कार्य भी सामप्त हो गया। न्यायाधीश भी चले गये तो न्यायालय में अवकाश पाकर वकील साहब का एजेन्ट आया तो वह वास्तव में किसी और कार्य के लिए था, परन्तु मन में यह विचार आ गया कि मुनीश्वर जी से पूछ ले अथवा उसे एक प्रकार से समझा दूं। कहीं उस पर कोई आपत्ति न आ जाये, सज्जन व्यक्ति है, धनी का पुत्र है।

एजेन्ट—सेठ जी ! हमारे हत्या के अभियोग का क्या बनेगा। वेश्या बेचारी तो बहुत रोती है और चिन्तातुर रहती है।

मुनीश्वर—आशा तो है मुक्त हो जायेगी।

एजेन्ट—आशा ही है या निश्चित बात है।

मुनीश्वर—वाक्यात से ही कहता हूं, लेखनी तो न्यायाधीश के हाथ में है। चूंकि न्यायाधीश सद्व्यवहारी है किसी का पक्षपात करने वाले नहीं, इसलिए लेख से बाहर नहीं जायेगा और वैसे भी उन्हें वेश्या की निर्दोषता का सब समाचार बतला दिया गया है।

एजेन्ट—मेरा तो विचार है कि न्यायाधीश जानबूझ कर उसे कारावास दे देगा।

मुनीश्वर—कैसे ?

एजेन्ट—आओ तुम्हें बतलाऊं।

एजेन्ट उसे बाहर एकान्त में ले गया और कहा कि जब न्यायाधीश अपनी रानी के पास स्वर्ण कंगन देखेगें अथवा रानी

स्वयं ही न्यायाधीश से सिफारिश करेगी, तब अपनी सद्व्यवहारता की कीर्ति कायम रखने के लिए वह अवश्य उसे कुछ न कुछ दण्ड दे देगा।

मुनीश्वर—कंगन कैसे ? (जरा आंखें निकाल कर)।

एजेन्ट—पता नहीं, आज वह वेश्या अपने अभियोग का समाचार पूछने हमारे कार्यालय में आई थी तो वकील साहब और मैंने भी कहा कि तुम अवश्य मुक्त हो जाओगी। किसी को लेना देना कुछ नहीं और न किसी से कुछ वचन कर बैठना। हमने तुम्हारी मिसल का अध्ययन कर लिया है। तब वेश्या ने कहा था कि मैं तो रानी साहिबा को देने के लिए अपने स्वर्ण कङ्गन मुनीश्वर को दे बैठी हूं। तो वकील साहब ने कहा कि रानी साहिबा तो लेने वाली नहीं। न्यायाधीश बहुत क्रूर हैं। तब उसने मुझसे परामर्श मांगा तो मैंने कहा फिर मुनीश्वर से पूछ लो। कहो तो मैं पूछ लूं, परन्तु वह डर गई कि सेठ कहेगा, मुझ पर विश्वास नहीं किया। आखिर कहती थी कि मैं रानी साहिबा से जाकर मिलती हूं। पता लग जायेगा। यदि उसने कंगन लिये होंगे तब तो मेरा कार्य सिद्ध हो जायेगा, यदि नहीं लिये तो मेरी कैसे हो सकेगी ? हम तो न्यायालय चले आये और वह उधर रानी साहिबा के पास जा रही थी। आगे का पता नहीं, अब पता चलेगा मैंने आपको आपके कल्याणार्थ सूचना दी है।

इस बात को सुनते ही मुनीश्वर के मुख पर हवाईयां उड़ने लगीं वह झट भीतर आया, बस्ता बाँधा, कागज और मिसलें लेखक (अहलमद) को दे तुरन्त अपने घर की ओर चल पड़ा।

(५)

इधर ज्ञानप्रकाश ने मन में विचार किया कि वेश्या से वचन तो कर बैठा हूं अब मुनीश्वर से पहले कहूं अथवा उसके पिता व भ्राता को बुलवा भेजूं देर तक सोचने के पश्चात् उसने यह निश्चय किया कि मुनीश्वर की विशेष आवश्यकता नहीं फिर ऐसे घृणित और दूषित पाप करने से क्या लाभ ? अच्छा यही है कि उसके पिता और भ्राता से परामर्श कर लूं ताकि वह उसे घूंस त्यागने के लिये कहें। यही निश्चय करने के पश्चात् ज्ञानप्रकाश उनकी दुकान पर गया। संयोग से मुनीश्वर पिता व भ्राता वहां इक्कठे ही बैठे थे और नितान्त एकान्त था। महाशय जी को देखकर सब उठ खड़े हुए और सबने उन्हें नमस्ते करके आदर से बैठाया और पूछा, आज कैसे इस ओर आने का कष्ट किया ?

ज्ञानप्रकाश—भाई ! सेवादार जो हुए, किसी से प्रार्थना करना किसीसे याचना करना, किसीसे ग्रहण करना जो हमारा कार्य हुआ। आप शहर के धनी हैं, बड़ी मान प्रतिष्ठा वाले हैं और मेरे मित्र भी हैं। आज एक घटना मेरे सामने आई है कि यदि वह व्यक्ति सौहार्द (शरीफ) न होता तो तुम्हारा मुनीश्वर विष खाकर मर जाता अथवा उसे हथकड़ी लग जाती।

यह सुनते ही मुनीश्वर के सब भ्राताओं और पिता की सुधबुध मारी गई। उसके पिता ने चकित होकर पूछा—क्या बात है ? ज्ञानप्रकाश जी ने वेश्या आगमन का सब समाचार आद्योपान्त सुना दिया और अन्त में कहा कि धन्यवाद करो वह है तो वेश्या, परन्तु

फिर भी भली मानस है। आपके नाम का प्रताप, मुनीश्वर की सज्जनता, उस का कुछ किया हुआ पुण्य प्रताप आज प्रत्यक्ष रूप से समक्ष आकर उसे इस आपत्ति से बचा रहा है। यदि वेश्या सेवक से कह देती कि मैंने रानी के लिए कंगन भेजे हैं, तनिक पूछ आओ कि उन्हें मिले भी हैं या नहीं, तो बतलाओ आज पाप का भांडा फूट जाता कि नहीं ? न्यायाधीश बहुत ही सद्व्यावहारी है। उसके कानों तक जब यह बात पहुंच जाती तो वह बचाव के लिए और अपयश से बचने के लिए यदि मुनीश्वर को न पकड़वाते तो क्या करते ? सारे घर की तालाशी होती तो सब का मान मर्दन हो जाता। धिक्कार है ऐसे घूंस पर। आपको क्या कोई न्यूनता पड़ी है ? उसे इससे रोकते क्यों नहीं ! उन सबने कहा—हमें उन कङ्गनों का अब तक भी पता नहीं। अपनी घर वाली को ला दिये होंगे। इस तरह हमसे भी चोरी की। इन सब की सुध-बुध भूल गई। पिता ने ज्ञान प्रकाश के चरणों पर हाथ रखा और कहा—"भाई! तू मेरा मित्र है और मित्र जानकर ही तो आया है। अब प्रभु के नाम पर यहां ही बैठा रह। मुनीश्वर को उसका भ्राता न्यायालय से सीधा यहां ही ले आयेगा और कहीं न जाने देगा। शायद वह कहीं खेलने अथवा मिलने चला जावे तो बात ही बिगड़ जावे।

यह बात सुनकर वह भ्राता जिसकी ओर संकेत किया गया था, तुरन्त न्यायालय की ओर दौड़ गया। उसके चले जाने के बाद ज्ञानप्रकाश ने कहा, 'सब से बड़ा भय यह है कि वेश्या ने सब वृत्तान्त अपने वकील के मुन्शी से भी कह दिया है और इन मुन्शियों का हाल तो आप जानते ही हैं। चाहे वह कितने ही सज्जन क्यों

न हों फिर जो कमाते हैं, अपने अभियुक्त से ही कमाते हैं और असत्य को सत्य, सत्य को असत्य कर दिखाते हैं।'

(६)

मुनीश्वर न्यायालय से निकल ही रहा था कि उसका भ्राता दौड़ता, हांपता आ पहुंचा। मुनीश्वर स्वयं भी बेसुध सा था, भ्राता को इस दशा में देखकर और भी चिन्तित हो गया। बोला—क्यों तुम कैसे आये ? और हांप क्यों रहे हो ? उसने कहा तुम्हें ही बुलानें आया हूं। मुनीश्वर ने पूछा क्यों ?' 'बस तीव्रता से चलो। अब कुशल नहीं।' दोनों अत्यन्त चिन्तित अवस्था में तीव्र पग उठाते हुए दुकान पर पहुंच गये।

पिता की आयु का अन्तिम पहर था। बड़ा माननीय व्यक्ति था। अपना समय उसने बड़ी शान मान से व्यतीत किया था। इतने चिर चिन्ता के कारण उसके कण्ठ तक से थूक भी नीचे न उतरा था। अर्थात् वह बड़ा चिन्तातुर बैठा था। उसे कुछ भी सुझाई न देता था कि क्या करे और क्या न करे। मुनीश्वर को देखते ही उसने अपने माथे पर हाथ मारा और बोला—पुत्र! अच्छी नोकरी की। क्या इस अन्तिम अवस्था में कलंक लगाने के लिए तुम्हें उत्पन्न किया था और तुमने बी० ए० तक खाक पढ़ा ?

ज्ञानप्रकाश—सेठ जी ! धैर्य धरो। कोई बात नहीं, सब कुशल है। सेठ रो पड़ा उसके नेत्रों से अश्रुधारा बह निकलीं। बड़ा भाई उठा, उसने झटपट दुकान का दरवाजा बन्द कर दिया कि कोई भीतर न आ जाये। दूसरा भाई जल ले आया। दोनों ने पिता से कहा, "धैर्य धरिये परमात्मा की कृपा से सब कुशल होगा।

ज्ञानप्रकाश जी बड़े सन्तोषयुक्त स्वर से बोले, पुत्र मुनीश्वर वैश्या ने जो कङ्कन रानी साहिबा के लिए दिये थे, क्या वे उन्हें दे आये ?

मुनीश्वर पसीना पसीना हो रहा था, कुछ बोल न सका। सिर हिलाकर उत्तर दिया, 'नहीं'।

ज्ञानप्रकाश—यदि रानी साहिबा को इस बात की सूचना मिल जावे कि वैश्या ने स्वर्ण कङ्कन दिये थे और मुनीश्वर ने अपने पास रख लिये और वह अपने पति से कहे कि ऐसे ही वह आपके नाम पर घूंस लेता होगा आपका अपमान करता होगा, तो फिर क्या हो ?

मुनीश्वर और भी वेसुध हो गया और समझा कि वैश्या ने यही बात रानी साहिबा तक पहुंचा दी है और रानी साहिबा ने उसे यहां तक पहुंचाया है। इस विचार से उसके मन पर बड़ी चोट लगी। वह अत्यन्त सज्जन था, बेसुध होकर गिर पड़ा।

अब तो सबको चिंता पड़ गई। कोई पंखा करने लगा। किसी ने शीतल जल मुख पर छिड़का, किसी ने मुख में पानी डाला. थोड़े चिर पश्चात् सुध आई तो ज्ञानप्रकाश जी ने कहा—"पुत्र! घबराओ नहीं, मेरे लिए जैसा सत्यव्रत है, वैसे तुम भी हो। मैं तुम पर जरा सेंक नहीं आने दूंगा। सन्तुष्ट रहो परन्तु यह देख लो इस पाप का फल कैसा भयङ्कर है। सुनते ही तुम्हारी क्या दशा हो गई और तुम्हारे वयोवृद्ध पिता की क्या अवस्था है ? यह कमाई तुम्हारे साथ न जायेगी जो तुम्हें यूं अचेत कर रही है तो आगामी जन्म में इसका अच्छा फल कैसे मिल सकेगा ? घूंस, अस्ते (चोरी)

डाका और राहजनी सब ही बड़े भारी पाप हैं। यह घूंस कठोरता और निर्लज्जता पैदा करती है। घूंसाहारी से मनुष्य कोसों दूर भाग जाता है। इधर तो कोई दुष्ट किसी निर्धन की स्त्री का अपहरण करके ले जाये और वह इस्तगासा (मुकद्दमा) दायर कर दे. उधर घूंसाहारी कर्मचारी, चपड़ासी, पुलिस अफसर विपदा-ग्रस्त मनुष्य से घूंस मांगे, तब कहीं कुछ उसे न्याय मिलने की भी आशा हो? ऐसे ही एक व्यक्ति रक्तान्वित(लहूलोहान) हो जाये, फिर यदि पुकार करे तो घूंसाहारी कहे, पहले हमारी मुट्ठी गर्म करो फिर सुनेंगे कि क्या कहते हो। जरा उस दुःखियारे दिल से पूछो? इसी अभियोग को ही देख लो। एक निरपराध स्त्री की क्या दशा हो गई है। पुलिस ने लूटा, वकील और उसके मुंशी ने लूटा, न्यायालय के चपड़ासी और कर्मचारियों ने लूटा। यह सब प्रभु के सामने क्या उत्तर देंगे? उसने तुम्हें पद अधिकारी और राजकीय मान देकर प्रजा का रक्षक बनाया था अथवा कोई सिंह सिंह, व्याघ्र या भेड़िया बनाया था कि खूब मारो और खाओ। चोर तो शायद भूख के कारण चोरी करता है। डाकू और लुटेरे भी छल (मकारी) नहीं करते, परन्तु यह घूंसाहारी सभ्य डाकू तो छल से दिन में लूटते खाते हैं। जिस न्यायालय से दुःखी के दुःख की निवृत्ति होनी थी, वही न्यायालय यह सब दुःख, पीड़ा उत्पन्न करता है। परमात्मा ने तुम्हें सब कुछ दिया है. हराम का खाना छोड़ दो। यह तो विष है। सारे अमृत को विष बना देगा। किया हुआ पाप यदि शीघ्र नहीं तो देर से फूल, फल, शाखा, मूल सहित विनष्ट कर देता है। शास्त्रों के यह सब वचन असत्य नहीं हो

सकते। अब भी यदि तुम सद्व्यवहारी (दयानतदार) बन जाओ तो आनन्द की निन्द्रा सोवो। फिर न किसी का भय, न डर, मन में प्रसन्नता, जनता में यश। अफसरों को ज्योंही ज्ञान होगा, शीघ्र वृद्धि (उन्नति, तरक्की) करके कहीं का कहीं पहुंचा देंगे। बी० ए० हो, एल० एल० बी० हो, प्रभु की कृपा हो जाये तो तुम स्वयं जज बन सकते हो। मेरा तो प्रभु पर बड़ा विश्वास है। अच्छे कर्म अवश्य फल देते हैं और तुम्हारी प्रारब्ध को कोई रोक नहीं सकता। यदि यह आय भी अब तुम्हारी जो दैनिक है लेना बन्द कर दोगे तो परमात्मा तुम को उन्नति देकर इकट्ठी दे देगा।

मुनीश्वर--चाचाजी, अब मैं पश्चाताप करता हूं और प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं फिर ऐसा कार्य भूलकर भी न करूंगा अब मेरा बचाव कैसे हो ?

ज्ञानप्रकाश—तुम चिन्ता मत करो वह (वेश्या) बड़ी दक्ष (चतुर) और सज्जन सिद्ध हुई। उसने तुम्हारे पिता का और तुम्हारी सज्जनता का बड़ा ख्याल रखा। वह रानी साहिबा के घर गई थी परन्तु वहां पर कंगनों की बात तक नहीं की। सेवक द्वारा मिलने की आज्ञा मांगी। उसे आज्ञा न मिल सकी और जो शब्द रानी साहिबा ने कहला भेजे उससे जान लिया कि न तो रानी साहिबा को उसकी वस्तु पहुंची है और न उसे इसका कोई ज्ञान ही है। न वह किसी अभियुक्त की बात ही सुनना चाहती है न और कोई ऐसे कार्य में हस्तक्षेप करती है।

तब वह मेरे पास आई अपनी दुःख भरी कथा सुनाई। फिर भी उसने तुम्हारे ऊपर कोई सन्देह न किया। बस तुम यही समझो कि

तुम्हारा किया हुआ कोई पुण्य इस समय तुम्हें तुरन्त हाथ देकर बचा गया है वरन, कुशल न था। अब सब सम्पत्ति ले आओ मैं उसे चुपचाप पहुंचा दूंगा और तुम्हारा बाल भी बांका न हो सकेगा। मैं इसका ज़िम्मेवार हूं।

मुनीश्वर इतना कम्पायमान था। ऐसा भयभीत था और इतना हताश हो गया कि भाई से कहा तुम मेरे साथ चलो ताकि मैं कहीं गिर न पड़ूं चुनाँचे ज्ञान प्रकाश जी स्वयं उसके साथ घर गए। उसने लज्जावन्ती से ट्रंक खुलवाया। लज्जावन्ती को भी भय और लज्जा से रोना आ रहा था, परन्तु उसने मन को कड़ा करके वश में रखा और कङ्गन, वस्त्र, इतर आदि सब का सब विलास का सामान ज्ञान प्रकाश जी के अर्पण कर दिया। उन्होंने इनको एक वस्त्र में बड़ी सावधानी से लपेटा ताकि घर में किसी को और कुछ भी मालूम न होवे सब वस्तुएं अपने अधिकार में ले लो और उससे कहा—"अच्छा अब तुम प्रतिज्ञा करते हो ना? कि आगामी किसी से घूंस न लोगे, प्रतिज्ञा करो'।

मुनीश्वर ने शपथ लेकर प्रतिज्ञा की और कहा कि यह कठिनाई पैदा हो गई कि साहिबा के घर की जो सेवा मैं करता था और यह कहता था कि यह सब वस्तुएं हमारे अपनी वाटिका, दुकान और घर की हैं, वे अब कैसे जायेंगी। और न देंगे तो वह क्या समझेंगे।

ज्ञानप्रकाश—इसका सुगम प्रतिकार यह है कि तुम्हारे पिताजी यत्न करके सैशन कोर्ट में तुम्हें तबदील कर देंगे। कुछ दिन और

सह लो, परवाह न करो। घर से भी कुछ देना पड़ जाये तो क्या है। अभी तो बहुत कुछ पचाया हुआ है।

फिर कुछ विचार कर ज्ञानप्रकाश जी ने कहा वैश्या के घर क्यों जाऊ, अभी बहुत दिन पड़े हैं. सेवक को भेजकर उसे यहां ही बुलवा लूं।

चुनांचे सेवक गया और वैश्या को बुलवाकर ले आया। उसने आकर प्रणाम किया और सत्कार पूर्वक एक ओर बैठ गई। ज्ञानप्रकाश ने गठरी उसके सम्मुख रखकर कहा–'लो! अपनी वस्तुएं सम्भाल लो।' वह कहने लगी, अजी! खोलना और देखना क्या, आपकी कृपा है। मुनीश्वर बाबू रुष्ट न हों।'

मुनीश्वर ने कहा—माई! तुम्हें अत्यन्त धन्यवाद देता हूं और आज से घूंस न खाने की शपथ भी लेता हूं। मैं यह सब स्वयं ही तुमको वापिस कर देता, परन्तु अभियोग के परिणाम के पश्चात् देना चाहता था। अब भी धन्यवाद है कि तुमने बात न बढ़ने दी और मुझे इस कलंक से बचा लिया। अब इन्हें अच्छी तरह देख लो, सम्भाल लो ताकि कोई गिला न रहे।

वेश्या ने एक ओर गठड़ी खोली और अपनी सब वस्तुएं ज्यों की त्यों ठीक पाकर बोली—'बाबू जी! सब ठीक हैं, परन्तु मैंने कङ्गन के बिना शेष सामान तो आपको भेंट किया था।'

मुनीश्वर—यह माल तो मैं स्वयं वापिस करने वाला था, क्योंकि हमारे घर में ऐसो वस्तुओं से सबको घृणा है।

ज्ञानप्रकाश—देख माता! मैं भी तुझे थोड़ा-सा समझाऊं, कान देकर सुन ले। इस दुष्टाचार का परिणाम तो तूनें देख ही लिया कि

तुम इस दोष से निर्दोष हो केवल इसलिए हर कोई तुम्हारा पक्ष ले रहा है, परन्तु यदि तू अपराधिन होती तो तेरा जीवन नष्ट हो जाता। ग्रीष्म-ऋतु है, तू इतना विलासित जीवन बिताती है, सेवक पंखा खींचते हैं, खसखस की टट्टियां लगी हुई हैं, नौकर चाकर मास पुलाव, जरदे तेरे खाने पीने के लिए तैयार करते हैं, चिलम पर चिलम भरते हैं, कई कई चाटुकार घेरे रहते हैं। परन्तु कारावास में किसी ने बात भी न पूछी होगी। शुष्क टुकड़ा भी कोई देने नहीं आया होगा। वहां शीतल पवन तक का नाम भी न होगा। वहीं मूत्र, वहीं शौच, वहीं खाना, वहीं सोना, दुर्गन्ध के कारण आपत्ति में जान होगी। फिर सिपाहियों के कुवचन, आए गए के दृष्टि पतन, सब यही कहते होंगे, सुसरी ने कितना अत्याचार किया, अच्छा हुआ जैसा किया वैसा फल पा लिया तुमने भी बड़े-बड़े उच्च घरानों को विध्वंस किया होगा। सहस्रों का मान, शान, आगामी जीवन बिगाड़ा होगा। उनकी सम्पत्ति ठिकाने लगवा दीं होगी। चढ़ती जवानी वाले और उठते वीरों की तूने अपनी आंख की तिरछी दृष्टि से ऐसा मद चढ़ाया होगा कि फकीर बनाकर छोड़ा होगा। कुछ स्मरण है कि यौवन में तूने कितने कुलीन घरों का वेड़ा डुबोया है ? तेरे इन सब पापों का दण्ड जो तुम्हें मिला है वह कुछ बहुत नहीं। प्रभु ने तेरे ऊपर दया की है। अगर दो तीन वर्षों का दण्ड मिल जाता तो सब सम्पत्ति, ऐश्वर्य नष्ट हो जाता। किसो को भी तेरा विश्वास न रहता। परन्तु अब भी निश्चिन्त न हो वरन सर्वनाश तो तेरा है ही, केवल कुछ दिन तू खुली हवा खा रही है। फिर भोजन अच्छा तो क्या, साधारण भी कण्ठ से न उतरेगा। जिप तन लागे वहा तन जाने। इसलिए अब भी तू सम्भल जा और

अपने मालिक की याद में बाकी दिन बिता दे। यह सब अकीर्ति कीर्ति में परिवर्तित हो जाएगी और तू वेश्या से औलिया बन जाएगी, प्रभु की प्यारी कहलायेगी, देवता तुझ पर आशीर्वाद करेंगे। तेरी मृत्यु के पश्चात् जनता तेरी कब्रपर फूल चढ़ाएगी औरउसकी यात्रा(जियारत) किया करेगी। तू अकेली है। तेरा पति नहीं, पुत्र नहीं, माता, बन्धु, भ्राता, भगिनी, कोई भो नहीं। तुझे अब किसी से क्या ? यह भी देख लिया कि तेरे इच्छुक इस भय से अब तेरे पास फटकते नहीं कि कहीं सरकार हमें भी न पकड़ ले। तुझसे खाने पीनेवाले और तेरी पाप की कमाई पर मौज उड़ाने वाले सब नौकर चाकर भाग गये। अब अपना अकेला सा मुंह लिए बैठी रहती होगी। वह सुन्दरता जिस पर सब मरते थे और जिसके बलबूते पर तू भो सबको मारुदृष्टि से देखती थी वह न्यायकारी प्रभु ने वापस ले ली और अब तू हाल से बेहाल है यदि अब भी तूने अपना सुधार न किया तो न जाने और क्याक्या तुझे देखना पड़ेगा।

वेश्या— महाशय जी ! मैं सत्य कहती हूं इस अभियोग से मेरी जो दुर्गति हुई है वह मैं दर्णन नहीं कर सकती, अब तो मैंने भी मन में यह दृढ़ निश्चय कर लिया है कि अब यह कुकर्म व्यवसाय कभी न करूंगी और आराम से बैठ कर खाऊंगी। जमानत के पैसे वापस मिल ही जाएंगे वह मेरे जीवन भर के लिए पर्याप्त हैं। परन्तु मुझ पापिन दुराचारिणी को सब लोग यही कहेंगे—

"नौ सौ चूहे खाकर बिल्ली हज को चली"

सब उलाहने देंगे। यदि वह न दें,तो भी मैं इतनी तो दुराचारिणी हूं कि खुदा और रसूल पाक को कब स्वीकार व प्रिय हो सकती हूं।

ज्ञानप्रकाश— इस बात से न घबरा ! लोगों की भी परवाह न कर, जो कुलीन युवक तुम्हारे इच्छुक बन गये थे उनका अपयश और चर्चा भी ऐसे हुआ करता था, माता पिता और बन्धु बान्धव भी उनसे पृथक और रुष्ट रहते थे, परन्तु उनके कान तेरे प्रेम में बहरे हो रहे थे इसीलिए तो ऊन्होंने तेरे प्रेम में अपनी सम्पत्तियां भी बेच दी तू भी परमात्मा के प्रेम में ऐसा कर। हम हिन्दू हैं तू मुसलमान है परन्तु खुदा और परमेश्वर तो दोनों का एक ही है। हम उसे माता पिता मानते हैं। यदि एक पुत्र बिगड़ कर दिन भर बाहर फिरता रहे और साम को वापस आकर माता पिता के चरणों में गिर पड़े तो माता-पिता उसे धक्का नहीं देते अपितु छाती से लगाकर आशीश देते हैं, तेरे मत का तो हमें पता नहीं, परन्तु हमारे शास्त्रों में जो लिखा है वह सुन—

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परांगतिम् ।

गीता अध्याय ९ श्लोक ।३२।

अर्थात् स्त्री वैश्य शूद्र इत्यादि तथा पाप योनी वाले जो कोई भी हों यदि वह मेरी शरण में आ जाएं तो परमगति को प्राप्त होते हैं, इसी प्रकार अन्यत्र भी लिखा है सब धर्मों को अर्थात् सम्पूर्ण कर्मों के आश्रय को त्याग कर केवल एक मुझ सच्चिदानन्द परमात्मा की ही अनन्य शरण को प्राप्त हो, मैं तुझको समस्त पापों से मुक्त कर दूंगा, तू शोक मत कर। (गी० अ० १८-६६)* और तुम्हारे

---

* सर्वं धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्वं पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः ।

ही विद्वानों को यही कहते सुना है कि यदि कोई सच्चे हृदय से पश्चाताप करे आगे को फिर पाप न करे और प्रायश्चित करके प्रभु स्मरण में लग जाए तो उसे खुदा और रसूल स्वीकार कर लेते हैं, इसलिए तू भी अब अपने धन माल का ही आश्रय लेकर न बैठ जा। अपितु परमात्मा का आश्रय लेकर बैठ। चाहे अब तू दुराचार न भी करेगी तो फिर खायेगी भी तो वही कमाया हुआ हराम का माल ही। इसलिए अब तो कुछ पुण्य कमाले और स्वर्ग का तोषा भी बना ले। सब धन सम्पत्ति प्रभु के नाम पर देकर नितान्त शून्य हो जा और अपने लिए बिना प्रभु नाम कुछ भी न रख।

वेश्या—महाशय जी पहले इधर से जान तो मुक्त हो जाए, पता नहीं चांद २९ का कि ३० का।

ज्ञानप्रकाश—इस बात की भी जिम्मेदारी मैं लेता हूं। तुम हो निरपराध ही यह सबको विदित है क्योंकि मैं प्रार्थी को भी, न्यायाधीश को भी न्यायालय में वकीलों तथा कोर्ट इन्स्पेक्टर और सरकारी वकील से बात स्पष्ट कह दूंगा। यदि तू मेरे इस प्रस्ताव को मान जाए तो फिर तेरे मुक्त कराने का उत्तरदायित्व भी मैं अपने ऊपर लेता हूं तेरा जीवन पूजने योग्य हो जाएगा। वह स्वाद देखा है यह भी देख ले। तू यह समझ ले जैसे मुनीश्वर का भाग्य उदय हुआ वैसे तेरी नेकबख्ती भी इस अभियोग से उदय हो रही है।

वेश्या—बहुत अच्छा जैसा आप कहेंगे मैं वैसा ही करूंगी!

ज्ञानप्रकाश—बस अब सब विलास के सामान को अग्नि की भेंट कर दे। स्वर्ण, चांदी के आभूषण सब के सब बेच डाल, अपना मकान भी बेच दे। जमानत का रुपया भी लेकर, सब रुपयों का

अपने नाम का स्मारक, एक धर्मार्थ महिला औषधालय खोल दे और स्वयं खद्दर के वस्त्र धारण करके कब्रिस्तान में जा बैठ, प्रभु को स्मरण कर और पापों को याद करके फूट-फूट कर रो और ऐसी एकाग्र होकर लग जा कि तुझे अपने और पराये की कोई सुध बुध न रहे। क्षुधा तृष्णा का ध्यान भी भूल जा, अपने आप प्रभु के अर्पण हो जा। किसी ने टुकड़ा ला दिया तो खा लिया, नहीं तो सन्तोष से समय बिता दिया। यदि क्षुधा को सहन न कर सके तो नगर में आकर टुकड़ा मांग लिया, पका-पकाया, रूखा-सूखा वहां जाकर सन्तोष से जल पी लिया। यदि सच्चे हृदय से तूने ऐसा किया तो थोड़े दिनों में ही तेरे मुख पर तेज आ जायेगा और सब लोग तेज का दर्शन करने आया करेंगे। लोग तुझे फल, मेवे और मिठाइयां देंगे और तू उन्हें लात मारकर फेंका करेगी। इस तेज की यह बरकत (सिद्धि) है कि किसी भी सांसारिक वस्तु की इच्छा नहीं रहती और सब वस्तुएं बिना प्रभु स्मरण के फीकी नीरस मालूम पड़ती हैं।

❀ ❀ ❀

॥ ओ३म् ॥

पञ्चविंशोऽध्याय

मोतियों की श्रृंखला

तारने अथवा उतारने का साधन | गृहस्थियों को उपयोगी उपदेश

आज पाठशाला में भिन्न-भिन्न बातों का उपदेश बातों-बातों में होता रहा। सन्तोष कुमारी का वार्तालाप का सार यह था :—

(१) बालक और माता-पिता

जब किसी गृहस्थी के घर बालक उत्पन्न होता है, तो उनके जीवन में एक विशेष परिवर्तन हो जाता है। प्रकृति यह चाहती है कि पहले तो माता-पिता बालक की पालना तथा उसके मन में शुद्ध संस्कारों के जगाने के लिए संयम करें। दूसरे तप अर्थात् बच्चे की रक्षा के लिए अपने विश्राम को तिलाञ्जलि देनी पड़ती है। तीसरे त्याग अर्थात् बालक के पालन-पोषण अथवा शिक्षा के लिए यथा-शक्ति धन और समय का भी त्याग करना पड़ता है। चौथे प्रेम, क्योंकि बालक से स्वाभाविक रूप से प्रेम करना पड़ता है, जो कि अपने मान सम्मान का भी त्याग करा देता है। पांचवें उदारता।

यही पांच बातें विशेष रूप से गृहस्थी माता-पिता के बच्चे के पैदा होने पर उत्पन्न हो जाती हैं। कृपण से कृपण और पतित से पतित मनुष्य अपने बालक के लिए बहुत संयम न करे तो थोड़ा तो

करना ही पड़ेगा और तप, त्याग, प्रेम के बिना तो वह बालक के जीवन का आनन्द नहीं ले सकते ।

(२) पारिवारिक प्रसन्नता

परिवार में कमाऊ संतान को प्रसन्न रखने से अन्न, वस्त्र और मान अच्छा मिलता रहता है और माता-पिता को प्रसन्न रखनें में उनका अशीर्वाद और आत्मिक उन्नत्ति मिलती है । स्त्री को प्रसन्न रखने से सन्तोष और शान्ति मिलती है ।

(३) धरोहर और सम्पत्ति

गृहस्थी समझते हैं कि कन्या तो धरोहर है और पुत्र सम्पत्ति बुद्धिमान धरोहर (अमानत) की अधिक रक्षा करता हैं और निबुंद्ध सम्पति की । परन्तु प्रायः कन्या को पराया माल समझ कर उसके पालन पोषण तथा शिक्षा से लोग बेपरवाह रहते हैं और पुत्रों की सम्भाल पूरी-पूरी करते हैं, परन्तु जो धरोहर को सम्भालता है और उसकी पूरी रक्षा करता है, उसे प्रभु की आशीर्वाद मिलती है और जो पुत्र को सम्भलता है उसे धन और बढ़ाई मिलती है जिसका लोगों से सम्बन्ध है और जो अपने दोनों कर्त्तव्य पूरे करता है, उसे प्रभु प्रसन्नता और लोक प्रसन्नता दोनों ही प्राप्त होते हैं ।

(४) कौन किसका कच्चा

स्त्रियां कान की कच्ची हैं और पुरुष वाणी के कच्चे । नव युवक आंख के कच्चे और बालक उदर के कच्चे । अर्थात् स्त्री जाति देवी है, बड़ी भोली भाली । जो किसी ने सुना दिया उसी को सत्य मान लिया । एक आया, उसनें कुछ कहा तो वैसा सुनकर उसी की बन गई । दूसरा आया, उसने कुछ सुनाया तो उसी की हो गई ।

पुरुषों में यह रोग है कि वचन पर कायम नहीं रहता। कभी कुछ कभी कुछ।

नवयुवक ने आज एक रूपवान वस्तु को आँख से देखा तो उसी पर मोहित हो गया। कल दूसरी देखी तो उस पर मोहित हो गया बालक बात टिका नहीं सकते, इसीलिए उदर के कच्चे हैं, परन्तु जब कोई पुरुष उदर का भी कच्चा हो, चक्षु, वाणी कर्ण का भी कच्चा हो तो कहां ठिकाना ? सिवाय प्रत्येक स्थान पर मार पड़ने के और क्या प्राप्त करेगा ? यह वाणी आदि ज्ञान इन्द्रियाँ हैं। ज्ञान के कच्चे रह जाने से मनुष्य विश्वास, निश्चय और सदाचार से रहित हो जाता है। और जो लोग लेखनी के कच्चे हैं, वे सदा ही अपने धन का नाश करते हैं, उधार दिया लिख न सका, लिखा तो फिर पढ़ा न गया।

(५) स्त्री धन और वर्ण—स्त्री धन स्वर्ण है। इसके तीन अर्थ हैं। अधिभौतिक रूप में अर्थ है सोना और आधिदैविक में सु—सुन्दर, श्रेष्ठ वर पति का प्राप्त करना अर्थात् सज्जन धर्मात्मा और श्रेष्ठ पति ही स्त्री का धन है। तीसरा आध्यात्मिक स्व–अपना, अरुण—कपिल अङ्ग, अपने आत्मा के दो शरीरों में एक आत्मा एक जान समझना, यह स्त्री धन है।

(६) प्राणनाथ—जगत् में समय बिताऊ बहुत हैं, परन्तु समय की पहचान वाले बिरले ही हैं। समय श्वासों का बना हुआ है। एक श्वास का मूल्य किसी के पास अदा करने को नहीं। जिसने ही इस श्वास को समझा, उसी ने ही प्रभु और नेक कार्यों में ही अपना सारा जीवन बिता दिया। गृहस्थी

तो आजकल वक्त गुजारी कर रहे हैं, इसलिए उनका सुधार नही होता। वह भी किसी का सुधार नहीं कर सकते।

गृहस्थी स्त्री और पति तो एक आदर्श हैं। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासी को तो शायद चिर भी लग जाये, परन्तु गृहस्थी यदि अपने गृहस्थ सम्बन्धी धर्म को समझ ले तो उसे शीघ्र ही प्रभु सत्ता का मान हो जाये। स्त्री अपने पुत्र मे बड़ा प्रेम करती है, बल्कि उसे नेत्र ज्योंति और जिगर का अंश कहती है। पुरुष और स्त्री अपने गुरु को भी पूज्य देव और बुद्धि का स्वामी कह देंगे, परन्तु प्राण का स्थान तो स्त्री केवल अपने पति को ही तेती है और उसे मेरे प्राण प्यारे, प्राणनाथ कहती है संसार में सबसे प्रिय वस्तु एक प्राण ही है और प्राण नाम प्रभु का है, यदि स्त्री वास्तव में ऐसा समझ ले कि पति ही मेरा प्रभु और प्राण है, तो फिर भूलकर भी उसका निरादर और तिरस्कार न करे। उसे कभी कष्ट न दे। इसी लिए विवाह के समय सबसे पहली प्रार्थना यह करती है।

ओ३म् प्रमे पतियाना पन्थः कल्पताँ शिवा अरिष्टा पति लोकं गमेयं। (संस्कार विधि विवाह प्रकरण)

अर्थात् हे प्रभु मेरा भी वही मार्ग हो जो मेरे पतिदेव का है। किस लिए ? (शिवा) यह मार्ग कल्याणकारी है ताकि (अरिष्टा) निर्विघ्न मैं (पतिलोकं गमेयम्) पतियों के पति परमदेव परमात्मा के लोक को प्राप्त कर सकूं। वह स्त्री कभी मुक्त नहीं हो सकती जो पति को पति नहीं समझती। स्त्री पुरुष मैं जो त्याग व प्रेम बिना दिखावे के होता है वह किसी और में नहीं हो सकता और मुक्ति के लिए त्याग और प्रेम भी सब से बड़े साधन हैं। परन्तु आज

कल गृहस्थियों का त्याग प्रेम बिना ज्ञान के है और ज्ञान रहित त्याग और प्रेम रहित ज्ञान ही गृहस्थ आश्रम को नरक और जंजाल बना रहा है।

(७) स्वाधीन कौन

स्त्री जाति अपने आपको अधीन मानती है, कहती है जब बालिका थी तब माता-पिता के अधीन रहना पड़ा। जब ब्याही गई तब पति के अधीन रहना पड़ा, जब पति का देहावसान हो गया अथवा वानप्रस्थ को चला गया तो पुत्रों के अधीन रहना पड़ गया। स्त्री कीतो सारी आयु अधीनता में ही व्यतीत हो गई। पुरुषस्वाधीन है। स्त्री का कब सुधार होगा ? यह बड़ी भूल है। स्त्री किसी पराये के अधीन तो कभी होती ही नहीं, माता पिता के अधीन है तो प्रेमवश, पति के अधीन है तो प्रेम के अधीन। पुत्रों के अधीन है तो प्रेम त्याग के अधीन। परमात्मा पिता भी है और पति भी। मुक्ति में भी तो सबको उस पिता और पति की अधीनता ही है। उसे सब कोई चाहता है। इसलिए स्त्री को तो प्रेम की अधीनता ही है। उसे सब कोई चाहता है। इसलिए स्त्री को तो प्रेम की अधीनता ही है किसी अन्य की नहीं। अधीनता सदैव किसी अन्य की समझी जाती है। पुरुष बेचारा विवश है, किसी पराधीन नौकरी पेशा का तो कहना ही क्या हैं। व्यवहार तथा निर्वाह करने में धनी होकर भी वह अपने मुनीम, सेवकों, लेखकों, व्यापारियों, बैंक वालों के आधीन ही अधीन है। और स्वार्थ वश सबके अधीन है, प्रेमवश नहीं। उसका प्रेम भी स्वार्थ के लिए हैं और यह स्वार्थ ही पराधीनता की जड़ है। इसलिए पुरुष का दर्जा ऊंचा नहीं,

स्त्री का दर्जा ऊंचा है, जिसकी सहायता कुदरत (प्रकृति) भी करती है।

(८) मासिक धर्म के समय एकान्त सेवन

जो अध्यापिकाएं पाठशाला में कन्याओं को मासिक धर्म के दिनों में भी पढ़ाती रहती हैं। यदि वह कभी भी क्रोध में आ जायें अथवा कोई ऐसा अनुचित व्यवहार करें जो आयुर्वेद शास्त्र के विरुद्ध हो तो वे स्वयं रोगी बन जावेंगी। ऐसी अवस्था में उनका कन्याओं के सामने रहना भी आध्यात्मिक तथा मानसिक रीति से अशुद्ध ही है, जिसका गुप्त प्रभाव अवश्य पड़ता होगा।

अन्य देश उन्नति कर रहे हैं, परन्तु भारत क्यों नहीं करता?

(९) मातृशक्ति के निरादार का फल

मनु भगवान और वेद भगवान की आज्ञानुसार मातृ-शक्ति की पूजा जिस देश में होती है, वही देश उन्नति पथ होता है। आर्थिक उन्नति के लिए प्रत्येक मनुष्य की माता, उसकी राष्ट्रभूमि माता अर्थात् जननी जन्म भूमि है, जो देवियां अपनी देश-माता पर बलिदान हो जाती हैं, उनके लिए उनकी सन्तान भी बलिदान होने के लिए तैयार होती है। यह स्थूल माता है। दूसरी शारीरिक उन्नति। जिस देश में गौ माता का सम्मान है वही देश शारीरिक उन्नति कर सकता है। योरुप और अमेरिका में जो गौओं की रक्षा और उन्नति है, वह किसी से छिपी नहीं।

मानसिक उन्नति, उस देश जाति अथवा व्यक्ति की होती है जो अपनी जन्म दाता माता का सच्चा सम्मान करता है, उसकी आज्ञा के आगे सिर झुकाता है। आत्मिक उन्नति उसकी होती है

जो विद्या सरस्वती माता के लिए त्याग करता है। हमारे देश में इन सभी प्रकार की माताओं का सम्मान नहीं, अतः भारत गारत हो रहा। जब सम्मान होगा, फिर से उन्नति के शिखर पर चमकेगा।

(१०) गृहस्थान गृह में दीपक का स्थान पूर्व में होना चाहिए और यज्ञशाला भी पूर्व में। पाकशाला (रसोई), अन्न धान्य का कोठा पश्चिम में, सत्संग अतिथि गृह, देव, पितरों, अतिथियों के स्थान तथा और और पदार्थों के स्थान दक्षिण में बनाने चाहिएं। जल, दुग्ध, औषधि का स्थान उत्तर में और धन लक्ष्मी का स्थान भूमि के नीचे बनाना चाहिए। पुस्तकालय तथा अन्य कागज ऊपर रखने चाहिएं।

(११) रसोई की सामग्री घरों में जल, दुग्ध, घृत, दाल, चावल, आटा आदि नंगे कभी न रखने चाहिएं और ढके हुए भोजन जब भी निकालें तब फिर देख लेना चाहिए। जल और दूध पीते समय प्रकाश में अवश्य देख लेना चाहिए। चाहे स्वयं ही घड़े से जल निकाला क्यों न हो फिर भी देख कर पीना चाहिए।

❀ ❀ ❀

॥ ओ३म् ॥

षड्विंशोऽध्यायः

नाम अग्नि

होनी—] [—होली

मुनीश्वर ने जब घूंस त्याग का व्रत किया और माल सब वापिस दे दिया तो उसके सीने से भार बहुत हल्का हो

राख से लाख

गया, परन्तु फिर भी उसके मन में यह भय लगा रहा कि मुन्शी और वकील को जब यह ज्ञान है तो यह कहीं और स्थान पर इसका वर्णन न कर दें और साहब तक यह बात न पहुंच जावे, रात्रि को जब लज्जावन्ती ने पूछा तो सब समाचार उसे कह सुनाया, लज्जावन्ती सुनकर बहुत प्रसन्न हुई।

(२)

लज्जावन्ती ने सन्तोषकुमारी को समाचार सुनाया तो सन्तोष कुमारी ने कहा, इस घूंस का जो धन तुम्हारे पास है वह भी विष है। उसे तुम अपने पास न रखो, वापिस करो। देखों तुमको इस रुपये की आवश्यकता नहीं, न तुमने वस्त्र खरीद करता है, न कुछ खाने का सामान ही और न भवन तथा स्थान बनवाना है। बताओं तुम उसका क्या करोगी। यदि तुम मर जाओ तो रुपया यहां ही धरा रहेगा। हराम के धन से मन भी हरामी ही बना रहता है और बुद्धि में भी स्वार्थ भरा रहता है। वेद की आज्ञानुसार अभी बच्चा उत्पन्न होता ही है कि पिता उसके कान में मन्त्र पढ़ता है—

ओं इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम्॥
ऋ० मं० २ सू० २१ मं० ६॥

हे परम ऐश्वर्य युक्त सर्व प्रकार के धन के स्वामी ईश्वर! (श्रेष्ठानि द्रविणानि) अत्यन्त रोचक श्रेष्ठ नेक कमाई वाले धन दौलतकोहमारे लिएदीजिये और कर्म करने की सामर्थ्य की प्रसिद्धि प्रदान कीजिए और हमको सौभाग्य दीजिये, बहुत सा धन दौलत दीजिए, अङ्गों की या पितरों की अहिंसा को दीजिए, वाणी को मधुर मिठास दीजिए, उत्तम दिन दीजिए तथा कोई हमारे शरीरों को नष्ट न कर सके। वाणी की मधुरता और सर्व प्रकार की निर्विघ्नता प्रदान कीजिए अर्थात् हमारे जीवन के दिन इस प्रकार बीतें जिसमें यज्ञादि शुभ काम होते रहें। किसी को दुःख कष्ट न देवें।

इसलिए उनसे कहें। अपनी सम्पत्ति वापिस ले लेवें। हराम के धन और अन्न से जो मन बनेगा, उससे विचार खराब होंगे। जो इस अन्न से रक्त और वीर्य बनेगा, उससे खराब सम्पत्ति उत्पन्न होगी। ऐसा धन जीवन में वंश और प्रतिष्ठा को नष्ट करने वाला होता है।

(३)

लज्जावन्ती ने अपने पतिदेव से कहा कि मैं इस रुपये को नहीं रखना चाहती। आप वापिस ले लें, जहाँ इच्छा आये वहाँ डाल दें। मुनीश्वर ने बहुत वाद विवाद किया, परन्तु अन्त में लज्जावन्ती ने सन्तोष कुमारी का वेदोपदेश सुनाया तो उसने स्वीकार कर

लिया कि अच्छा किसी दिन ले लेंगे तनिक अभियोग का निर्णय हो जावे।

(४)

अब होते होते अभियोग की तिथि आ गई। हत्या का अभियोग था। न्यायालय में बड़ा जन समूह था। ज्ञानप्रकाश जी भी अपनी ओर से जिम्मेवार व्यक्तियों से मिलते मिलाते रहे और वह भी उस दिन न्यायालय में दर्शकों में आ खड़े हुए। न्यायाधीश ने अभि-योग सुनने के बाद निर्णय दिया कि वेश्या को तो मुक्त किया जाता है और शेष अन्यों को दोषी ठहराया (फर्द जुर्म लगा दिया)। वेश्या ने धन्यवाद किया। न्यायालय में ही साहब की प्रशंसा और न्याय की श्लाघा करने लग गई। न्यायधीश ने कहा, 'अरी फकीरनी! तेरे कुछ कर्म अच्छे थे। तेरा किया हुआ कोई प्रबल पुण्य तुझे मुक्त करा रहा है। अब तू यह व्यभिचार कार्य छोड़ दे तो अच्छा है। बीस सहस्र रुपये का चेक ले ले और बड़ी सुविधा से इस पर निर्वाह करती रह।'

ज्ञानप्रकाश—यह तो अब सचमुच साधुनी बन जाने वाली है और इस सब रुपये को भी परमेश्वर के नाम पर लगा देगी। और कोई पूर्व महा पुण्य इसे इस हत्या के अभियोग से मुक्त करा रहा है। तो अब वह किया हुआ पुण्य भी पता नहीं इसे कैसा अच्छा फल दिलायेगा?

अन्य जन—महाशय जी! इसमें क्या सन्देह है?

(५)

वेश्या ने चैक लिया और बैंक में जमा करा दिया। परमात्मा

का धन्यवाद किया और प्रेम के अश्रु बहाती हुई बड़ी प्रसन्नता से अपने घर चली गई ।

अब इसे बधाई देने के लिए मकान पर पुराने नौकर चाकर, मित्र (यार आशना) आदि आने आरम्भ हुए । वह सब का आदर सत्कार करती रही और ऐसे वाक्य उसकी वाणी और मस्तिष्क से निकलने लगे जैसे कि विरक्त महात्मा संन्यासी कहते हैं । सुनने वाले चकित हो जाते । उनका एक मोहित प्रेमी जमींदार भी उन्हीं में था, कहने लगा, 'अब आपको किसी और नगर में डेरा लगाना चाहिए और इस शहर को छोड देना चाहिए ।'

वेश्या—आपका परामर्श बहुत अच्छा है । अच्छा तैयारी करो, किसी को तैयार करके आज इस मकान का सौदा कर दो : इसका पैसा वसूल करके फिर इस नगर को छोड़ दूं ।

प्रेमी जमींदार दौड़ा । मकान बड़े अच्छे स्थान पर सुन्दर, बहुमूल्यवान और विशाल बना हुआ था । अनेकों धनियों के पास पहुंचा । किसी हिन्दू सेठ ने साहस न किया । वेश्या का मकान है, गन्दे परमाणुओं से भरा हुआ है । अगर ले भी लें तो वेश्या के मकान से प्रसिद्ध होगा । हाँ, मुसलमान जमींदार बड़े साहसी होते हैं, उनके पास इतना धन कहां । फिर फिरा कर वापिस आया । कई दलालों के जिम्मे लगाया । अन्ततः वेश्या महाशय ज्ञानप्रकाश जी के पास गई और कहा मेरे मकान को बिकवा दो और उसने अपने स्वर्ण तथा रजित के जड़ाऊ आभूषण, मोती-जवाहरात आदि तथा अन्य सब सम्पत्ति उनके सुपुर्द कर दी कि इनको भी बेच दें ।

महाशय ज्ञानप्रकाश जी, चौधरी दीवानमल जी तथा अन्य कई बड़े-बड़े धनपतियों के पास गए, परन्तु मकान लेना तो किसी ने पसन्द न किया, अपितु आभूषण, मोती आदि किसी सर्राफ के द्वारा किसी बड़े नगर में विक्रयार्थ भेज दिये गये। तत्पश्चात् वह स्वयं मुनीश्वर के पिता सेठ जी की दुकान पर और उनसे कहा कि वेश्या तो बिल्कुल तैयार हो गई है पचीस सहस्र नकद बैंक में है, चैक तथा कैश और २५ सहस्र के जवाहर, मोती, आभूषण आदि भी होंगे। और २५-३० सहस्र का मकान भी होगा। इस प्रकार ७०-७५ सहस्र रुपया तो यह हो गया।

अभी यह बात हो रही थी, कि एक व्यक्ति बाहर से शोर मचाता सुनाई दिया कि वेश्या बेचारी के गृह में अग्नि लग रही है, पता नहीं कि वेश्या भी बची कि नहीं। इधर अभियोग और फांसी के दण्ड से तो बच गई थी, अब न जाने यहाँ बची कि मर गई।

ज्ञानप्रकाश जी और सेठ जी के कानों में भी ये शब्द पहुंचे। यह सुनकर दुकान पर बैठे हुए मुनीश्वर के सब भ्राता और उनका पिता और महाशय जी लोटा, घड़ा, बाल्टी आदि उठाकर बड़ी शीघ्रता से उधर दौड़े कि यदि हो सके तो अग्नि को शान्त करें और उसकी सहायता करें। दूर से देखा कि अग्नि की ज्वालाएं बड़े वेग से उठ रहीं थीं, धुँआधार हो रहा था। मकान पर पहुंच गये तो देखा कि यहां पर असंख्य लोग जमा हैं और एक होली सी लगी है। बहुमूल्य सुन्दर वस्त्र जिनका प्रकाश ही विषयी लोगों की आंखों को मोहित करके उनका धर्म ईमान हर लेता था, उन्हें आज वह

स्वयं ही अग्नि की भेंट कर रही है और लोग यह कह रहे हैं, 'अरी ! बावली हो गई है, क्या कर रही हो। सहस्रों रुपये का माल तथा सम्पत्ति व्यर्थ जला रही है। किसी निर्धन को दे देती तो उसका भी भला हो जाता। क्या तू फिर और खरीदती फिरेगी ?"

वेश्या—हां जिस प्रकार इन रङ्ग-बिरंगे, चमकीले, भड़कीले वस्त्रों ने मुझे कामाग्नि में जला दिया था, उसी प्रकार अब मैं भी इनको नामाग्नि में जला रही हूं। अब मैं इनसे बढ़िया मूल्यवान वस्त्र पहनूंगी। इन वस्त्रों पर जगत् के विषयी मोहित होते थे और अब के वस्त्रों पर जगत के वशो को मोहित करुंगी।

फिर वह बड़े जोर से चिल्ला कर कहने लगो, ऐ चौबीसों घण्टे मेरे दुराचार की रक्षा करने वाले दरो दिवारो ! तुम भी अपने पापमयी शरीरों को इस अग्नि से पाक तथा पवित्र कर लो। ऐ इस सुन्दर भवन की छत के परदो ! कड़ियो ! शहतीरो ! तुम्हारी छाया के नीचे मुझ दुराचारिणी ने कई कुल खराब, विध्वंस तथा नष्ट किये और मेरे पाप के जो परमाणु तुम से चिमट रहे हैं आज उन्हें इस नामाग्नि में जलाकर तुम भी शुद्ध तथा पवित्र हो जाओ ! हे प्रिय भूमि माता ! तुम पर मेरे नाजों, नखरों से ठमकने वाले पांवों तुझे लताड़ लताड़ कर पापों का ढेर लगाते रहे, आज तू भी इस अग्नि से शुद्ध (पवित्र) हो जा।

ये सब सामान जलाकर वह अन्दर गई, अपने नवीन वस्त्रों को उतारा, घुटनों तक एक लम्बा खद्दर का चोगा पहन लिया और अन्त में इन वस्त्रों को भी अग्नि की भेंट कर दिया। लोग यह दृश्य देखते रहे और चकित होते रहे।

फिर वह ज्ञानप्रकाश जी से बोली, 'महाशय जो ! अब यह मकान परमात्मा की आज्ञा से उसकी नाम अग्नि में बिल्कुल शुद्ध पवित्र हो गया है, अब इसका सौदा बना दे। पहले इसे कोई न लेता था, क्योंकि यह दुराचारिणी वेश्या का मकान था, अब यह मकान मेरा नहीं रहा, उसी शुद्ध पवित्र परमात्मा का है जिसको नाम अग्नि से अब यह पवित्र हो गया है।'

नगर के प्राय: सभी लोग भूमिपति (जमींदार) ऐश्वर्यशाली तथा कङ्गाल वहां एकत्र थे। एक बड़े भूमिपति के मन पर इस घटना का बड़ा प्रभाव पड़ा। वह कहने लगा, 'भाईयों ऐ धनपति भ्राताओ ! मेरे पास नकद रुपया तो नहीं है, यदि मुझे कोई हिन्दु धनवान रुपया दे देवें तो मैं २५ सहस्र रुपया इस मकान का देने को तैयार हूं।

चौधरी दीवानमल बोले, 'अच्छा २५ सहस्र रुपया मैं दे दूंगा यदि तुम इसे खरीदने को उद्यत हो।' वहां ही खड़े खड़े सौदा बन गया, वेश्या और भूमिपति दोनों चौधरी दीवानमल के मकान पर चले गये और अर्जीनवींस को बुलाकर पट्टा दस्तावेज लिखवाने लगे।

(७)

महाशय ज्ञानप्रकाश, सेठ जी और उनके पुत्र दुकान पर वापिस आ गये और अब उनमें इस प्रकार वार्तालाप होने लगी।

सेठ—वाह ! भाई वाह ! वेश्या बड़ भाग्य जागे, कितना वैराग्य उसे हो गया। सचमुच देर भी नहीं की और सब कुछ जला दिया, कैसे-कैसे शब्द बोलती रही और खिलका भी पहन लिया। क्या ही विचित्र बात है, परमात्मा जिनके मन को बदले उसे यह संसार और संसार का यह सब सामान फीका सा मालूम होने लगता

है। परमेश्वर हमको भी ऐसा वैराग्य देवें कि हम इस गृहस्थ के माया जाल को छोड़ कर अब यह जीवन उसी की शरण में बिता दें, परन्तु क्या करें मोह माया पीछा ही नहीं छोड़ती। वह कितनी बदनाम थी और अब कैसे नेक नाम हो गई है या तो अभियोग के चक्र में सूखकर काँटा हो गई थी अब मुख कितना उज्जवल है और कितनी प्रसन्न दिखाई दे रही है।

ज्ञानप्रकाश—अब ७५ सहस्र रुपया तो बन गया। मेरा विचार है २५ सहस्र और हो जावें तो एक लाख से कार्य अच्छा चल सकेगा।

सेठ—तो चन्दा कर लिया जावे। २५ सहस्र ऐसे महान् कार्य के लिए एकत्रित हो जाना कोई कठिन नहीं है। अथवा यह ७५ हजार रुपया सरकार को देकर प्रार्थना की जावे कि वह २५ हजार रुपये खजाने से देकर इस एक लाख रुपये से धर्मार्थ औषधालय (हस्पताल) खोल दे।

ज्ञानप्रकाश—नहीं, यह ठीक नहीं है। मेरा परामर्श है कि इसका ट्रस्ट बना दिया जावे और उसे राज्य के आधीन कर दिया जावे ताकि न तो कोई गबन (अपव्यय) ही कर सके और न कोई कुप्रबन्ध हो। हमारे लोग पहले तो भले ही सद्व्यवहार से चलायेंगे, परन्तु आगामी सन्तानों का पता नहीं, कौन कैसी निकले। राज्य का हाथ रहने से निश्चिन्तता रहेगी। अच्छा मुनीश्वर आ जावे उससे भी परामर्श ले लेंवे। वह बुद्धिमान भी है और वकालत भी पास है।

अभी यह वार्तालाप हो रही थी कि मुनीश्वर भी आ गया। महाशय ज्ञानप्रकाश जी को अपनी दुकान पर बैठा हुआ देखकर फिर

कुछ आश्चर्य सा करने लगा और हंसते हुए बोला, 'चाचा जी ! आज फिर होश खता करने आये हैं अथवा कोई बला गले से टालने आये हैं ?' ज्ञानप्रकाश प्रभु की कृपा से तुरन्त उत्तर देने में दक्ष था। प्रभु ने कुछ और ही इनके मन में डाल दिया। यह सुनकर मुस्कराते हुए बोले, 'पुत्र होश खता करने तो नहीं आया हूं अपितु तुम्हारी सुधबुध ठीक करने अथवा बला सिर से टालने अवश्य आया हूँ।'

मुनीश्वर—वह क्या ?

ज्ञानप्रकाश—वेश्या की होली का तो सब हाल तुमने सुन लिया होगा।

मुनीश्वर—जी हां ? न्यायालय में उसकी होली का समाचार सुनकर सब वकील, मुन्शी, कर्मचारी, अभियुक्त और अफसर अंश-अंश (वाह-वाह) कर रहे हैं। क्या ही कमाल किया ? क्या यह अभियोग उसके दुराचार की बला को टालने के लिए उसके सिर पड़ा था।

ज्ञानप्रकाश—पुत्र ! पहले तो तुझे विचार नहीं आया था परन्तु अब तुम्हारे मुख से इन शब्दों के निकलने पर कि 'क्या कोई बला सिर से टालने आये हो।' निस्सन्देह प्रभु ने मुझे प्रेरणा कर दी है कि मैं आपसे यह कह दूं कि सम्पति आनी जानी है, किसी ने साथ नहीं ले जानी, फिर गुनाह बेलज्जत (नीरस पाप) से अपने आप को दुःखी करने के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं होता है। ७५ सहस्र रुपया उस वेश्या का बन गया है। और अब मेरी इच्छा है कि पचीस सहस्र रुपया और मिला कर एक लाख का

ट्रस्ट बना दिया जावे। तुम्हारे पास जो घूंस का अपवित्र मैला धन है तुम भी उसे निकाल दो तो परमेश्वर तुम्हें बहुत आशीर्वाद देगा। तुम्हारा इससे बहुत भला होगा।

मुनीश्वर—(हंसते हुए) खाया हुआ कौन उगले ?

ज्ञानप्रकाश—भाई ! मेरी तो आंखों देखी ऐसी घटनाएं बहुत सी हैं और शास्त्रकारों ने भी जीवों के कल्याण के लिए ऐसा ही कहा है। यदि तुम्हारा परमेश्वर, वेदों, ऋषियों, मुनियों और सद् शास्त्रों पर कुछ विश्वास है तो देखो मनु भगवान् क्या कहते हैं-

अधार्मिको नरो यो हि यस्य चाप्यनृतं धनम्।
हिंसारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुख मेधते ।।४।१७०।।

अर्थात् जो पापी मनुष्य है और जिसने धन अधर्म से इकट्ठा किया हुआ है जो सदैव हिंसा करता है, वह इस लोक और परलोक में अर्थात् दूसरे जन्म में भी कभी सुख प्राप्त नहीं कर सकता। बल्कि इससे भी बढ़कर मनु ने तो यहां तक लिख दिया है कि 'मनुष्यों को निश्चय करके यह जान लेना चाहिए कि इस संसार में जैसे गौ आदि की सेवा का फल दूध आदि शीघ्र प्राप्त नहीं होता, वैसे ही किये हुए अधर्म का फल शीघ्र नहीं मिलता, किन्तु धीरे-धीरे अधर्म करने वाले के सुखों को रोकता हुआ उसके सुख मूलों को काट देता है पश्चात् (अधर्मी) पापी दुःख ही दुःख भोगता है।

यदि अधर्म का फल पापी को नहीं मिलता तो उसके पुत्र, पौत्रों को अवश्य मिलेगा। किया हुआ कर्म कभी भी निष्फल नहीं जाता। (देखो संस्कार विधि गृहस्थ आश्रम प्रकरण)।

ना धर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव ।
शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति ।। मनु० ४।१७२।।
यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत्पुत्रेषु नप्तृषु ।
न त्वेवतु कृततोऽधर्मः कर्तुर्भवति निष्फलः ।। मनु० ४।१७३।।

मुनीश्वर वह सुनकर डर गया और बोला, 'चाचा जी ! आपने आपत्ति मेरे सिर से क्या टाली अपितु और गले में मढ़ दी। मुझे तो सुख नहीं मिल सकेगा, इस जन्म में भी और पर जन्म में भी। अच्छा मेरी धर्मपत्नी के पास जो रुपया है, वह उसे नहीं रखना चाहती। उसने मुझे कहा था—'इसे उठा ले जायें, जहां फैंकें, आपकी इच्छा।' मैं ऐसे पाप के पैसे को रखकर क्या करूंगीं ? वह मैं ले आता हूँ।

मुनीश्वर तो घर से वह रुपया लाने के लिए चला गया, परन्तु मुनीश्वर के पिता और भ्राताओं को यह बात न जंची कि यदि जीते जी पापी को पाप का फल न मिला तो उसके बाद उसके पोतों को मिलेगा। अतः सेठ जी ने पूछा कि पापी तो कई प्रकार के सुख भोगता हुआ चल दे और कोई भी दुःख न देखे, मैं भी अपने जीवन में कई ऐसे व्यक्ति देख चुका हूँ, जिन्होंने पाप भी खूब कर लिए और जीवन भर नाम मात्र भी कष्ट नहीं देखा अपितु मृत्यु भी ऐसे हुई जैसे ऋषियों मुनियों की अर्थात् उनके प्राण पखेरू वैसे ही आराम से उड़ गये।

ज्ञानप्रकाश—आपकी बात ठीक है। पूर्व जन्मों के प्रबल पुण्य ऐसे भी किसी के होते हैं कि उनके पाप अपना फल भुगवाने की

प्रतीक्षा में उस समय तक रुके रहते हैं जब तक उनका पुण्य समाप्त न हो जाए। मैं एक सच्ची घटना आपको सुनाता हूं। पहले मुझे स्वयं इस श्लोक पर संशय रहता था परन्तु एक बार इसका प्रत्यक्ष प्रमाण मिल गया।

मुल्तान नगर में चौक के पास एक धनाढ्य रहा करता था। उसका काम चोरी ठगी आदि का माल सस्ते भाव पर खरीदना था। वस्त्र, स्वर्ण, आभूषण, जवाहर आदि सभी प्रकार का माल वह मोल लिया करता था। दूर-दूर के प्रसिद्ध नामी चोर आते थे, उसे सस्ता माल दे जाते थे और रुपया ले जाते थे, इसी से ही वह अपने जीवन काल में बड़ा धनी बन गया और किसी ने पूछा तक भी न। जब वह मर गया तो उसका पुत्र (जो युवा हो गया था) ने दुकान सम्भाली परन्तु वह यह कार्य बिल्कुल नहीं करता था उसके पास रुपया भी बहुत था इसलिए वह सर्राफी और बजाजी आदि का कार्य करता था। उसका विवाह हो गया। पुत्रोत्पन्न हुआ और वह भी होते-होते जवान हो गया जब पिता मर गया तो उसने कार्य का भार सम्भाला। वह नवयुवक बड़ा सदाचारी था और अपने पिता-मह वाला काम सर्वथा नहीं करता था परन्तु एक दिन पुलिस के एक सब-इन्सपेक्टर ने दूसरे जिले के कई चोरों को हथकड़ी लगाये मुल्तान कुप पोलीस की सहायता साथ लिए उसी दुकान को आकर घेर लिया। लड़का अभी घर से न आया था। उसे घर से बुलवाया। एक बूढ़े चोर ने कहा, दुकान तो यही है परन्तु जिसको हम चिरकाल बीता, माल दे जाते थे, वह वयोवृद्ध था। बालक से पूछा गया, तो उसने कहा कि "मैं उसका पोता हूं"। द्वार खुलने

पर तलाशी ली गई। उपस्थित व्यक्ति को (जिसकी चोरी हो गई थी) उसका माल तो बरामद न हुआ परन्तु ऐसा बहुत-सा माल निकला जिसको देखकर चोरों ने कहा कि ये हम दे गये थे। उस माल को पुलिस ने कब्जे में कर लिया। फिर उसके घर को तलाशी हुई तो बहुत सी पुरातन चोरियों का माल वहां से निकला। नौजवान लड़के को हथकड़ी लग गई। वह कारावास में दे दिया गया। नगर में हाहाकार मच गई कि यह बालक तो धर्मात्मा और निष्पाप था। चुनांचे दूर-दूर के लोगों ने अपने चोरी गये माल को आकर पहचाना और उस बालक को दण्ड दिया गया तब मैंने समझा कि पितामह की आत्मा ने ही पौत्र के रूप में जन्म लिया है। इस प्रकार अपनी करनी स्वयं ही भोग रहा है।

सेठजी—हमारे ऋषि मुनी बड़े दीर्घदर्शी थे। वह अन्तर्ध्यान होकर सब कर्मों के परिणाम को दिव्य चक्षुओं से देखकर लिख गये हैं वैसे ही मनमानी नहीं लिख गये।

सेठ और उसके पुत्र यह सुनकर बड़े घबराये और कहा, 'महाशय जी! आपने तो हमको भी जीने योग्य नहीं छोड़ा, अब हम कैसे करेंगे? हमसे तो अनेक पाप होते हैं।'

ज्ञानप्रकाश—क्या करें भाई! परमेश्वर का भय रखना सबका ही काम नहीं। इतने में मुनीश्वर भी पहुंच गया और एक ओर बैठ कर बातें सुनने लगा। ज्ञानप्रकाश जी ने अपनी बात को जारी रखते हुए कहा, 'सेठजी अति मूढ़ तमोगुणी अवस्था वाले मनुष्य को न तो पाप और न पमेश्वर से ही भय है और न लज्जा। जो भले मनुष्य पाप और परमेश्वर से भय खाते हैं वे रजोगुणी होते हैं

और जो श्रेष्ठ पुरुष पाप से लज्जा और प्रभु से भी लज्जा खाते हैं वह सतोगुणी होते हैं। जो श्रेष्ठतम लोग पापों से घृणा करते हैं और उसे अपनी आत्मा का पाप समझते हैं वे शुद्ध सतोगुणी होते हैं।'

सेठ—मुनीश्वर ! हम तो भाई डर गये। हम कभी कभी कथा पोथी सुनने जाते हैं परन्तु ऐसी बात कोई नहीं बताता। अब क्या विचार है ?

मुनीश्वर—पिताजी मैं तो लज्जावन्ती का पन्द्रह सौ रुपये ले आया हूं यही उसके पास था। मैं प्रतिदिन उसे और अपनी भावजों और माताजी को भी कुछ न कुछ दे दिया करता था और शेष दुकान पर आकर आपको दिया करता था, घर वालो का तो ले आया हूं। अन्यों से मांगना उचित नहीं समझा। उन्हें क्या और कैसे समझाता और क्या कहता न कोई मेरे पास लेखा है किसी से कहूं कि मैंने कितना अनुचित रुपया कमाया।

सेठ—देख पुत्र ! तूने तो अपनी दुकान देखकर डाल दिया परन्तु तेरे बड़े भाई चतुर हैं उन्होंने तेरा खाता बांध रखा है। प्रति दिन रोकड़ मिलाने के लिए जैसे हर किसी की आय (आमदनी) जमा करते हैं वैसे तुम्हारी भी कर रखी है और जो तुम्हारे सम्बन्ध में खर्च होना है वह सब इसी खाता में तुम्हारे नाम लिखते हैं, उदाहरणार्थ साहब को जो वस्तुएं जाती हैं अथवा तुम ऐसे व्यय के लिए जो मांगते हो। कहो तो खाता निकाल कर देख लें।

मुनीश्वर—अवश्य निकाल कर देखें। न यह बला घर में रहेगी न हम दण्ड भोगेंगे। न बाल-बच्चे पुत्र पोते तक इसके कारण किसी दुःख के अधिकारी रहेंगे। मैं तो भावुक व्यक्ति हूं मुझे तो इस

चिन्ता से निद्रा नहीं आती कि न जाने कब कोई दुःख की घड़ी आये और मैं किसी मुश्किल में फंस जाऊं।

ज्ञानप्रकाश—शाबाश! यह भी तुम्हारा सौभाग्य उदय हो रहा है। तुम मुझे किसी समय आशीर्वाद दोगे। गीता में आता है।

नेहाऽभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥

अ० २ श्लोक ४०

"धर्म इतना विशाल है कि थोड़ा सा करने पर भी बहुत सा फल देता है और बड़े भयङ्कर भय से रक्षा करता है"। तुम देख लेना कि तुम्हें इसका फल परमेश्वर क्या देते हैं। तुम्हारा सारा घराना सुधर गया निष्पाप जीवन हो गया, पाप की कमाई न रही न आगे पाप करोगे। यह कोई तुच्छ बात है।

(८)

मुनीश्वर के भ्राता ने लेखा तो २० सहस्र का योग किया, डेढ़ हाथ लज्जावन्ती वाला था, ये साढ़े २१ सहस्र हो गया। अब लाख में साढ़े तीन सहस्र की न्यूनता रही। ज्ञानप्रकाश मौन अवस्था में बिना कुछ कहे, सहसा उठ खड़ा हुआ और कहा, "मैं अभी आता हूं।"

ज्ञानप्रकाश सीधा चौधरी दीवानमल के डेरे पर पहुंचा, अभी पट्टा लिखा जा रहा था। पहले कच्चा मसौदा बना था पूरे इस्टाम मिलने में न आते थे। महाशय ज्ञानप्रकाश ने कहा, भाई पट्टा लिख तो नहीं डाला!

सब (बैठे हुए) क्यों महाशय जी ! क्या बात है ! क्या कोई इससे अधिक मूल्य देने को तैयार है !

जमींदार—नहीं भाई ? अब धर्म से विमुख नहीं होना, वचन एक हुआ करता है, उस समय किसी को ध्यान नहीं आया, अब किसको जनन हो गया है । तुम लोग हिन्दू साहूकार हो, सहस्रों के सौदे करते हो कभी नहीं विमुख हुए, अब मैं विमुख नहीं होने दूंगा।

ज्ञानप्रकाश जी सर्वथा मौन रहे । अर्जी नवीन पट्टा लिखने से रुक गया ।

चौधरी—क्यों महाशय जी ! क्या बात है ?

ज्ञानप्रकाश—आओ मेरी बात एकान्त में सुन लो । जमींदार साहब रुष्ट न होंवे ।

चौधरी और ज्ञानप्रकाश बाहर आ गए । ज्ञानप्रकाश ने संक्षेप से वृतान्त कह सुनाया । कुछ देर लगी तो जमींदार बडा भयभीत हुआ कि शायद सौदा हाथ से जाता है । ज्ञानप्रकाश ने कहा, साढ़े ३ सहस्र रुपया एक लाख से कम होता है, यह जमींदार से कहने आया था, परन्तु उसने कुछ और समझ लिया । चौधरी ने कहा, अच्छा ! भीतर आइये । दोनों भीतर चले गये ।

जमींदार—क्यों ? धर्म ठिकाने है ना ?

चौधरी—हां धर्म ठिकाने है पर अब तुम्हारे धर्म की परीक्षा है।

जमींदार—कैसा धर्म ?

चौधरी—तुम धर्म से कहो यह मकान २५ सहस्र का है अथवा इससे अधिक का ?

जमींदार—भाई ! सत्य और धर्म की बात कहलाते हो, मुझे

तो कोई पता नहीं। जब प्रातः दलाल मेरे पास आया था, तो उसने कहा था कि मकान ३० सहस्र से भी अधिक मूल्यवान है। यदि किसी हिन्दू ने लिया, तो वह ३० सहस्र में लेगा। यदि किसी हिन्दू ने दिल न रखा तो पुनः २५ सहस्र से अधिक बिकने वाला नहीं। इसीलिए मैंने झट २५ सहस्र मुख से कह दिया था और मुझे कोई पता नहीं।

ज्ञानप्रकाश—शाबाश, भाई जमींदार! तेरे ईमान को शाबाश है। न हम धर्म से विमुख होते हैं और न माई को विमुख होने देते हैं। मैं प्रार्थना करता हूं तुम्हें भी पुण्य होगा। मेरा विचार था कि एक लाख रुपया हो जाय। ७५ सहस्र माई का हो गया साढ़े २१ सहस्र सेठ और उसके पुत्र मुनीश्वर आदि ने दे दिया है। यह सुनकर सब चकित हो गये। अब साढ़े ३ सहस्र शेष की न्यूनता है। यदि तू बढ़ादे तो· तुम जानते हो, यह सब रुपया धर्म खाते का बन रहा है। तुम दोगे तो तुमको भी पुण्य होगा।

वेश्या—जमींदार साहब से कुछ न कहो। मुझे याद आ गया। मेरी मोटर कप्तान साहब के पास है, यदि आप ही साहस कर सकें तो उनसे उसका रुपया ले आवें। मैं तो अब किसी के द्वार जाती नहीं।

जमींदार—वाह! वाह!! महाशय जी, कप्तान साहब से जो रुपया मिल जावे, वह साढ़े तीन सहस्र से न्यून हो. तो शेष मैं दे दूंगा।

ज्ञानप्रकाश उसी समय कप्तान साहब की कोठी पर चला गया अरदअली ने बड़ा सत्कार किया और सूचना दी। साहब बहादुर

ने बुला लिया। ज्ञानप्रकाश ने हाथ जोड़कर नमस्ते की। साहब ने बिठाया और पूछा, कैसे आए ?

ज्ञानप्रकाश—आपने वेश्या का केस और उसका समाचार सुन लिया होगा।

कप्तान साहब—हां, वेश्या तो औलिया (साधुनी) बन गई है। कमाल किया है। भाई ? तुम्हारी बात तो फिर सुनूंगा, पहले मेरी सुन लो। उस बेचारी की मोटरकार मेरे पास है, वह रहती तो मेरे पास थी, न उसने फिर मांगनी ही थी, परन्तु जब आज उसका समाचार सुना, तो मैंने कहा कि उसकी मोटरकार भेज दूं परन्तु वह बेचारी अब उसका क्या करेगी ?

ज्ञान प्रकाश यह सुनकर मन में प्रभु को धन्यवाद देने लगा कि प्रभु जिस पर कृपा करते हैं, उसके कार्य किस प्रकार वह स्वयं कराते हैं और उसने साहब से कहा, 'तो श्रीमान जी ! जो उसका उचित मूल्य समझें, दे देवें।'

साहब—कितना मूल्य दूं ? वह क्या मांगती है ?

ज्ञानप्रकाश—वह बेचारी अब क्या मांगेगी ? उसका समाचार सुन लोजिये:—

७५ सहस्र उसका नकद हो गया है। मेरा विचार था कि एक लक्ष के ट्रस्ट का! साढ़े २१ हजार रुपया मुनीश्वर, उसके पिता और भ्राताओं ने दिया है, शेष साढ़े तीन हजार कम होता है। यदि मोटर इससे अधिक मूल्य की है तो आप साढ़े तीन हजार दे दीजिये। यदि कम की है तो कम दीजिये। शेष किसी और द्वार से परमात्मा दिलायेगा।

साहब—३ हजार तो मैं प्रसन्नता से देने को तैयार हूं।

ज्ञानप्रकाश—बहुत अच्छा, ३ हजार स्वीकार है।

साहब—तो कल चेक भेज दूंगा और रसीद भी लिखवा लूंगा।

ज्ञानप्रकाश—अच्छा, मैं आपका धन्यवाद करता हूँ, नमस्ते।

कप्तान साहब—आप क्या कोई बात करने आये थे ?

ज्ञानप्रकाश—आपके दर्शन से ही मेरा कार्य हो गया, फिर कभी आवश्यकता पड़ी तो आऊंगा। अभी तो कोई जरूरत नहीं है। यह कह कर ज्ञानप्रकाश वहां से चले आये।

अब ५०० रुपया कम रह गया। मन में विचार आया सेठ बेचारा तो प्रतीक्षा में होगा, इसलिये उसकी दुकान पर ही पहले गया और सब समाचार उसको विस्तार से सुनाया। वह सुनकर हैरान रह गये। परमात्मा उस वेश्या पर कैसा रीझ गया है। प्रत्येक व्यक्ति अपने आप उसे दे रहा है। मुनीश्वर के भाइयों ने कहा, अच्छा, ५००) रुपये हम से लीजिये; हमारी स्त्रियों ने भी तो मुनीश्वर से कुछ लिया ही है, चलो यही सही।

ज्ञानप्रकाश की आँखों से प्रेम के अश्रु फूट पड़े और कहा, 'वाह प्रभो ! तेरी लीला बड़ी विचित्र है। जो तेरे हो जाते हैं उनके सब योग क्षेम के आप ही जिम्मेवार हो जाते हो। आपकी प्रतिज्ञाएं भी कैसी सत्य हैं।'

अब ज्ञानप्रकाश चौधरी दीवानमल के डेरे पर गया और कहा भाई ! पट्टा पूरा करो। कल रजिस्ट्री हो जाये। माई पर प्रभु अब लट्टू हुआ है, चुनांचे सब समाचार सुना दिया। वेश्या इस

वृत्तान्त को सुनकर अनायास रोने लगी और प्रभु का धन्यवाद करने लगी।

(६)

रात्रि होने को आई तो वेश्या के मन में विचार आया कि अब वह सुन्दर भवन तो मैंने बेच दिया, अब तो यह मेरा रहा नहीं। आज ही रात मैं कब्रिस्तान में जाकर व्यतीत कर देखूं, वहां क्या दशा होती है। चुनांचे जब सब लोग सो गये तो वह कफनी पहने कब्रिस्तान में जा पहुंचीं। चारों ओर सुनसान (निर्जन स्थान) था, मन में भयभीत हुई क्योंकि सुन रखा था कि कब्रिस्तान बड़ा भयानक स्थान होता है और वहाँ भूत-प्रेत रहा करते हैं। फिर प्रभु की याद में बैठ गई। बड़े-बड़े भयानक दृश्य सामने नजर आने लगे, बहुत डरी, दिल धड़कने लगा। फिर हृदय पर हाथ रखकर कहने लगी, 'अरे दिल ! बस आज ही धड़कने लग पड़ा, तुझे तो अब सारा जीवन इसी कब्रिस्तान में बिताना है। इसी को ऊपर नीचे ओढ़ ले बड़ा पवित्र स्थान है। शहरों, नगरों तथा धन सम्पति के सताए सब इसी स्थान पर सदैव के लिए विश्राम पाते हैं, संभल जा, स्थिर हो जा, तुझे कोई बला नहीं खायेगी, किसका भय करता है ? अब मेरे पास रखा ही क्या है ? जो तुझसे छीन ले जायेगा, तेरे श्वास तो तेरे साथ हैं, न तो तन का कोई वस्त्र है, न रोटी, न रुपया, न धन, न भवन, न मान, न कोई शत्रु, न कोई मित्र और अब तेरे श्वास भी तेरे अपने नहीं। ये तो केवल तेरे सहायक अश्व (घोड़े) हैं इनको जितना अधिक चाबुक लगाकर चलावेगा, उतना ही शीघ्र तुझे ये स्वर्ग में प्रभु के पास पहुंचा देंगे और जब

प्रभु प्राप्ति हो गई तो वहां कोई भी ह्रास तथा भय नहीं। शाबास दिल ! शाबाश ! ! थम जा।"

सारी रात वेश्या ने वहां गुजारी, कभी निद्रा का झोंका आ जाता, कभी जाग कर प्रभु का स्मरण कर लेती। अन्तिम पहर ब्राह्म महूर्त का समय आ गया अपने पाप सामने आ गए और रो पड़ी। ऐसी रोई कि पता न लगा। ऊंघ (योग निद्रा) आ गई और एक तीव्र प्रकाश में एक सफेद (दाढ़ी वाले) बुजुर्ग के दर्शन हुए। उसका मुख उज्ज्वल तथा ओजस्वी था। वह कहने लगा, माई रीझां ! रिझा ले रज के रिझा ले, कामी और विषयी लोगों को बाह्य मन तू रिझाती रही। वे तेरे वश में हो जाते रहे। तुझे वश में करने का ढङ्ग खूब आता है। तू आशिकों को रिझाया करती थी अब तू प्रभु प्रीतम को रिझा। जैसे तेरे प्रेमी सब कुछ वेच कर तुझ पर वार देते थे। तूने भी अपने प्रेम पात्र पर सब कुछ वार दिया परन्तु अब के दिल की निचली तह से रिझा। प्रभु तुझे स्वीकार करने पर तुला है, तुझे आशीर्वाद देता हूं, अब तुझे कोई शक्ति न गिरा सकेगी।" सिर पर हाथ फेरा और अन्तर्ध्यान हो गया। माई रीझाँ की आंख खुली। बड़ी प्रसन्नता और उल्लासपूर्ण थी इतना आनन्द और प्रसन्नता सारे जीवन में उसने न देखा था। परमात्मा का धन्यवाद किया। अब दिन भी चढ़ आया था और वह नगर की ओर चल दी।

(१०)

आज रजिस्ट्रार साहब की कचहरी में भीड़ थी। दस्तावेज पेश हुई। रजिस्ट्रार साहब ने सामने मुख किया और एक दृष्टि से देखा।

वेश्या को आंखों से प्रकाश टपक रहा था, वह सह न सका! कहने लगा, तेरा क्या नाम है? वेश्या बोली, "माई रीझां" रजिस्टार साहब न कहा, यहां तो पट्टा में "फुलबड़ी" लिखा हुआ है। वेश्या बोली 'वह नाम, श्रीमान जी! कल तक का था और वेश्या का था। अब रात्रि से परमात्मा का दूत यही नाम रखा गया है।" वहाँ पर उपस्थित श्रद्धालु मुसलमान लोगों की आंखों में प्रभु की इस अपार कृपा पर प्रेम के अश्रु भर आये। सब इस माई के चरण स्पर्श करने लग गए और बोले, "माई रीझाँ! परमात्मा तुम पर एक ही दिन में रीझ गया, हमें भी आशीर्वाद दो।"

आखिरकार रजिस्ट्री हो गई। कप्तान साहब ने भी ३ सहस्र का चेक मोटरकार का रजिस्ट्रार के सामने दे दिया और रसीद प्राप्त कर ली। सब चेक आदि ज्ञानप्रकाश जी को सौंप दिए गए और एक निवेदन पत्र माई रीझां की ओर से कलैक्टर साहब को दे दिया परन्तु साथ ही निवेदन किया कि मेरा नाम न लिखना। माई रीझाँ का ही एक लक्ष लिखें।

माई रीझां—लाख लिखो, दो लाख लिखो, मेरा तो एक कौड़ी से मतलब नहीं। अपना टीक लिखो।

सेठ—हम घर से नहीं दे रहे। मेरा नाम लिखने से अहंकार हो जावेगा। मुनीश्वर का नाम लिखो, इसके पाप पुण्य का स्वामी वही है।

चुनांचे लाख रुपया के ब्योरे में ७८ सहस्र माई रीझां का २२ सहस्र मुनीश्वर देव रीडर का लिखा गया और महिला औषधालय ट्रस्ट बना कर राज्य प्रबन्ध से खोलने का निवेदन पत्र दिया गया।

अब माई रीझां ने कफनी पहने सीधी नगर से बाहर निकल कर नगर को दोनों हाथों से "सलाम, सलाम, सलाम" किया और कहा, "ओ नगर तथा नगरवासियों! तुमको मेरा सदा के लिए सलाम, यह नगर तुम्हें मुबारिक और कब्रिस्तान मुझे सलामत रहे"।

* * *

॥ ओ३म् ॥

सप्तविंशोऽध्यायः

आवश्यक शिक्षाएं

प्रलोभन — अन्वेषण (खोज) — तहकीकात—आशीर्वाद

सन्तान इच्छा—गृहस्थ वासना

पूर्णमासी की रात्रि का समय है। मुनीश्वर और लज्जावन्ती बड़े खुश हैं, निश्चिन्तता का जीवन बिता रहे हैं। मुनीश्वर की कामवासना जागी और लज्जावन्ती को जरा जगाया और उस पर अपनी इच्छा प्रकट की। लज्जावन्ती ने कहा "आज तो पूर्णमासी है, इस दिन गृहस्थ करने का शास्त्रों में निषेध है। बहिन जी बड़ा दोष बतलाती हैं। मैं कल उनसे गर्भाधान की शिक्षाएं पूछती आउंगी। आपकी इच्छा है तो मुझे क्या आपत्ति हो सकती है ?"

मुनीश्वर देब बड़ा ही सरल, सज्जन तथा लज्जालु स्वभाव का था और पूर्व उस पर लज्जावन्ती की बातों का प्रभाव पड़ चुका था। उठकर दूसरी खाट पर जा लेटा। प्रातः हुई। लज्जावन्ती ने पाठशाला में पुनः एकान्त समय मांगा। निवृत्त होने पर लज्जावन्ती ने कहा, 'मेरे स्वामी की इच्छा गृस्हथ की हो रही है, इस सम्बन्ध में मुझे उचित शिक्षा दीजिए।'

सन्तोष कुमारी—बहिन ! तो फिर पढ़ना छोड़ दे। एक ही कर्म हो सकता है, दोनों नहीं हो सकेंगे। दोनों कर्म बल के हैं। कोई चिन्ता नहीं जितना पढ़ लिया, वही पर्याप्त है। घर में स्वाध्याय से ज्ञान बढ़ जावेगा। गृहस्थ की बातें तो बहुत सी तुमने समझ लीं अब यह बता दो कि दो वर्ष हुए अब तक तुम्हारे सन्तान क्यों नहीं हुई ?

लज्जावन्ती—एक तो मेरी आयु कुछ छोटी थी, दूसरे मुझे मासिक रक्तस्राव का रोग रहता है। एक तो ठीक समय पर नहीं आता, कभी २-४ दिन कम हो गये और कभी बढ़ गये और दूसरा आता भी कम है।

सन्तोष कुमारी—तब तो पहले अपने रोग को ठीक करो। एक सुगम सा प्रयोग जीवन आनन्द में लिखा हुआ था, उसे करके देख लो। पुरानी माताएं सदैव ऐसा किया करती थीं।

१. गुड़ और तिल मिलाकर खाने से रक्त पूरी मात्रा में आने लग जावेगा। अब शरदऋतु है और भी लाभ होगा।

२. मालकङ्गनी के पत्तों की भस्म ४माशा प्रतिदिन शीतलजल

में घोल कर पीने से मासिक धर्म ठीक समय पर होने लगता है ।

लज्जावन्ती—मेरे पतिदेव वैसे तो हृष्ट-पुष्ट हैं, जहां तक मेरा विचार है । उनमें वीर्य की निर्बलता न हो ।

संतोष कुमारी--वह तो किसी वैद्य को दिखाकर प्रतिकार करा सकते हैं और यदि परीक्षा करनी हो तो एक प्रयोग यह भी है जो वीर्यहीन को वीर्यवान बना सकता है । इसमें हानिकारक औषधि भी नहीं ।

सफेद प्याज का रस ७ माशा, अदरक का रस ६ माशा, मधु ४ माशा, घृत ३ माशा (कुल २१ माशा) । सब को मिला कर एक बार प्रयोग करें । प्रातः काल सेवन करने से बलवान और वीर्यवान हो जावेंगे । यदि दो तीन मास तक निरन्तर सेवन किया जाये, जब तक तुम औषधि सेवन करती रहो और वह भी करते रहें, तब तक गृहस्थ नहीं करना चाहिए । ब्रह्मचर्य बराबर कायम रहे तभी लाभ होता है ।

लज्जावन्ती---अच्छा ! पुत्र की इच्छा होती तो सबको है, ईश्वर तो जो दे दे, कन्या या पुत्र, वही ही सन्तान है, परन्तु गृहस्थियों की इच्छा होती तो अवश्य पुत्र की है (और हंस भी पड़ी) इसका कोई उपाय अथवा प्रयोग ?

सन्तोष कुमारी—रजस्वला स्नान के बाद चौथे दिन कपड़ छान करके नांगकेसर १से २माशा तक दूध के साथ खाकर समागम करने से गर्भ स्थित होगा और होगा भी पुत्र ही ।

लज्जावन्ती—तो क्या यह दवाई उन्हें भी लाभ देगी जिनको

कई वर्ष से गर्भ नहीं होता और रोग भी कोई नहीं ।

सन्तोष कुमारी—यदि स्त्री पुरुष में कोई रोग नहीं और गर्भ नहीं होता तो उस स्त्री को ऋतु समय में दवाई करनी चाहिए। गर्भिणी भैंस का दुग्ध और बकरी का मूत्र मिला कर ३-४ दिन तक (४ तोला मात्रा) पीकर परीक्षा कर देखें। अवश्य गर्भ धारण कर सकेगी ।

लज्जावन्ती—और शिक्षाएं ?

सन्तोष कुमारी—जो सावधानियां पहले बता चुकी हूं, तुम्हें याद ही होंगी । कुछ और बता देती हूँ ।

१- ऋतु के चार दिन, अष्टमी चौदस, अमावस्या, पूर्णमासी ऋतु से ११ वीं और तेहरवीं रात्रि ये सब वर्जित हैं ।

२- ऋतु से छठी, आठवीं, दसवीं, बाहरवीं चौदवीं और सोहलवीं में गृहस्थ करने से पुत्र उत्पन्न होता है, छठीं, आठवीं रात्रि अधिक उपयोगी होती है ।

३- पाँचवीं, सातवीं, नवीं, पन्द्रहवीं रात्रि में गर्भाधान करने से कन्या उत्पन्न होती है ।

४- समय रात्रि १० बजे से ३ बजे तक । इस समय पुरुष का दक्षिण स्वर चल रहा हो ।

५- इस समय दोनों में परस्पर प्रेम और बड़ी प्रसन्नता हो किसी प्रकार की चिन्ता, शोक तथा लज्जा न हो और किसी अन्य आकार का विचार न आये ।

६- समागम क्रिया के पश्चात् स्त्री को लघुशङ्का नहीं करनी चाहिए। पुरुष को ५-७ मिनट ठहर कर मूत्र विसर्जन करना चाहिए।

मूत्रेंद्रिन्य को शीतल जल से तुरन्त नहीं धोना चाहिए, वरन नपुंसक होने की संभावना होती है। १०-१ . मिनट बाद उष्ण जल काम में लाया जा सकता है।

७—यदि शक्ति को कायम रखना हो तो आध घन्टा बाद घी मिश्रित दूध पी लेना चाहिए। अधिक ज्ञान करना हो तो संस्कारविधि पढ़ लेना।

(२)

प्रलोभन

दस्तावेज के रजिस्ट्री हो जाने के कुछ काल पश्चात् जब माई रीझां और मुनीश्वर दोनों की कीर्ति फैल गई, तो एक दिन जब कि रविवार प्रातः का समय था' दो व्यक्ति एक बड़ा रूपवान लम्बे कद का गौर वर्ण, पठानों की सी सलवार और कुलाह दस्तार बांधे हुए बहुमूल्य शाल दुशाले धारण किये आंखों पर नीले वर्ण का चश्मा लगाये और दूसरा सुन्दर वस्त्रधारी दरमियानि कद के एक और नवयुवक को साथ लिये ढूंढते-ढूंढते मुनीवश्र का पता पूछते-पूछते उसके पास पहुँच गये। उसने उन्हें बड़ा मानवीय देखकर बड़े प्रेम और सत्कार से मिलकर अपनी बैठक में बिठाया। वह उस समय अकेला ही था इसलिए मुनीश्वर ने पूछा, आप कौन सज्जन हैं, कहां से पधारे हैं ?

दरमियाने कद वाला नवयुवक बोला—यह मेरे स्वामी अधिपति, महान् रईश तथा बड़े भारी भूमिपति हैं, मैं इनका मुखत्यार हूं। आप जाति के पठान हैं बड़े सखी (उदार) हैं, इनके मुख पर क्या प्रशंसा करूं। एक लाख बीघा भूमि के यह स्वामी हैं।

सहस्रों भैंसों गोओं, अश्वों तथा सेवक, भृत्यों के स्वामी हैं। एक विरासत दायित्व का झगड़ा पड़ गया है। दस्तावेज इनके पास हैं, बड़े-बड़े वकीलों से परामर्श लिया है। उन्होंने कह दिया है कि यह किसी काल में भी दूसरे को नहीं मिल सकती। अधिकार (कब्जा) भी इन्हीं का पूर्व से है। दस सहस्र बीघे के चतुर्थांश का अभियोग है। इन्तकाल भी इनके नाम हो चुका है। अब किसी के भड़काने पर प्रतिवादी को खड़ा करके अपने स्वार्थ के लिए एक विधवा से डिस्ट्रीक्ट जज के न्यायालय में अभियोग दायर करवा दिया है और उन्होंने आपकी अदालत के सुपुर्द कर रखा है। हमने सुना है कि जज साहब के आप दक्षिण भुजा हैं, उनका आप पर बड़ा विश्वास है और बहुत सी कारवाई आपके हाथ में रहती है। हम पर तीन कृपायें करें, एक तो हमें यहां के किसी योग्य वकील का नाम बतायें या आप स्वयं ही सिफारिश करके रख दें ताकि हम वहां से न लावें। दूसरा (नोटों के दो बन्डल निकालकर) यह ३००) का है और यह बन्डल ७००) का है। छोटा आपकी भेंट करते हैं और बड़ा साहब के लिये, यह भी स्वयं आप ही उनको पहुंचाये। हम किसी से परिचित नहीं हैं, न ही हमारा कोई भिज्ञ (वाकिफ) है, इसलिए हम सर्व प्रथम आपके ही परिचित बने हैं। आप के हमारे मध्य में प्रभु साक्षी रहेगा। यह भेद कहीं प्रकट न हो। और अभियोग की तिथि पर मैं ही आया करूंगा। रईस साहिब आवश्यकता पड़ने पर पधारेंगे। यह भेंट अगाऊ है। हम आपको अनुचित के लिये नितान्त कष्ट न देंगे। जो उचित हो उसके लिए हमारी पूरी-पूरी सहायता करें।

मुनीश्वर नोटों का बण्डल देखकर कांप गया। जैसे एक शूरवीर धर्मात्मा के सम्मुख कोई अप्सरा उसके पतित करने के लिए आ जावे फिर सम्भल कर बोला—श्रीमानों! आपकी बड़ी कृपा है, आप इतने महान व्यक्ति होकर बड़ी नम्रता से बातें करते हैं। ये नोट आप शीघ्र उठा लीजिए। न साहब बहादुर रिश्वत लेते हैं और न मैं लेने वाला हूं। परमात्मा ने मुझे बहुत कुछ दिया है। मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि अभियोग आपका आ जावे तो जो भी उचित सहायता होगी, मैं करने करने में किन्चित्मात्र संकोच न करूंगा ।मैं किसी को भी उचित सहायता करने में कभी संकोच नहीं करता, अपितु ऐसा करना अपना कर्त्तव्य समझता हूं। आप चूंकि अपरिचित हैं इसलिए आपसे विशेष वचन करता हूं। आप निश्चिन्त रहें। आपका कोई यहां वाकिफ नहीं, आप मेरे मकान पर ठहरा कीजिए। दाल-साग से जो सेवा कर सकूंगा, वह भी उपस्थित है। वकील यहां बहुत हैं, सभी योग्य हैं, आप पूछताछ स्वयं कर लें। मैं ऐसे कार्य में हस्क्षेप नहीं किया करता।

मुखत्यार—शायद आप रईस महान का नाम सुन कर और १० सहस्र बीघा भूमि का अभियोग देखकर इस भेंट को अल्प और अपना अपमान समझते हैं तो (एक और बन्डल निकालकर) यह भी उपस्थित है। रईस साहब स्वयं आकर अभियोग के विजय पर पर्याप्त इनाम आदि से सेवा करेंगे। (हाथ जोड़ और चरण स्पर्श करके) आप इसे स्वयं स्वीकार करें। आप मित्रता ही समझ लीजिए। जब आप हमें स्व स्थान पर ठहराना और भोजन कराने के लिए कह रहे हैं तो यह मित्रता के सम्बन्ध हैं।

मुनीश्वर—मैं सत्य कहता हूं कि । न्यूनाधिक का विचार तो तब आवे जब मैं लेने वाला होऊं । मैंने शपथ ली हुई है, यह मेरे लिए गौ मांस के समान है । हिन्दू की इससे अधिक शपथ और क्या हो सकनी है ? आप मुझे फिर न कहना । मित्रता में भी यदि आप कोई वस्तु, उदाहरणार्थ एक नाम भी लावेंगे तो भी उसे मैं गौ मांस ही समझूंगा । मेरे लिए वेतन के अतिरिक्त किसी भी सायल (अभियुक्त) से किसी प्रकार की सेवा लेना हराम तथा पाप है ।

यह सुनकर दोनों उठ खड़े हो हुये और कहा—अच्छा, हम वकील का पता निकालकर आपके पास आवेंगे ।

मुनीश्वर—किस समय तक पधारेंगे, आज रविवार है ।

मुखत्यार—जब हम निवृत्त हो जावेंगे, अपने आप आ जायेंगे स्थान तो हमने देख ही लिया ।

मुनीश्वर—यदि मैं उस समय उपस्थित न होऊं तो आप निस्संकोच होकर विश्राम कर सकते हैं । मैं अपने पिता तथा भ्राता से भी कह जाऊंगा, वह आपको सेवक देकर आपकी सब आवश्यकतायें पूर्ण करा देंगे ।

दोनों व्यक्ति अर्थात् रईस और मुखत्यार ने बाजार में भ्रमण करते हुए किसी से फुलबड़ी वेश्या के विषय में पूछा । जिस व्यक्ति से पूछा उसने अपने मन में सोचा, वाह ! फुलबड़ी के अभी तक बहुत ग्राहक हैं, वस्तुतः यह कोई बड़ा भारी रईस मालूम होता है, इन लोगों ने ही तो पूछना हुआ । उसने उत्तर दिया—श्रीमान् फुलबड़ी तो अब माई रीझां बन गई है । कब्रिस्थान में दिन-रात

प्रभु की याद में मग्न रहती हैं, उसे तो वैराग्य हो गया है। प्रभु की उस पर बड़ी कृपा हो गई है, वह अब सब की माई बन गई है। नगर के बाहर पश्चिम में जो कब्रिस्तान है वहां रहती है। दोनों ने सोचा, चलो आये हैं तो इस रूप के भी दर्शन कर चलें। चुनांचे दोनों कब्रिस्तान की ओर चल दिये।

वहाँ जाकर देखा कि माई रीझां गले में कफनी पहने, हाथ में तसवीह (माला) लिये बैठी है और इर्द-गिर्द कतिपय पुरुष और स्त्रियां बैठी हैं, यह भी दोनों जाकर प्रणाम करके बैठ गये। उस भूमिपति ने जिसने उसका मकान लिया था, उसको बड़ा रईस जान कर पूछा— क्यों श्रीमान जी आप यहाँ कैसे आये ?

मुखत्यार— माई रीझां के दर्शन करने और कुछ अपना दुःख दर्द वर्णन करने और आशीर्वाद लेने आये हैं, परन्तु एकान्त में कहेंगे। माई रीझाँ तो दिन-रात कब्रिस्तान में रहती है, इसके भोजन का क्या प्रबन्ध हैं ?

जमींदार—जो प्रभु के हो गये, प्रभु और उसका सब जगत् उनका अपना हो गया। उन्हें भोजन की क्या चिन्ता है ?

मुखत्यार—फिर भी कोई साधन भी तो अन्तः बना देता है।

जमींदार—बहुत लोग ले आते हैं, परन्तु प्रभु की कृपा मुझ पर है। प्रभु के दिये हुए से उसी की आज्ञा से इन को भेंट करता हूं। प्रातः व सायं स्वीकार कर लेती हैं और कुछ बचा कर भी वापिस देती हैं जिसे हम प्रसाद जानकर सब घर वाले खाते हैं।

फिर जमींदार ने कहा भाईयों ! ये दूर के अतिथि रईश आये

हैं आप उठें, ये अपना निवेदन भेंट करेंगे। चुनांचे सब उठ खड़े हुये और चले गये।

मुखत्यार—माई रीझां! अब तो आप प्रभु की हो चुकी

अन्वेषणा

आपको असत्य बोलने से क्या? आपसे एक बात पूछते हैं, यथार्थ से बतला देना।

माई रीझां—सच्चा आप परमात्मा है और मैं मरने के स्थान पर बैठी हूं। प्रभु की आज्ञा से सत्य कहूंगी।

मुखत्यार—मुनीश्वर कैसा आदमी है? क्या घूंस लेता है? मेरे साथ उसका क्या सम्बन्ध था? और है?

माई रीझां—मुनीश्वर प्रभु का प्यारा मुनीश्वर बड़ा सज्जन श्रेष्ठ धर्मात्मा, सद् व्यवहारी और ईमानदार

आशीर्वाद

बालक है। घूंस उसके लिये निषेध (हराम) है। उसकी शपथ है। मेरा तो पूर्व भी पुत्र समान था और अब तो सभी पुत्र हैं। मेरे साथ मेरे पास उसकी याता-याता मेरे वेश्यापन के काल में कभी नहीं रही। ऐसे श्रेष्ठ पुरुष के लिये मेरा आशीर्वाद है कि व जज बन जाये और कुछ पूछना है तो नगर से जा पूछो। तुम क्यों पूछने आये?

मुखत्यार—क्या अब भी मुनीश्वर तुम्हारे पास आता है?

माई रीझां—जैसे और लोग सारा रात-दिन आते हैं, मैं तो कुटिया में बन्द रहती हूं। केवल जमींदार के भोजन लाने पर द्वार खोलती हूं तब कोई आ जाता है अथवा रविवार को खुला रहता है। मुनीश्वर रविवार को आता हैं। आगे-पीछे उसके आने के समय मेरा द्वार बन्द होता है।

वह यह कह रह थी कि मुनीश्वर आता हुआ दृष्टि पड़ा। कहने लगी—देखो ! मुनीश्वर आ रहा है, तुम्हारा परिचित है।

मुखत्यार—अब हो जावेगा।

मुनीश्वर पहुंच गया, माई रीझां के चरण स्पर्श किये। प्रणाम करके बैठ गया और उनसे पूछने लगा, आप यहाँ कैसे पहुंच गये ? आपने मुझसे पूछा नहीं। आप तो किसी से परिचित भी नहीं थे ?

वह दोनों उठ खड़े हुए मुनीश्वर ने कहा—कहां जा रहे हैं। बैठिये। उन्होंने उत्तर दिया—हम आते हैं आप माई रीझां से बातें कर लेवें।

माई रीझां—देखो जमींदारी ! यह स्थान सत्य का है। तुम सत्य-सत्य बतलाओ कि कैसे आये थे ? मुझसे क्यों पूछा ? मुनीश्वर तो तुमको जानता है, तुम मुझसे कुछ और कहते थे।

पठान ने कुलाह पगड़ी उतार दी। ऐनक भी उतार दी। अब तक तो वह बोला ही नहीं था, कैसे पता लगता अब जेब से गुम नाम निवेदन-पत्र निकाला और कहा—माई रीझां ! मैं डिस्ट्रिक्ट सैशन जज हूं और यह मेरा अरदली है। किसी ने दरख्वास्त दी है कि मुनीश्वर जिसने २२ सहस्र रुपया फुलबड़ी वेश्या के रुपया के साथ महिला औषधालय बनवाने के लिए दान दिया है, बड़ा भारी घूंसाहारी है। सारे जिले को उसने लूट लिया है। वेतन उसका साधारण ५० अथवा १०० के अन्दर है। इतना रुपया कहां से दान कर दिया ? फुलबड़ी वेश्या के साथ उसका

गुमनाम निवेदन-पत्र

अनुचित सम्बन्ध रहा है। साहब के नाम पर भी रुपया खा जाता रहा है। अपनी प्रेमिका फुलबड़ी की स्मृति में रुपया दिया है, इसकी खोज की जावे और उसे तब्दील किया जावे। अब भी प्रति रविवार को फुलबड़ी के पास जाता है। चुनाँचे हम भेष बदलकर और रविवार समझ कर इसकी खोज करने आये थे कि सब कुछ अपनी आंखों से देख लें, सो इसलिए आपके पास आये थे। मुनीश्वर के भी पहले हो आये हैं। हमने अपनी आंखों से देख लिया है। और जो सही वाक्यात (वृत्तान्त) हैं, उनका यथार्थ ज्ञान हमें हो गया है।

मुनीश्वर यह सुन कर पसीना-पसीना हो गया। उसके मन में प्रभु का धन्यवाद किया और महाशय ज्ञानप्रकाश की यह बात उसे याद आई कि थोड़ा सा किया हुआ धर्म भी बड़े भारी भय से रक्षा करता है।

मुनीश्वर उठा और साहब को प्रणाम किया क्योंकि दरख्वास्त का देखना और साहब बहादुर (जो कि अंग्रेज था) के उच्चारण तथा वार्ता की शैली का समझना उसके लिए कठिन काम न था। साहब नया आया था, इसलिए मुनीश्वर अभी उसे प्रणाम नहीं कर सका था।

माई रीझां—तो फिर अब क्या बनाइयेगा।

साहब बहादुर—थोड़े दिनों में हम इसे अपना क्लर्क आफ कोर्ट बनायेंगे और काम देखकर सब-जजी में नाम भिजवा देंगे, तुम्हारी आशीर्वाद खाली न जायेगी। और मैं भी प्रतिज्ञा करता हूं कि अपने होते हुए ही इसे सब-जज बना दूंगा। यह बात अभी गुप्त रखना।

जब मैं प्रतिज्ञा में पूरा उतरूं तब निस्सन्देह प्रगट करना कि सैशन जज भेष बदलकर अन्वेषणार्थ आया था। अच्छा सलाम हम जाते हैं।

* * *

॥ ओ३म् ॥

अष्टाविंशोऽध्याय

प्रेम का विवाह

पौराणिक विवाह में वैदिक रङ्ग

अभिमानी वर अभिमान का सिर नीचा

चैत मास आरम्भ है चौधरी दीवानमल महाशय ज्ञानप्रकाश की दुकान पर गये और कहा प्रेम का विवाह मांग रहे हैं। उनसे बहुत कहा है कि परीक्षा में अल्प समय रह गया है, परन्तु वे कहते हैं, प्रथम वैशाख शुभ मुहूर्त निकलता है, आगे मुहूर्त नहीं आता। गत वर्ष भी उन्होंने कृपा की, अब वे कुछ उल्टी-पुल्टी बातें भी कहते हैं।

ज्ञानप्रकाश—मुहूर्त (साहा) तो कन्या वाला जांचता है। साहे जंचवाये नहीं जाते। कन्या के ऋतु समय देखने की आवश्यकता है कि विवाह के दिन वह उससे निवृत्त हो परन्तु आप कहते हो कि वे उल्टी-पुल्टी बातें भी कहते हैं तो फिर विवशता है।

दीवानमल—तो फिर अब प्रेम का पढ़ना बन्द करा दें।

ज्ञानप्रकाश—सन्तोष से पूछ लेंगे अथवा प्रेम की माता पूछ लेंगी।

चार बजे सायं का समय हुआ। प्रेमलता और उसकी माता दोनों सन्तोष कुमारी के घर गयीं और विवाह की बात कही, विवशता प्रगट की। पड़ाई बन्द करने को पूछा तो सन्तोष कुमारी ने कहा कि अब प्रेम घर का तो सब कार्य कर लेती है। हरप्रकार से योग्य बन गई है। परीक्षा न भी देगी तो न सही। फिर प्रेम-पूरित स्वर में बोली—'माँ! अब बतला प्रेम मेरे जैसे बन गई है अथवा कोई त्रुटि है।'

प्रेमलता की माता—पुत्री! तेरा बड़ा उपकार है। अब प्रेम सब कार्य तेरी तरह करती है। शेष उसकी समझ तथा बुद्धि का ज्ञान तो उसके सास-श्वसुर के गृह पर होगा।

सन्तोष कुमारी—ईश्वर करे पति उसके अनुकूल विचार का हो। फिर तो समझो प्रेम का सौभाग्य जाग गया। सब बात स्त्री के लिये पति पर निर्भर है।

प्रेमलता की माता—है तो कुलीन, बड़ा अच्छा अफसर है, बड़ा वेतन लेता है। लाट साहब के दफ्तर में है कभी कोई बात सुनी तो नहीं।

सन्तोष कुमारी—अच्छा बहिन प्रेम! अब तो फिर दर्शन कभी-कभी हुआ करेंगे। तेरा नाम है प्रेमलता। लता कहते हैं बेल को। जैसी बेल होती है वैसे ही फल लगते हैं। कद्दू की बेल को कद्दू का ही फल लगता है। तू प्रेमलता है, प्रेम तेरा

बीज है और प्रेम का फल ही प्राप्त करना। स्वार्थ छोड़कर सेवा करना ही प्रेम है। स्वार्थ शब्द से केवल स्त्री, पुरुष, धन आदि ही नहीं समझने चाहिएं, बल्कि मान बढ़ाई, प्रतिष्ठा, कीर्ति, सौन्दर्य ये सब ही स्वार्थ के अन्तर्गत हैं। जो पुरुष, परमात्मा से प्रेम करने की चेष्टा करते हैं, प्रेम स्वरूप परमात्मा उन प्रेमियों के अत्यन्त समीप है। विशुद्ध प्रेम में आकर्षण करने की जितनी शक्ति है उतनी चुम्बक आदि किसी भी पदार्थ में नहीं। चुम्बक तो जड़ को खींचता है परन्तु यह प्रेम ऐसा अनोखा चुम्बक है जो साक्षात् चेतन स्वरूप परमेश्वर को भी खींचने की सामर्थ्य रखता है। बस यही बात याद रखनी, यह विद्वानों का कथन है। तू प्रेमलता है इसे यथार्थ सिद्ध कर दिखाना।

इतने में महाशय ज्ञानप्रकाश जी भी कार्यवश घर आ गये और बोले—क्यों भाभी जी! सन्तोष से पूछ लिया।

प्रेम की माता—हां जी, पूछ लिया। अब विवाह के सम्बन्ध में केवल दो ही बातें हैं. एक तो सन्तोष को मैं अपनी पुत्री बना चुकी हूं और सत्यव्रत को जामाता। प्रेम तथा सन्तोष में मैंने एक सी धारणा कर ली है और दोनों का विवाह में भोजन करने की आज्ञा करनी होगी। दूसरे विवाह आप को अपने हाथ से ही करना तथा पढ़ना होगा।

ज्ञानप्रकाश—पहली बात का उत्तर यह तो है कि जैसे सन्तोष कहेगी वैसा ही कर लेंगे, परन्तु दूसरी बात कठिन है। मैं बीच में बैठूंगा तो सही परन्तु विवाह शास्त्र मर्यादानुसार मैं नहीं पढ़ सकूंगा।

सन्तोष कुमारी—क्यों पिताजी ?

ज्ञानप्रकाश—तुमको ज्ञान नहीं।

सन्तोष कुमारी—नहीं पिता जी ! मुझे क्या ज्ञान ? मैंने क्या कभी कोई ऐसी बात किसी से पूछी है ?

ज्ञानप्रकाश—पुत्री ! इसका जिसके साथ विवाह होना है उसकी पहली स्त्री मर चुकी है।

सन्तोष कुमारी—माताजी ! यह क्या ? आपको कोई अन्य योग्य वर नहीं मिलता था ?

प्रेम की माता—नहीं पुत्री ! वास्तविक बात यह है। प्रेम से मेरा मोह बहुत रहता है, पुत्र मेरा है नहीं, मैंने इसके पिताजी से कहा किसी निर्धन सज्जन स्वस्थ बालक के साथ प्रेम का नाता कर दो जिसे हम गृह जामाता (घर जमाई) बना कर रखेंगे। एक तो प्रेम मुझ से पृथक् न होगी, दूसरी इसकी सन्तान को अपनी सम्पत्ति का उत्तरदाया बना देंगे। वही मेरे बच्चे होंगे। चुनांचे एक निर्धन कुल के चतुर दक्ष परन्तु कुलीन और सज्जन से नाता कर दिया। हम बड़े प्रसन्न थे। परन्तु प्रभु को स्वीकार न था, वह बालक मर गया। इधर कुछ काल के अनन्तर इस वर्तमान बालक की स्त्री का देहान्त हो गया। उसके कोई सन्तान नहीं। विवाह को अभी एक दो वर्ष ही हुए थे। दैववशात् चौधरी जी उस दिन वहां ही थे। वह बड़े धनी व्यक्ति हैं। लाट साहब के कार्यालय में लड़का भी नौकर है। उन्होंने जब सुना, बधाई दे दी। वे हमसे परिचित थे, उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया। जब घर आये तो मुझ से कहा। अब मैं क्या कहती ? वचन जो दे आये फिर मैं भी न

बोली। दिल में तो, आज मैं सत्य बात कहूं, धारणा की हुई थी कि सत्यव्रत को दूंगी, परन्तु बात अभी चौधरी जी से न कह सकी थी। सो खैर! जहाँ का लेख होता है। अब तू भी तो मेरी पुत्री बन गई है, सत्यव्रत के घर। वह एक ही बात हो गई। तुम्हारा युगल (जोड़ा) भी बना रहे और उसका भी अपने पति से जोड़ मिला रहे।

विवाह के दिन समीप आते गये। वर वाले शहरी थे और ये कसबा के थे। चाहे जिला था, परन्तु कसबा ही था। चौधरी दीवानमल उनकी बारात के लिए बड़ा सामान एकत्र करने लगे, कुर्सियां मेज इत्यादि। महाशय ज्ञानप्रकाश ने यह देखकर कहा, अरे चौधरी! क्यों अपने घर में यह नई अल (रीत) चलाने लगा है। हम लोग पेटू हैं। दरियां गलीचे, खेस बिछाकर भोजन खिला देना। कुर्सियां एकत्रित कराओ। लोग तुम्हारा अनुकरण करने लगेंगे तो ऋणी हो जायेंगे।

चौधरी—वे बुरा मनायेंगे।

महाशय जी—उस समय नम्रता से निवेदन कर देंगे। चिन्ता न करें, यह समय जैसे-तैसे बीत ही जाते हैं।

चौधरी जी मान गये, परन्तु साथ महाशय जी ने सावधानी की। वर वालों के कर्ण गोचर भी कर दिया कि हम लोग सरल हैं, हमारी रहनी सहनी से आप रुष्ट न होना। आप नागरिक और बड़े आदमी हैं- हमारे पत्र पुष्प को जिस रूप में भी हम दे सकेंगे वैसे ही स्वीकार करने की कृपा करना। उन्होंने भी यह सुनकर कहा कि साधारण सी बात है, जैसे वह (चौधरी साहब) कृपा करेंगे हमें क्या आपत्ति हो सकती है। आप हर प्रकार से सन्तुष्ट रहें।

(३)

पौराणिक विवाह में वैदिक रङ्ग

अन्ततः प्रथम वैशाख आ गया। बारात बड़े सज-धज मान-शान उतरने लगी। नगर-निवासियों ने बड़ा सत्कार तथा स्वागत किया। रात्रि के समय भोजन खाकर बारात और वर घोड़ी पर चढ़े, पहुंच गये। उनके साथ वेदी पढ़ने वाला एक अपने कुल का पौराणिक पुरोहित था। वेदी सजी हुई थी। नगर के स्त्री-पुरुष तथा सम्बन्धी एकत्रित थे। पण्डित बेचारा पुरातन विचार का था, पढ़ा हुआ भी कुछ कम ही था। वर बड़ा आदमी था, कोट पतलून पहने हुए, जुराबें पहनी हुई थीं। भय के कारण उसे कुछ कह न सकता था। स्वयं ही सब काम करता जाता। जहां पैसा रखवाना होता, वहां कहता दो पैसे रख दीजिए। अब वेदी तो पढ़ी जा रही है, परन्तु किसी के पल्ले कुछ नहीं पढ़ना। चौधरी ने कहा, "पण्डित जी कुछ बात समझा तो दीजिए।' पण्डित ने कहा, 'वह साहब सब कुछ जानते हैं।'

प्रेम की माता—प्रेम बेचारी को तो कुछ ज्ञान ही नहीं। गृहस्थ क्या जीवन है, कुछ तो उसे पता लगे। अलबेली पली है।

पण्डित—माता जी! चिन्ता न करो। पुत्रियां घर जाकर सब कुछ समझ लेती हैं।

पण्डित अपने पढ़ने में लगा रहा। जब पाणिग्रहण का समय आया, हथलेवा हुआ और मन्त्र पढ़े तो सन्तोष कुमारी ने एक मन्त्र की व्याख्या में भजन गाया और प्रेमलता से कहा कि तुम भी गाओ।

१; वचन दो सात जब हमको, तभी प्रीतम कहाओगे।
करो इकरार पंचों में, उसे पूरा निभाओगे॥

२. पकड़ कर हाथ जो मेरा, मुझे पत्नी बनाना है ।
तो किश्ती सौभाग्य की मेरी, किनारे पर लगाओगे ।।
३. हमारे वस्त्र भोजन का फिक्र करना तुम्हें होगा ।
वचन मन कर्म से प्यारे, मुझे अपनी बनाओगे ।।
४. विपत् सम्पत् और बीमारी, गमी, शादी व सुख दुख में ।
कभी किसी हाल में मुझसे, जुदा हो न पाओगे ।
५. तिजारत, नौकरी, खेती, अर्थ और धर्म सम्बन्धी ।
करो कोई काम जब जारी, हमें पहले बताओगे ।।
६. जो बिगड़े काम कुछ मुझसे, करो एकान्त में शिक्षा ।
मगर नन्दी सहेलन में, न तुम हमको रुसाओगे ।।
७. मेरे बिन और त्रिया को, बहिन, मां, बेटी सम जानो ।
यही व्रत मेरा होगा, तभी तुम सुख गृहस्थ पाओगे ।।
८. अग्नि को साक्षी देकर, अर्द्धाङ्गन किया मुझ को ।
तो फिर वरदेव*, बाएं तरफ मुझे अपने बिठाओगे ।।

पाणिग्रहण की कार्यवाही हो चुकने के अनन्तर कुछ क्रिया हुई फिर लाजा होम और लावें फेरे आरम्भ हुए और सन्तोष कुमारी और सबने मिलकर गाया ।

हथाँ ते फुलियां पावं ने, मेरी अमां दे जाये ।
पावो वीरो फुलियां, वे तुहाडा राज सवाया ।।
बहिन चली घर अपने जी, चित्त होया पराया ।
पावो वीरो फुलियां.....................................।।
हथां ते फुलियां, पांवदे ने, मेरी चाची मामी दे जाये ।
बहिन चली घर अपने जी, चित्त होया पराया ।।

---

*वर का नाम

भजन लावां—(मन्त्रों का अनुवाद व्याख्या)

१. लावाँ पहली पूज्य ईश्वर, न्यायकारी ध्याइये ।
छुड़ा दो पितृ कुल से स्वामी, पति कुल न छुड़ाइये ।।
२. खोलें छोड़े हवन में, कुटुम्ब बढ़े धनवान हो ।
लावां पहली विनय ईश्वर ! आयु पति की महान हो ।।
३. लावां दूजी प्यारे पति जो, अग्नि खीलां छोड़ियां ।
तेरा मेरा प्रेम होवे, जैसे धर्म दी जोड़ियां ।।
४. पूज्य हे परमात्मा ! बल धर्म का हमें दीजिये ।
लावां दूजी कीनी सखियो ! गृहस्थ सुख हमें कीजिये ।।
५. लावाँ तीजी प्रिय पत्नि, तू ही भूमि शक्ति है ।
आधार है संसार का, विस्तार जिसमें जगत है ।।
६. प्रेम और प्रकाश सूर्य, करता सब प्रकार है ।
लावां तीजी प्रेम करना, मेरा भी अधिकार है ।।
७. लावाँ चौथी मात पितु कुल त्याग, प्रीतम पा लिया ।
स्वीकार करके एक दूजे नूं, व्रत हमने है किया ।।
८. पांच यज्ञ महान करना, त्याग विषयां करेंगे ।
लावां चौथी ईश आज्ञा ! वेद विद्या पढ़ेंगे ।।

यह भजन जनता ने बड़ा पसन्द किया । अब सप्त पदी की बारी आई, तो पण्डित ने वहां बैठे-बैठे ही आटे की लकीरें डाल दीं । काल्पनिक रूप से कार्य करा दिया और कहा, 'अब विवाह समाप्त है, दान दक्षिणा दो ।' उत्तरार्द्ध सर्वथा छोड़ दिया । महाशय ज्ञानप्रकाश जी ने कहा, 'पण्डित जी ! उत्तरार्द्ध की क्रिया तो कराइये' ।

पण्डित जी—अजी ! बड़े आदमी हैं। कौन बाहर जायेगा ध्रुव देखने दिखाने। 'क्यों साहब ! ध्रुव दर्शन करोगे ?'

अभिमानी वर

वर—जी ! क्या आवश्यकता है ? विवाह तो बहुत संक्षिप्त होना चाहिए, आप लोग बांध बिठाते हो। आज इसका कोई युग है ? हम बालक थोड़े ही हैं, जो नहीं जानते।

पण्डित—महाशय जी ! अब सुन लिया।

ज्ञानप्रकाश—इस समय आप हमारे अतिथि हैं, सत्कार और पूजा के योग्य हैं। विवाह सदैव नहीं हुआ करता। एक बार हुआ करता है।

वर—(बड़े क्रोध से) मेरा दूसरा विवाह है। पता नहीं, तीसरी बार भी भाग्य में लिखा हो।

ज्ञानप्रकाश—ओहो ! देखा यही भूल है। यदि मन्त्रों की व्याख्या सुनी होती तो आपको विवाह में श्रद्धा हो जाती। ऐसे अपशब्द तीसरी बार मुख से न निकलते।

प्रेमलता की माता सुनकर रोने लग गई। दीवानमल के भी अश्रु टपक पड़े।

वर—अच्छा विवाद का स्थान तो नहीं, परन्तु आप से पूछता हूं कि यह क्या थियेट्रीकल पार्ट (नाटक) कराया है। आसन देते, पुष्प माला डालते !

(४)

ज्ञानप्रकाश—विवाह के समय वर वधु को जिन्होंने दूसरे नये आश्रम में प्रवेश करना है, (नमूने के तौर पर) एक पूरी शिक्षा

(ट्रेनिंग दी जाती है कि जीवन पर्यन्त इसका आचरण ऐसे करोगे तो बड़े सुखी रहोगे और स्वर्ग समान गृहस्थ भोगोगे।

सब से पूर्व गृहस्थी का कर्त्तव्य है कि वह अतिथि सेवा करे। इस सेवा के ये अङ्ग हैं:—

(१) अत्यन्त कोमल, शुद्ध तथा पवित्र मधुर वाणी से सत्कार करे जैसे प्रेम ने कहा:—

ओ३म् साधु भवानास्तामर्चयिष्यामो भवन्तम्॥
पा०का०। कं० ५।सू० ४॥

(२) आसन दे बड़े आदर के साथ प्रेमपूरित शब्द बोले।

(३) सुन्दर जल (शरद् हो तो ऊष्ण, ग्रीष्म हो तो शीतल अथवा ताजा जल) से हस्त, पाद, मुख धुला, तौलिया देकर साफ करावे।

(४) तदनन्तर खाने को, कोई सुन्दर वस्तु दे।

(५) तत्पश्चात् आचमन के लिए जल दे। सर्व प्रथम मर्यादा अर्थात् सेवा की शिक्षा इस प्रकार दी है।

तत्पश्चात् जो वस्तु मिली है, उसे भली प्रकार देख लें। कोई प्रतिकुल न पड़ी हो, पश्चात् उसे बांट के खावें।

वर—वाह महाशय जी! वाह! आप वृद्ध हुए, क्या कहूं? क्या ये साधारण बातें भी हम नहीं जानते? यह तो उन आरण्यकों (जंगलियों) के लिए थीं जो प्राचीन काल में ब्रह्मचारी शिशु अवस्था में ही आचार्य के पास पढ़ने जाते थे, बड़े-बड़े लम्बे केश, न तन का वस्त्र, न धारण करने का ज्ञान, न जूता पहनना। वे जब घर पधारते थे तो निस्सन्देह उनको चूंकि किसी बात का

ज्ञान न होता होगा, इसलिए यह सब क्रियाएं करना और समझना आवश्यक होगा, परन्तु हम जैसों के लिए नही। बस आप कृपया कृपा कीजिए। हम लोग कालिज में पढ़ते रहे, घरों में कई अतिथि और कई योग्य सम्बन्धी आते रहे, हम तो सब एटीकेट (मर्यादा) पहले से ही जानते हैं। अपराध क्षमा! मैंने तो यह समझा था कि यह कोई ऐसी बात होगी जिसे कोई न जानता होगा?

ज्ञानप्रकाश—बहुत अच्छा! पूर्व काल में बहुत ही ब्रह्मचारी होते थे, इसलिए ऋषि मुनियों ने आवश्यक पद्धति यह बनाई थी।

वर—यद्यपि मैं संस्कृत से अनभिज्ञ हूं, न अपना साहित्य ही अवलोकन किया है, परन्तु आप मुझ से गृहस्थ के विषय में कोई भी प्रश्न करना चाहें, तो निस्संकोच करें। फिर देखें कि मैं उत्तर दे सकता हूं अथवा नहीं।

ज्ञानप्रकाश—हैं तो आप मेरे अजीज! यद्यपि छोटे हैं मगर फिर भी अतिथि हैं, चाहे आपको तजुरबा भी नहीं।

वर—(वड़े अभिमान से) नहीं महाशय जी एक बार तो मेरी परीक्षा कर लीजिए! फिर देखिये!

ज्ञानप्रकाश—अच्छा आप यों ही आग्रह करते हैं तो कृपया यह बतलाएं कि स्त्री जो पुरुष की अर्द्धाङ्गिनी है उसे शरीर का कौन सा आधा अङ्ग गिनेंगे?

अभिमान का पतन

वर—Better helf (उत्तम भाग) ही हो सकता है।

ज्ञानप्रकाश—फिर भी वह कौन सा आधा भाग?

अब तो वर महाशय दुविधा में पड़ गये। ज्ञानप्रकाश ने कहा सिर के नीचे तक आधा भाग चीरा जाय अथवा नाभि से आधा

ऊपर और नीचे आवेगा। यह सुनकर वह और भी आश्चर्य में पड़ गया कि कौन सा आधा भाग उत्तम कहें !

वर—तो इसका मन्त्र पढ़ा गया है ?

हां ! यह भी अन्त में पढ़ा गया है। जब आपको चावल के स्थान पर मिष्ठान खिलाया गया है, आपने किंचित मात्र उठाकर कर मुख स्पर्श कर लिया है शगुन करने के लिए। मन्त्र है गठजोड़ा बांधते समय (यह मन्त्र धर्म सम्बन्ध बताता है)।

अन्न पाशेन मणिना प्राण सूत्रेण पृश्निना।
बध्नामि सत्य ग्रन्थिना मनश्च हृदय च ते॥
(संस्कार विधि)

यह गांठ स्त्री पुरुष के हृदय चित्त की गांठ है। स्त्री अन्न है, पुरुष प्राण है। पुरुष अन्न है, तो स्त्री प्राण है। अन्न के बिना प्राण शुष्क हो जाता है और प्राण के बिना अन्न को घुण लग जाता है। ऐसा आपका सम्बन्ध है जो एक दूसरे के बिना जिन्दा नहीं रह सकते।

वर—Excellent ! (अत्युत्तम ! अत्युत्तम !) तब तो बहुत बातों का ज्ञान हो जाता है। परन्तु शोक कि अब समय बहुत बीत गया है। निद्रा भी करनी हैं। अच्छा कभी प्रभु ने अवसर बनाया तो कोई विवाह आप से सुनेंगे। अब कार्यवाही समाप्त हो गई है।

चौधरी दीवानमल ने बारात का बड़ा अच्छा सत्कार किया। दान और दहेज भी अच्छा दिया। स्वर्ण के सब आभूषण बिना नथ के और बहुत से सूट, रेशमी, खद्दर और अन्य सर्व प्रकार के दिये। बर्तन चांदी के, पलङ्ग, मेज, कुर्सियां। घरेलू सामान उनकी शान

के अनुकूल दिया। परन्तु भोजन सबको दरी और गलीचों पर करवाया। वर महाशय को बहुत ही बुरा लगा। मन में कुड़ता रहा कि दुकानदार के पल्ले पड़ गये। इनके पास आने जाने में क्या स्वाद आयेगा ?

दूसरे दिन दीवानमल और प्रेम की माता अपनी इकलौती पुत्री के गले लग लग कर रोते रहे। बारात बिदा हो गई।

❀ ❀ ❀

॥ओ३म्॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

अतिथि पूजा

साधु सेवा — ध्यान योग शिक्षा

दोपहर का समय है। फसल की कटाई के दिन आरम्भ हो गये थे। सत्यव्रत दोपहर को देर से आ रहा था। नगर से बाहर एक वृद्ध माता भगवे वस्त्र धारण किये (संन्यासिन) मिली। सत्यव्रत ने नमस्कार की। संन्यासिन ने पूछा, 'पुत्र, ! यहां कोई धर्मशाला, मन्दिर अथवा कुटिया साधु सन्तों के रहने के लिए होगी ?

सत्यव्रत—माता जी ! मेरें साथ चलने की कृपा कीजिए। मेरे गृह पर पधारिये, भोजन कीजिए और वहाँ ही विश्राम

कीजिए। एकान्त स्थान दे देंगे। यदि रुचिकर न हुई तो मेरे पिताजी धर्मशाला में अच्छा स्थान न देंगे।

संन्यासिन उसके साथ चल पड़ी। घर पहुंच गये सन्तोष कुमारी भोजन तैयार करके निवृत्त हो ही रही थी कि सामने पतिदेव और संन्यासिन को आता देखा। झट दौड़ी। श्रद्धापूर्वक चरणवन्दना की और आसन देकर बैठाया। जल और तौलिया सामने लाई, अपने हाथ से संन्यासिन के पग प्रक्षालन किये, हस्त, मुख धुलाया संन्यासिन यह सत्कार क्रिया देखकर मन ही मन आशीश देने लगी कि बड़े अच्छे सद् गृहस्थी हैं, थाली कटोरा निकाला, भोजन परोस कर अपने पति को दिया कि आप माताजी को भेंट कीजिए। जल का गिलास पहले रख दिया। माता जी ने कहा, 'पुत्र ! तुम भी बैठ जाओ। क्षुधा लगी होगी, भोजन कर लो। दोपहर हो गया है।'

सत्यव्रत टोकरे से बर्तन निकालने गया। उसे भूख लगी हुई थी। गर्मी में वापिस आया था। सन्तोषकुमारी ने विचार किया गृहस्थ मर्यादा का उल्लंघन कर देंगे, भूख के कारण भूल गये हैं, तो झट बोली, 'माता जी ! आप भोजन आरम्भ कीजिए। हम गृहस्थी हैं. हमारे लिए, अतिथि के बाद ही वेद शास्त्र की आज्ञा है। पहले खाने से पाप लगता है।' (सत्यव्रत से) आप अभी धूप में चलकर आये हैं, मैं थोड़ा सा शरबत बना देती हूं। पहले हृदय शान्त कर लेवें, अभी पिता जी आने वाले हैं, मिलकर भोजन करेंगे।

सत्यव्रत यह सुनकर समझ गया और हाथ टोकरे से हटा लिया।

संन्यासिन मन में कहने लगी, यह तो कोई बड़ा पवित्र और पूर्ण आर्य कुल है । यह आर्य देवी हैं ।

(२)

संन्यासिन बहुत पुरानी और प्रसिद्ध योगिन थी । उसके मन में विचार आया कि यह पुत्री बहुत उत्तम संस्कार वाली है । पूर्व जन्म के इसके कर्म बहुत अच्छे प्रतीत होते हैं । अन्न खाया है अतः सेवा भी करनी चाहिए ।

इतने में ज्ञानप्रकाश जी भी आ गये और नमस्कार की । संन्यासिन के भोजन कर चुकने के पश्चात् उन्होंने भी अन्न सेवन किया । निवृत्त हुए तो महाशय ज्ञानप्रकाश ने संन्यासिन से पूछा—माता जी कोई योग्य सेवा ? किसी वस्तु की इच्छा अथवा आवश्यकता इस समय के अनुकूल है ?

संन्यासिन—नहीं पुत्र ! बहुत प्रसन्न हूं । यह पुत्री अत्युत्तम कर्मों वाली है, इसे मैं कुछ ध्यानयोग बता देना चाहती हूं ।

ज्ञानप्रकाश—माता जी ! हम तो गृहस्थी हैं, हमें तो कर्मयोग का मार्ग ही सुगम और उचित है, सो इसमें यह संलग्न है । यदि यह (सन्तोष) स्वयं इसकी इच्छा रखती हो तो हमारी ओर से इसको आज्ञा है । (सन्तोष से) क्यों पुत्री ?

सन्तोष कुमारी—आज्ञा गृह स्वामी की ही मानना बड़ा योग है । वही भक्ति है, जिससे उसका आशीर्वाद मिल सके । आप भी अतिथि हैं, हमारे देवता हैं । आपके गुण और दया को ही जो अपने आप घर बैठे मिले, मैं अपना विशेष सौभाग्य समझती हूं । शायद प्रभु ने आपको मेरे लिए ही भेजा हो कि शीघ्र मुक्ति प्राप्त सकूं ।

ज्ञानप्रकाश ने कहा, फिर निस्संकोच सीखो। माता जी की खूब सेवा करो। अपने पास एकान्त में उधर ही स्थान बना दो। माता जी ! कृपा करके कोई सुगम सी विधि बताना। हठयोग आदि क्रियाओं से इसे बचाना। बेचारी को बड़ा काम करना पड़ता है। इसका तो एक मिनट भी व्यर्थ नहीं जाता। यह मस्तिष्क सम्बन्धी बड़ा कार्य करती है।

संन्यासिन—तुम निश्चिन्त रहो। सुगम से सुगम मार्ग बताऊंगी जो इसे सब कार्यों में सहायता देगा।

योगिन माता के रहने के लिए स्थान उनके रूचि अनुसार बन गया। सन्तोष की प्रथम रात्रि की पवित्र हृदय की सेवा से ही उस ने उसका अधिकार और उसके मन की भूमि जान ली।

रात्रि को उसे अपने पास सुलाया। प्रातः ३बजे जागकर उस योगिन ने जो बड़ी सिद्ध माता थी, उसे भृकुटि में ध्यान में बिठा दिया और आशीर्वाद दी की पुत्री ! तेरा अभी ध्यान भी टिक जायेगा।

वस्तुतः सन्तोष कुमारी की वृत्ति टिक गई। उसे सुध बुध न रही। १५ मिनट तक सुरत टिकी रही, फिर अवकाश माँगा। अपने कार्य करने लगी और नित्यप्रति सायं प्रातः अभ्यास बढ़ाती गई। योगिन उसे एकान्त में योग के गुप्त मार्ग, कठिनाइयां और और उनके सुगम उपाय बताती रहती थी। एक सप्ताह योगिन रही और जब वह सन्तुष्ट हो गई कि अब सन्तोष कुमारी को मेरी आवश्यकता नहीं, तो चली गई।

❀ ❀ ❀

॥ ओ३म् ॥

त्रिंशोऽध्याय:

वेमेल विवाह
कठिन परीक्षा
|
सुहागरात अथवा

अत्याचारी
निर्दोष का त्याग
|
पुनः माता की प्रेममयी गोदी में

वर महाशय और प्रेमलता अपने घर पहुँचे। घर की देवियों ने सत्कार से गृह प्रवेश कराया। नवीन विवाहित कन्या को सब छोटी वड़ी देवियां देखने की इच्छुक थीं। कोई दहेज देखने लग गई और कोई प्रेमलता को। प्रेमलता के पास एक समूह हो गया। वह तो एक लज्जालु कन्या थी, दूसरे नवविवाहिता, तीसरे नये घर में, चौथे नये नगर में, पांचवें माता-पिता की लाडों में पली, कोई और बहिन न भाई, बड़ी उदास वैठी है। घर वाली देवियां, सम्बन्धी सर्व प्रकार से सान्त्वना दे रहे हैं, परन्तु उसकी अवस्था तो उसका मन ही जानता है।

(२)

सायं होने लगी। वर महाशय के घर में मांस के देग पकने लगे। जैसे प्रेम को मांस की गन्ध पहुंची तो उससे बैठा न गया। परन्तु नवविवाहिता थी, किसे कहे? क्या कहे? कभी थूकती, कभी नांक बन्द करती, बड़ी व्याकुल हुई। अन्ततः उसे वमन आरम्भ हो गया। अन्दर ले जावे तो दुर्गन्ध, बाहर बैठावें तो दुर्गन्ध। एक ने पूछा, वमन क्यों हो रहा है? कोई दर्द है? कोई रोग है?

यह बोली नहीं ।' मांस की दुर्गन्ध से मेरा जी व्याकुल हो रहा हैं ।' अब वे क्या करते ? वे भी असमंजस में थे कि यहां तो प्रतिदिन मांस पकता है । यह कैसे रहेगी ?। इसे भी यह चिन्ता कि मैं राक्षसों में के गृह में गई, मेरी कौन सुनेगा ?

(३)

रात्रि हो गई । सबने भोजन किया । अतिथिशाला में मद्य का दौर भी चला ? वह दुर्गन्ध भी उसके मस्तिष्क में चढ़ी । वह (गृह देवियां) प्रेमलता को कहें भोजन करो, पर उससे भोजन खाया न जाये । उसने कहा, 'मैं नहीं खाती, मेरी तबियत खराब है, श्वसुर आया, देवर आये, पूछा प्रेमलता की सुध ली है ? उसे भोजन खिलाया है ? सास ने कहा, वह तो खाती ही नहीं । अच्छा ! नवविवाहिता है, नवविवाहिता कन्याएं पहले दिन नहीं खातीं । घर की उदासीनता भी होती है ।

अब वर महाशय आये और पूछा तो भी यही उत्तर दिया कि उसका जी मचलाता है । उसने बहुत बार वमन किया हैं ।

वर—क्या कारण है ? कोई औषधि दी ?

मां—औषधि कैसी ? और क्या कारण है ? बेचारी को मांस की गन्ध अनुकूल नहीं आती ।

वर— फिर कैसे करेगी, यह तो प्रतिदिन चढ़ना हुआ ?

मां—पहला दिन है, कोई चिन्ता की बात नहीं । रहेगी तो अनुकूल हो जायेगी और खाना भी सब सीख जायेगी । घर में तो बेचारी ने कभी खाया नहीं होगा ।

वर—दाल खाने वाले बनिये जो हुए । इसके माता पिता क्षत्री

होकर फिर मांस नहीं खाते ! उठो प्रेमलता ! खा लो।

यह भला कैसे उठती ? वह रात्रि तो उसकी उदासी और व्याकुलता में बीत गई। घर वालों ने उन्हें पृथक्-पृथक् शयन कराया।

(४)

दूसरा दिन हुआ, प्रातः फिर अण्डे तैयार होने लगे और चाय बनने लगी। सबने खाया पिया और इसके सामने भी प्लेट रख दी। ज्योंहि उसे गन्ध आने लगी उसी प्लेट में बेचारी को वमन हो गया। अब भी कुछ न खाया गया।

अब मध्याह्न हुआ। मांस वाले चावल तैयार हुए। तब भी उसे वमन हो गया और उसने भोजन न किया। उदर खाली हो गया। इधर दुर्गन्ध, मन व्यथित पीड़ा होने लगी। वर महाशय ने उसकी कई बार सुधि माँ से पूछी, परन्तु अवस्था यही पाई तो कहा, 'अच्छा ! रात्रि को मैं स्वयं इसे खिलाऊंगा।'

रात्रि को फिर मांस पका। वर महाशय स्वयं लेकर प्रेमलता के पास गये। ज्योंहि उसे गन्ध आई, वमन कर दिया और अचेत हो गई। अल्प समय के बाद सचेत हुई तो वर ने कहा, 'अच्छा, मिठाई खा लो, फिर सबने सिनेमा जाना है। तुमको भी ले चलेंगे।

प्रेम ने कहा, 'मैं तो सिनेमा नहीं देखा करती।'

वर महाशय को क्रोध आ गया, बोला, 'तेरा हमारे घर में रहना कठिन है। जब तू पति के अनुकूल न हुई तो मेरे जीवन को तुझसे क्या सुख और क्या लाभ ? अपनी मां के घर जा बैठ।'

मां—न बेटा ! थोड़े दिनों में सुधर जायेगी। नयेपन में ऐसा ही होता है।

सबने भड़कीले चमकीले वस्त्र धारण किये। इसे भी दिये गये, परन्तु इसने बड़ी नम्रता से ऐसे वस्त्रों को पहनने मे इन्कार कर दिया। सब सिनेमा में गये, परन्तु यह और इसकी सास घर में रही। नई नवयुवतियां सब गईं, बूढ़ी कोई भी न गई। वर महाशय चाहता था कि इसे साथ ले जाऊंगा तो प्रेम से प्यार करूंगा, बोल चाल करेंगे। परन्तु इसकी यह कामना पूर्ण न हुई।

(५)

सुहाग रात अथवा......

रात्रि के समय इन दोनों को एक पृथक् कमरे में स्थान दिया गया। वर महाशय मिठाई, मद्य की एक छोटी बोतल और प्याला लाकर उसके पास बैठ गये और बोले, 'कोई चीज खा लो। शराब की बोतल खोली। गन्ध उड़कर प्रेम के सिर में चढ़ी तो तुरन्त वमन हो गया सिर चकराने लगा और गिर पड़ी। वर बड़ी कठिनाई से उसे चेतना में लाया और बोला, 'पियो !'

प्रेमलता—(हाथ जोड़कर) 'मेरे पूज्य देव ! मैंने न कभी यह पी है और न कभी मांस अथवा अण्डे का सेवन किया है। मैं तो कल से ही बड़ी व्याकुल हूँ। मेरा दिल फटता जाता है। कई बार खाली पेट के कारण दर्द पड़ गया है। मुझे तो प्रत्येक दिशा से दुर्गन्ध आती है, वायु अनुकूल नहीं बैठती। इस इतने बड़े पाप का प्रतिकार कहां दे सकेंगे।

वर—तू बड़ी पण्डिता ब्राह्मणी है, मुझे भी उपदेश करती है। यहां तो मांस पकाना भी पड़ेगा और खाना भी पड़ेगा। रात को मेरी प्रसन्नता के लिए मद्य का घूंट, चाहे अल्प ही सही, लेना पड़ेगा।

सिनेमा भी मेरे साथ चलना पड़ेगा। वस्त्र भी हमारी स्थिति मान के अनुसार धारण करने पड़ेंगे। तू यदि चाहे कि गंवार और ग्रामीणों को तरह रहूं, तो हमारे घर में तुम्हारा रहना न हो सकेगा।

प्रेम बेचारी रोने लग गई और बोली, 'जब आपको यह अवस्था है तो मेरी पुकार कौन सुनेगा? मैं तो इस पाप को स्पर्श तक नहीं करूंगी चाहे प्राण भी चले जाएं। आपको मैं अभी कुछ नहीं कह सकती क्योंकि आप क्रुद्ध होते हैं। मुझे आयु-पर्यन्त आपकी सेवा करनी है। कृपा करें मुझे मेरी इच्छानुसार सेवा करने दें।

वर महाशय ने मद्यपान किया हुआ था। उसे उसकी बात अच्छी न लगी। चाहे उसके रूप लावण्य पर वारे वारे जाता था. आवेश से उठ खड़ा हुआ और यह कहता हुआ चला गया कि 'मार धक्कर, मैं तो बैठक में जा सोता हूं।"

(६)

तीसरा दिन हुआ। प्रातः अण्डे फिर तैयार हुए। वर महाशय स्वयं प्लेट प्रेम के पास लाये, अपनी भी और उसकी

अत्याचार

भी। उसे उठा कर अपने कमरे में एकान्त में ले गये और बोले, 'लो खाओ!' उसे गन्ध आते ही फिर वमन हो गया। जब वर के सम्मुख वमन हुआ तो उसका भी जी मतलाने लगा। बड़ी घृणा आई। क्रोध में भरकर बोला, 'हराम-जादी, तू हमारा घर बसाने वाली नहीं' और एक थप्पड़ इस वेग से उसके मुख पर मारा कि बाहर तक ध्वनि सुनाई दी। फिर बोला तू हमारे अमीर गृह को कङ्गाल गृह बनाने आई है। यह कहता

हुआ, क्रोध में भरा हुआ बाहर निकला और प्लेट फेंक दी। माँ ने पूछा, 'क्या है ?' उसने कहा, 'तेरी बहू के सिर स्वा (राख) है।'

माँ— अरे अच्छा बोल, अच्छा माँग।

वर—बस मैं ऐसी अयोग्य. निकृष्ट, नीच स्त्री को नहीं बसाऊंगा। अभी उसके और मेरे केवल लावां (फेरे) ही हुए हैं और कुछ नहीं हुआ। उसके पिता को कहला भेजो इसका विवाह किसी महाशय के घर कर दें। तीन दिन हुए न मांस खाये. न अण्डा, न सिनेमा देखे, न वस्त्र अच्छा पहने। इसने हमारे मान को और स्थिति को भी अपने दुकानदार पिता के समान समझ लिया है।

निर्दोष का त्याग

इतने में उसका पिता आ गया। उसने भी पूछा, 'क्या है ?' वर महाशय ने कहा, 'क्या है, अच्छे घर में मेरा विवाह किया? ऐसी स्त्री से तो मैं रण्डवा ही अच्छा। हमारे खाने की वस्तुओं से तो इसे दुर्गन्ध आती है और वमन कर देती है।

पिता ने समझाया तो कहा, 'बस पिताजी ! मैंने शपथ ले ली है, मैं इसे अपने घर में नहीं रखूँगा, इसका मुख नहीं देखूंगा। यह विवाह कर लेवे। मैं अपने मुख से सत्य कह रहा हूं कि वह अभी इस समय तक कुमारी और वैसी अछूती है।

पिता ने कहा. 'पुत्र ! कभी हिन्दुओं में ऐसा हुआ है ? ऐसा नहीं करना चाहिए। तुम्हारा क्रोध दूर हो जाएगा तो फिर पछताओगे।

वर—मैं अपने माता, पिता, बहिनों और अन्य सम्बन्धियों के सामने कह रहा हूं, यदि मैंने इसे अपनी स्त्री जाना तो यूं समझना कि अपनी बहिन से विवाह किया।

वह तो अंहकार, क्रोध और काम के मद में आतुर था। उसे कुछ सुनाई न दिया। फिर बोला, 'आपको धन की कमी नहीं। मेरा विवाह यदि करना चाहते हैं, ऐसे अथवा पैसे से, किसी अन्य स्थान पर करा देवें और मैं ऐसी अपढ़ कन्या भी नहीं चाहता। अब अंग्रेजी पढ़ी, इस युग के Etiquette (शिष्टाचार) को जाननेवाली होगी तो विवाह करूंगा नहीं तो समस्त आयु ऐसे ही बिता दूंगा। अब मैं शपथ ले चुका हूं। इस शपथ पर आरूढ़ रहूंगा। इस कसम को भङ्ग नहीं करूंगा। यह अभागिन निकली है, यहां इसे हर प्रकार के भोग साधन उपलब्ध थे। मैं थोड़े दिनों में डिप्टी बनने वाला हूं। दोनों बाहर जाते नौकर चाकर होते, वह रानी साहिबा कहलाती। दौरे पर इसे साथ ले जाता, इसकी प्रतिष्ठा बढ़ती। भाग्यहीन अब रोती रहेगी। आज इसे पहला फेरा लेने आवेंगे, उनसे स्पष्ट कह देना। इसका दहेज भी वापिस कर देना। मैं कुछ नहीं चाहता। आप सैनिक (फौजी) पैन्शनर हैं, सारा परिवार हमारा मुलाजम पेशा रहा, परन्तु आपने सम्बन्ध कर दिया एक दुकानदार से। क्या हुआ वह धनी है? हमें उसके धन की थोड़ी चाह है?

उसका पारा बहुत चढ़ा हुआ था। घर में सन्नाटा छा गया और प्रेम यह सब वचन सुनकर मन ही मन पछता रही है और अपने कर्मों को रो रही है।

(७)

अभागिन वियोगिन को विदा

मध्याह्न के समय प्रेमलता और वर महाशय को लेने चौधरी दीवानमल के घर से मोटर कार आई और उनका एक प्रतिष्ठित सम्बन्धी सेवक सहित लेने को आया। कुछ फल तथा मिष्ठान्नादि भी वहाँ से लाये। सबसे मिले- जुले। वर महाशय के पिता ने उनका स्वागत किया। परन्तु मन चिन्तातुर था, कुछ कह न सका। ४ बजे सायं को वर महाशय भी आगये। बैठक में सब बैठ गए। चौधरी जी के प्रतिष्ठित सम्बन्धी ने वर के पिता को सम्बोधन करके कहा—अब प्रेम और उसके पति को आज्ञा दीजिए कि तैयारी करें, ताकि हम समय पर उन्हें ले जा सकें।

पिता—क्यों? भाई जोरावरसिंह (वर का नाम)!

जोरावर सिंह—मैंने तो प्रातःकाल कह दिया था, मेरी अब भी वही बात है। यह भी सुन लेवें। मेरे पुज्य बुजुर्ग! प्रेम को ले जाओ, अपना दहेज भी वापिस ले जाओ। मैं शपथ लेकर कहता हूं कि प्रेम वैसी ही अछूती है, केवल लावां फेरा मुझसे हुआ। यह केवल एक रीति थी। मैं इसे अपनी स्त्री नहीं जानता और न जानूंगा न इसे बसाऊंगा। अब इसे ले जाओ। चौधरी दीवानमल दाला-हारी बनिए क्षत्री को कहना कि इसका विवाह निस्संकोच नये सिरे से अन्य पुरुष से कहीं कर दो। मेरी आज्ञा है। मैं शपथ ले चुका हूं और हाल हम से न पूछो, प्रेम से ही मार्ग में पूछ लेना। उसने तीन दिन से भोजन नहीं किया, वमन करती रही और आज हमें भी कुछ खाने को नहीं दिया। इसे ले जाओ, शीघ्र ले

जाओ ताकि क्षधा से मर न जाए ।

प्रतिष्ठित सम्बन्धी—(कर जोड़कर) आखिर कोई दोष त्रुटि पाप ?

जोरावर सिंह—बस कह दिया, अब अधिक नहीं कह सकता। वृत्तान्त इससे पूछ लेना। यह यथार्थ बात कह देगी, असत्य नहीं कहेगी। इसका दोष नहीं है। वधु मेरे स्वभाव, प्रकृति और पोजीशन में अनुकूल नहीं, इसलिए मैंने त्याग दी है और कोई दोष अथवा दुर्गुण इसमें नहीं देखा। ऐसी नम्रता से बोलती है जैसे किसी निर्धन, कङ्गाल, दीन और भाग्यहीन कुल की हो।

(८)

पुनः माता की प्रेम भरी गोद में

मोटर तैयार हो गई। प्रेमलता को बैठा दिया। वर महाशय तो पहले ही खिसक गए। दहेज इन्होंने न उठाया और फल मिठाई उन्होंने भी न ली। जोरावर सिंह ने लेने भी न दी। मार्ग में प्रेमलता रोती गई। उसके सम्बन्धी और सेवक कारण पूछते रहे, परन्तु सिवाए रोने के यह मुख से कुछ उच्चारण न कर सकी। मोटर की यात्रा थी शीघ्र घर पहुंच गए।

माता-पिता और सम्बन्धी सभी प्रतीक्षा में थे। प्रेमलता मोटर से उतरी और ढायें मार-मार कर रोती हुई माता के गले से लिपट गई। फिर पिता से भी वैसे लिपटी। वे समझे उदासी से रो रही है।

पुनः पुनः माता ने गले लगाया, मुख चूमा, हाथ फेरा और पूछा—जोरावरसिंह को नहीं लाये ? तो प्रतिष्ठित सम्बन्धी ने जो शब्द उन्होंने कहे थे, सब सुना दिए। सन्नाटा छा गया।

माता ने पूछा—प्रेम क्या बात हुई ? दो रात्रियों में क्या हो गया ?

प्रेम—माँ ! मेरी व्यथा की कथा सन्तोष कुमारी और पिता जी ज्ञानप्रकाश के सम्मुख सुनाने की है ।

चुनांचे वही प्रतिष्ठित सज्जन उनको बुलाने गया । वह प्रतीक्षा में थे ही । उनके प्रतिष्ठित सम्बन्धी ने उनके सामने भी वही शब्द पुनः कह दिए । सब सुनकर दुःख प्रगट करने लगे ।

महाशय ज्ञानप्रकाश और सन्तोष कुमारी जब पहुँचे तो प्रेम सन्तोष कुमारी के गले लगकर वेग से ढायें मार-मार कर रोने लगी । कुछ समय पश्चात् शान्त हुई । वृत्तान्त सुनाने की शक्ति आई तो तीन दिन का साल अक्षरक्षः ज्यों का त्यों सुना दिया दिया और अन्त में एक दर्द भरी चीख मार कर अचेत होकर गिर पड़ी । तीन दिन से उदर खाली था । उदासी और पति से त्याग देने की प्रतिज्ञा, इन सब बातों ने उसे अचेत कर ही देना था । जल छिड़का, पंखा हिलाया, सचेत होने पर कुछ आश्वासन दिलाया । महाशय ज्ञानप्रकाश ने कहा—इसका पेट खाली है, तुरन्त इसे कोई सूक्ष्म से सूक्ष्म भोजन बना कर दो । और—प्रेम से कहा, पुत्री ! चिन्ता न करना, ईश्वर सब भली करेगा । ऐसे उज्जड़ व्यक्ति भी होते हैं । सैनिक पिता का पुत्र है, कुछ वह भी प्रभाव होगा । कई दिनों में उसको भी चेतना आ जाएगी ।

बाहर से आए हुए प्रेम को मिलने और उसको देखने वाले जब सब व्यक्ति चले गए तो वे अपना भोजन तैयार करने लगे ।

* * *
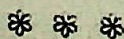
॥ ओ३म् ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

गृहस्थ इच्छा

सन्तान कामना — पुत्र अथवा पुत्री

सन्तोष कुमारी को मन में बड़ा खेद हुआ कि न मैं इसे सरलता सिखाती, न इस बेचारी पर यह आपत्ति आती। पहला निर्धन पति जो इसके अनुकूल रहता, वह युवा ही मर गया। अब इसकी यह दशा हुई। मन को बड़ी चिन्ता लगी। उसका अभ्यास उत्तरोत्तर बढ़ रहा था। अभ्यास के बाद प्रतिदिन प्रेम के शुभ दिनों के लिए प्रार्थना भी करती।

अपने-अपने स्थान पर सब के दिन बीतते रहे। सत्यव्रत ने एक रात्रि कहा, 'अब के तो अपने हाथ से हलवाही करके खेत बीजा था। उसकी कनक काटी जा चुकी है। अब उसे गाह कर दाने बनवावेंगे अब गृहस्थ का कुछ विचार करना चाहिए।

सन्तोष कुमारी—बहुत अच्छा! घर में वे दाने तो खाने के लिए लायेंगे ही, परन्तु अभी से ये निश्चय कर लें कि पुत्र पैदा करना है वा पुत्री? और पहली सन्तान आप क्या चाहते है? ब्राह्मण, क्षत्री अथवा वैश्य ताकि अभी से बोलचाल में,

(ब्राह्मण क्षत्रिय अथवा वैश्य)

खान-पान में, रहन-सहन में उसी प्रकार का वायु मण्डल बनाया जाए।

सत्यव्रत—आप क्या चाहती है ?

सन्तोष कुमारी—होगा तो सब काम आपकी ही इच्छानुसार क्योंकि मैं सेविका हूं और आप स्वामी हैं।

पुत्र व पुत्री परन्तु आपने मेरी इच्छा पूछी है, मैं तो पुत्री ही चाहूंगी क्योंकि मैं पुत्री को २४ घण्टे और १६ वर्ष तक अपने पास रख कर आपके उद्देश्यानुसार बना सकूंगी, पुत्र को नहीं। वह आपकी जिम्मेवारी होगी।

सत्यव्रत—मैं पुत्र चाहता हूं। बनाने को तो कुछ तू बनाएगी और कुछ मैं, और कुछ पिता जी। गुरुकुल भी मौजूद हैं।

सन्तोष कुमारी—गुरुकुल तो है, परन्तु उन्होंने हमारी कामना पूरी करने के लिए पृथक् प्रबन्ध थोड़ा कर रखा है। अस्तु ! जैसा आप कहेंगे वैसा ही होगा, अभी दानें तो आयें। जो कनक आप लायेंगे वह नवीन होने के कारण अत्यन्त उष्ण होगी। श्रावण में उसे खाना आरम्भ करेंगे। अभी तो वैशाख आरम्भ है, तब तक तीन मास में हम अपना मण्डल भी बना लेंगे।

❋ ❋ ❋

॥ ओ३म् ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

वियोगिना प्रेमा — प्रयत्न, धन मद

भेंट तथा तर्जना — नया सम्बन्ध, आशा का अन्त

प्रेमलता बेचारी बहुत दुःखित तथा निराश रहती है। न घर से बाहर निकलती है, न अच्छा वस्त्र पहनती है। माता बेचारी भी पुत्री की इस दशा को देख-देख कर घुल रही है। एक दिन कहने लगी पुत्री! की प्रयत्न कर रहे हैं परमात्मा भली करेगा। तू अच्छा वस्त्र क्यों नहीं पहनती और सिन्दूर, सुरमा, काजल क्यों नहीं लगाती?

प्रेमलता—माता किस लिए लगाऊं? न तो मैं अब कुमारियों में, न विवाहितों में। मेरा जीवन तो नष्ट हो गया। जब मेरा प्राणनाथ ही मुझे स्वीकार नहीं करता तो मैं एक निष्प्राण लोथ के समान हूं। हाय! मैं ऐसी मनहूस पैदा हुई कि मेरे पश्चात् तुम्हारे उदर में को जीव न आया जो तुमको सुख देता। उधर मैं ससुराल गई तो उनको मनहूस प्रतीत हुई, अब पुनः तुम्हारे घर आई हूं तो तुम्हें रात दिन मेरे दुःख की चिन्ता के और सूझता ही नहीं।

माता पुत्री के दर्द भरे शब्दों को सुनकर रो पड़ी और कहने लगी, 'मेरा भाग्य, मेरा दैव ही ऐसा था। पुत्री! तुम भाग्यवती हो, तुम क्यों अपने आपको भाग्यहीन (मनहूस) कहती हो? मुझे यदि और जीव नहीं मिला तो हमारे कर्मों से, तुम्हारा इसमें क्या दोष?

(२)

इधर चौधरी दीवामल ने सारा मास वैशाख और ज्येष्ठ अपने नगर के प्रतिष्ठत सज्जनों को उनके पास भेजने में बिता दिया। उनके मित्र आदमियों को भी कहा परन्तु वह (जोरावरसिंह) यही कहता रहा कि मैं शपथ ले चुका हूँ, क्षत्री पुत्र एक बात कहा करते हैं।' उसका पिता था तो फौजी, परन्तु सज्जन अवश्य था । इसी सज्जनता के कारण ही अपने पुत्र से भी दबता था और उसे दीवान मल से भी यह कहने का साहस न होता और नहीं शिष्टाचार उस को आज्ञा देता था कि उसे कह देवें कि आप प्रेम का पुनर्विवाह कर देवें। मन में तो सब मित्रों के यही बात आती थी, परन्तु कोई कह न सकता था। जोरावरसिंह ने एक बार उनके एक आदमी के बहुत मिन्नत समाजत (अनुनय विनय) करने पर उल्टा बिगड़ कर कि वस्त्रों आदि का सार दहेज जो बन्धा रखा था हठात् चौधरी दीवानमल जी के घर भिजवा दिया, केवल कुर्सी, मेज, पलङ्ग आदि जो सभीते से उठने वाली वस्तुएं नहीं थी, वे रह गईं। और यह कहला भेजा कि वह यह ठीक निश्चय कर लें कि मैंने विवाह नहीं किया।

(३)

अभिमान, अहङ्कार और काम मद

जोरावर का जहां अहंकार और अभिमान का मद यौवन पर था, वहां अब काम मद भी वेगवान होने लगा। एक दिन बैठक में बैठे हुए उसने अपने पिता से स्पष्ट कह दिया कि आप शायद यह आशा भी मुझ से रखते हैं कि यह प्रेम को ही स्वीकार कर लेगा और इसलिए

शायद प्रतिष्ठित जनों के भय से मेरी सगाई का कहीं विचार नहीं कर रहे, परन्तु मैं कदापि किसी काल में भी प्रेम को मुंह न लगाऊंगा और आपने भी शीघ्र मेरा सम्बन्ध न किया तो मैं किसी यवन स्त्री से विवाह कर लूंगा अथवा क्रष्टान (ईसाई) बन कर कोई मेम विवाह लाऊंगा ।

पिता के मन में आज एक और बड़ा भय पैदा होगया कि यह तो सारी डुबोता है । इसीं चिन्ता में था कि अकस्मात् एक सूबेदार पेन्शनर फौजी सिख सरदार उसका पुराना मित्र आ गया जो उस की स्मृति से भूला हुआ था, वह आया और बड़े चाव से मिला । चिरकाल पश्चात् दोनों मिले थे, अच्छा सत्कार किया गया चूंकि बखतावर सिंह के मुख पर प्रसन्नता न थी, इसलिए सूबेदार ने पूछा आज मुख मलीन क्यों हैं ?'

बखतावर सिंह– भाई क्या कहूं, गृहस्थ बड़ा जंजाल हैं । सुख भी बड़े हैं, भोग विलास भी बड़े हैं, परन्तु दुःख और आपत्तियाँ भी बहुत हैं । सूबेदार ने विवश किया तो जोरावरसिंह को सारी कथा कह सुनायी ।

(४)

सूबेदार ने जोरावर सिंह को बुलाकर कहा—पुत्र ! देख

भेंट और तर्जना

बखतावरसिंह तेरा पिता मेरा घनिष्ट मित्र है, चिरकाल पाश्चात् हम मिले हैं । हम दोनों पैन्शन लेते । मेरी जागीर में सरकारी मुरब्बे भी हैं और अपने भी बहुत खरीद किये हैं । मैं रहता भी अपने मुरब्बों में हूं, पर मुझे अच्छा नहीं लगता । मेरी पुत्री ने अब बी.ए. पास किया

है। तुम भी क्षत्री हो, मैं भी क्षत्री हूं। मैं केश धारी हूं, तुम मोने हो। यदि तुस सच्चे हृदय से प्रतिज्ञा करो कि मैं उस स्त्री को किसी काल में न बसाऊंगा चाहे वह न्यायालय में भी जावे, तो मेरी पुत्री उपस्थित हैं। वह तुम्हारे ही स्वभाव की है। न उसे सिनेमा की घृणा है, न माँस से और न ही वर्तमान फैशन में अरुचि है, परन्तु याद रखना मेरा नाम शमशेरसिंह हैं। मैं फौजी हूं, क्षत्री पुत्र सरदार हूं, यदि तुमने प्रतिज्ञा भङ्ग किया तो मैं अपनी पुत्री का रण्डापा सह लूंगा, परन्तु सिर खड्ग से जुदा कर दूंगा, चाहे फिर फांसी ही चढ़ जाऊं। बोल ! सोचकर उत्तर दे, है स्वीकार ?

जोरावरसिंह | उसकी तो शपथ ले चुका हूं। मुझे यह शर्त स्वीकार है ! स्वीकार है ! ! स्वीकार है ! ! !

(५)

अब सम्बन्ध हो गया। विवाह की तिथि निश्चित होने लगी। जोरावर सिंह ने कहा, 'एक सप्ताह के भीतर-भीतर विवाह हो जाये। सूबेदार ने स्वीकार किया और कहा मुझे क्या कमी है !'

सूबेदार तुरन्त अपने घर चला गया, जाकर समाचार सुनाया। उसकी स्त्री तो बखतावर सिंह को जानती थी बहुत प्रसन्न हुई। पुत्री को भी शुभ समाचार सुनाया कि तेरा पति लाट साहब के कार्यालय में है, एम. ए. है और आजकल डिप्टी बनने वाला है। पी. सी. एस. के ग्रेड में आ चुका है।

दोनों घरों में चहल-पहल और बड़ा हर्ष होने लगा। पांच दिन गुजरते देर न लगी। छठे दिन बारात ने चढ़ना था। सूबेदार ने कहला भेजा कि खूब राग रंग हो, आतिशबाजी छोड़ी जाये। वर

बड़ी अच्छी ऊंची कक्षा की घोड़ी पर सवार हो। हम खाली बन्दूकों और पटाखों से सलामीं करेंगे, क्योंकि वर हमारे लिए राजा है।

(६)

करनी का फल

बारात खूब सजधज कर गई, उतारा हुआ रात को बारात नियमपूर्वक चढ़ी। वर महाशय एक बड़ी सर जोर उत्तम श्रेणी की घोड़ी पर आरूढ़ हुआ। और बाजे गाजे बजने आरम्भ हुए घोड़ी इस ध्वनि से नीचे ऊपर होने लगी। एक पटाखा छूटा, घोड़ी खड़लाप हो गई। जोरावरसिंह को घोड़ी पर बड़ा क्रोध आया कि 'मैं मनुष्यों पर शासन करता हूँ, तू पशु होकर मेरे वश में नहीं आता।' एक हन्टर लगाया, घोड़ी उछल पड़ी और लगाम जोरावर के हाथ से छूट गई। घोड़ी ने उछाल किया कि वह कई गज के फासले पर धड़ाम से जा गिरा और घोड़ी हवा हो गई।

बारातियों का ध्यान इधर हुआ, देखा तो जोरावर के सिर से खून वह रहा है। आंखें और दाँत बाहर निकल पड़े हैं। अत्यन्त भयानक आकार वना हुआ है, भुजाएं बाहर निकल गईं, कमर टूट गई। आवाज दी गई तो वह समाप्त हो चुका था। हर्ष के शादियाने मातम के वाजों में बदल गये। हंसना, कूदना, खेलना सब बन्द हो गए। हाहाकार मच गईं रोती पीटती बारात, वधु के बजाए, शव के साथ वापिस आ पहुँची। सारे नगर में कोहराम मच गया। माता ने सुना तो रोने सिर पीटने लगी और पति से लहने लगी, जोरावरसिंह को उसके अभिमान ने मार डाला। अबला प्रेम की 'आह' उसे खा गईं।

(७)

अविचार की सीमा

दूसरे दिन चौधरी दीवानमल को भी किसी और साधन से सूचना पहुंच गई। प्रेम ने सुना तो जोर-जोर से रोने लगी। चूड़ा तोड़ दिया, जो साधारण आभूषण पहने हुई थी, वह भी उतार दिये। उसके माता और पिता भी रोते पीटते रहे कि हमारी पुत्री दुहागिन हो गई।

आषाढ़ की ८वीं तिथि थी। दीवानमल ने परामर्श किया कि हमें प्रेम को साथ ले जाना चाहिए। किसी ने कहा नहीं, वह रुष्ट होंगे। सम्बन्ध छोड़ चुके हैं दहेज वापिस कर दिया है और किसी ने कहा मर्यादा का पालन अवश्य करना चाहिए।

अन्ततः चौधरी दीवानमल, उसकी स्त्री और प्रेम मोटर में चढ़े। नगर से बाहर मोटर खड़ी कर ली और रोते हुए उनके घर पहुंचे। ज्यों ही उन्होंने प्रेम को देखा, सब बरस पड़े। लगे अपशब्द और ताने सुनाने को कि तू ही डायन निकली। मनहूस निकली। पति की आज्ञा मान लेती, यहां खा-पी लेती तो उसके साथ यह दुर्घटना न बनती। जा चली जा। तुझे तो वह शपथ लेकर त्याग चुका था फिर क्यों आ गई? जा, अपना और पति ढूंढ ले, और विवाह कर ले। हमारे घर में हमें दुःख देने आ गई।'

बेचारों को रोते हुए घर से निकाल दिया गया? तीनों घर वापिस चले आये। उनके इस अपमान की चर्चा सब सब लोगों ने सुनी और उन्हें शान्ति दी।

* * *

॥ ओ३म्

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

शुभ परामर्श

संकोच और सोच विचार   दुखिया के मन की

कुछ कालान्तर महाशय ज्ञानप्रकाश जी चौधरी दीवानमल जी के पास आये और एकान्त में चौधरी दीवानमल और उनकी स्त्री से कहा, भाई! तुम मेरे मित्र हो, नगर के महान व्यक्ति हो। जब जोरावरसिंह ने शपथ लेकर निकाल दिया था तो हम सब मित्र सम्बन्धी उसी समय चाहते थे कि तुम प्रेम के जीवन को नष्ट न करो, उसका विवाह कर दो। यह अभी कुंवारी है परन्तु कहने का साहस न होता था। खैर, अब वह समय भी निकल गया अब तुम पर कोई गिला नहीं, इसका विवाह कर दो। यह अभी बालिका है।

दीवानमल—ओहो! तू बुद्धिमान होकर अपना मित्र होकर ऐसा कहता है? विधवा का विवाह वेद शास्त्र के विरुद्ध है।

ज्ञानप्रकाश—भाई मित्र! तनिक धैर्य से बात सुन। हम तेरे शुभचिन्तक हैं, अहित चिन्तक नहीं प्रेम तो मेरी अपनी पुत्री है। सन्तोष और प्रेम दोनों को आपने स्वयं ही एक समान समझा हुआ है। प्रथम तो तेरी पुत्री अक्षत योनि है, कुमारी है इसलिए इसका कुमार से भी विवाह हो सकता है। यदि अक्षत वीर्य वर मिलना कठिन है तो मैं अच्छा वर ढूंढ देता हूं। यदि कोई विधवा कहकर

आपत्ति उठाये तो वेद मन्त्र मैं प्रस्तुत कर देता हूं। ऐसे काल में विधवा विवाह की आज्ञा है।

इयं नारी पतिलोकं वृणाना निपद्यत उप त्वामर्त्यं प्रेतम्।
धर्मं पुराणमनुऽपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि ॥१॥
उदीर्ष्व नार्यभि जीव लोकं गतासुमेतमुप शेष एहि:।
हस्तग्राभस्य दधिषोस्तवेदम् पत्युर्जनित्वभि सं बभूथ ॥२॥
अपश्यं युवतिं नियमानां जीवां मृतेभ्यः परीणीमानाम्।
अन्धेन यत् तमसा प्रावृतासीत् प्राक्तो अपाचीमयं तदेनाम् ॥३॥
प्रजानत्यघ्नये जीव लोकं देवानां पन्थामनुसंचरन्ती।
अयं ते गृहपतिस्तं जुषस्व स्वर्गं लोकमधि रोहयैनम् ॥४॥
(अथर्व० का० १८। सू० ३। मं० १, २, ३, ४, ॥)

अर्थात् हे मनुष्य ! यह स्त्री लोक अर्थात् वैवाहिक अवस्था को स्वीकार करने की इच्छा करने वाली प्राचीन सनातन धर्म का पालन करती हुई, तेरे पास आती है, इसके लिए तू सन्तान और पर्याप्त धन दे।

हे स्त्री ! तू इस गत प्राणपति के पास पड़ी, वहां से जीवित मनुष्यों के स्थान में उठकर आ, यहां आ। तेरे (पाणिग्रहण) करने वाले पति के साथ इतना ही पतित्व उत्पन्न हुआ था ॥२॥

मरे हुए पति से दूर की गई जीवित तरुणी स्त्री का विवाह किया हुआ देखा है जो गाढ़ अन्धेरे के शोक से आच्छादित थी, इस पृथक् पड़ी हुई स्त्री को प्रगतिशील मैं लाया हूं ॥३॥

विधवा युवती स्त्री का पुनर्विवाह होता है। विधवा अवस्था

में जो स्त्री शोक में थी, उसको उठाकर विवाहित कर देने से उसका शोक दूर हो जाता है।

हे घात पात न करने करने वाली स्त्री ! जीवित मनुष्यों की अवस्था को जानने वाली और देवों के मार्ग का अनुसरण करने वाली तू हो। यह तेरी इन्द्रियों का रक्षक है, इसको सेवा कर और इसको सुखमय लोक में प्राप्त कराओ ॥४॥

संकोच और सोच विचार

दीवानमल— अच्छा ! कुछ दिन और बीत लें।

महाशय जी—क्या मैं तब तक कुंवारा वर ढूंढू ?

दीवानमल— नहीं, अभी ढूंढ न करें। हमें जरा धैर्य आ जाये फिर आप से कहेंगे।

सन्तोष कुमारी ने प्रेम की यह अवस्था देख कर मन में बड़ा पश्चाताप किया। उसके मन को ठेस पहुंच गई।

सन्तोष कुमारी की लग्न

प्रतिदिन उसके लिए प्रार्थना करती थी कि प्रभो ! इसके सुदिन लावो। प्रेम के पास गई, उसके मन को बहलाना चाहा परन्तु वह कैसे बदले। प्रेम की माता ने कहा, पुत्री ! तू तो प्रतिदिन प्रार्थना करती थी कि इसके सुदिन आवेंगे। अब बेचारी क्या करे ?

सन्तोष कुमारी—माता ! मेरी प्रार्थना सच्चे हृदय से होती थी। मैं ही प्रेम के दुःख का कारण बनी हूं। मेरी प्रार्थना अवश्य स्वीकार होगी, मुझे अपने प्रभु पर निश्चय है। वह प्रेम और आप सब को सन्तोष देंगे। यह मैं नहीं जानती कि कैसे देंगे, पर वह इसके दिन अच्छे करेंगे, प्रभु के बड़े लम्बे हाथ हैं।

दुःखिया के मन की

सन्तोष कुमारी ने एक दिन एकान्त में प्रेम से पूछा, 'बहिन ! मुझे सत्य सत्य अपने मन की कहो कि तू किसी नव-युवक कुलीन बालक से विवाह करने को तैयार है अथवा सारी आयु विधवा का जीवन बितायेगी ।

प्रेम ने मुख नीचे कर लिया और कहा, अब क्या विवाह करना है । जो भाग्य में था मिल गया ।

सन्तोष कुमारी—नहीं बहिन, नहीं ! यह भूल है । तुम्हारे माता पिता के सन्तान नहीं, न अब हो सकती है । सारा कुल वंश रहित हो जायेगा । तूने यदि सेवा न की तो जन्म अकार्थ गया । तू अभी कन्या है । देश और जाति की सेवा करने के तू योग्य नहीं । प्रभु भक्ति में भी तेरा मन अभी उस समय तक नहीं लग सकता जब तक वैराग्य न हो । इसलिए तू दोनों ओर से न जा । मेरा कहा मान ले, विवाह का विचार अवश्य कर ।

प्रेमलता—यदि तुम और तुम्हारे पिताजी सत्यव्रत जैसा कोई वर ढूंढ दें तो कर लूंगी ताकि मेरा भी यह जीवन सफल हो सके ।

सन्तोष घर में चली गई । बड़ा गम्भीर विचार करती रही ।

स्वप्न या भविष्यवाणी

अब उसका अभ्यास भी बड़े जोरों पर था । इधर हिन्दी रत्न की परीक्षा भी हो चुकी थी और वह स्वतन्त्र थी । एक रात्रि को उसे स्वप्न आया कि प्रेम का विवाह सत्यव्रत से हो रहा है । वेदी बनी हुई है, विवाह पढ़ा जा रहा है । किसी ने आश्चर्य से कहा, 'अरे महाशय ज्ञानप्रकाश ! तुझे क्या हो गया ? सन्तोष कुमारी के होते

हुए सत्यव्रत का दूसरा विवाह कर रहा है।' तो उसने कहा ओहो! तुझे ज्ञान नहीं? सन्तोष बेचारी तो मर चुकी है; हमें उसका बड़ा शोक है, परन्तु वह स्वयं कह गई है कि प्रेम अक्षत योनि है और मेरा स्वामी भी अक्षत वीर्य है। इन दोनों का विवाह करके ही सन्तोष करना। इसे ही सन्तोष समझना।

वैराग्य

इसके तुरन्त बाद सन्तोष की आंख खुल गई। स्वप्न याद आया। बड़ी विस्मृत हुई। ध्यान करने का समय था, ध्यान में बैठ गई। स्वप्न क्या था, मानों संसार की असारता का चित्र पेश करने कोई दिव्य दूत आया था। अब ध्यान के पश्चात् उसे वैराग्य होने लग गया। हंसी सी आने लग गई। सन्ध्या में, मौन में, कथा में ही बैठे-बैठे मस्त हो जाती और अपने तन बदन को सुध न रहती।

२५ आषाढ़ की रात्रि को सत्यव्रत बड़े प्रेम पूर्वक उससे बातें करने लगा तो सन्तोष कुमारी ने एक ठण्डी श्वास भर कर कहा, 'स्वामिन आपकी यह सब बातें मुझे अच्छी नहीं लगतीं, आप किस प्रकार की बातें करते हैं?' क्योंकि वह कह रहा था कि अब श्रावण समीप है, कनक घर में ला रखी है। अब सब तुम्हारी इच्छा पर है। परन्तु मैं चाहता हूं कि अब गृहस्थ किया जावे।

सत्यव्रत सन्तोष का उपर्युक्त आशा के प्रतिकूल उत्तर सुनकर चकित रह गया तो सन्तोष ने प्रेम भरे स्वर में कहा, प्रभो! मुझे तो अब किसी वस्तु की इच्छा नहीं रही, न गृहस्थ की, न सन्तान की और न ही आपकी। अब तो मुझे प्रत्येक वस्तु में फीकापन

प्रतीत होता है। सामने ज्योति में प्रभु दिखाई देते हैं। मैं तो अब कोई दिन की मेहमान हूं।

सत्यव्रत यह सुनकर और भी चकित हो गया! समझा अभ्यास ने सिर में उष्णता चढ़ा दी है, शायद उन्मत्त होकर ऐसा बोल रही है।

रात्रि को सत्यव्रत इसी चिन्ता में सो गया। प्रातः को पिताजी से रात्रि का सब वृत्तान्त कह सुनाया। ज्ञानप्रकाश जी ने कहा ग्रीष्म ऋतु के कारण ध्यान से उष्णता भी हो जाती है परन्तु मुझे भी ऐसा प्रतीत होता है कि प्रभु ने उसे वैराग्य दे दिया है और साक्षात् अनुभव हो रहा होगा उसके ज्ञान और वैराग्य के पूर्व संस्कार बड़े प्रबल हैं मानो कोई योग भ्रष्ट जीव अधूरी शिक्षा रख के आया हो। फिर उस योगिन का मेल, इसका गृहस्थ न करना, इतनी ऊंची बातें, यह सुधार की लगन, निर्भीकता ये सब बातें किसी साधारण जीव में एकत्रित नहीं हो सकतीं। अच्छा देखो, जो भाग्य। यदि उन्मत्ता है तो भी अभी मालूम हो जाएगा और यदि ज्ञान से कहा है तो भी।

नित्य कर्म को करती हुई सन्तोष बोली, 'पिता जी! मूर्ख जन कहते हैं कि जगत कटु है, कुछ नहीं परन्तु मैंने समस्त संसार का चक्र लगाया, आहा! यह कैसा सुन्दर है परन्तु जीवात्मा बहुत अच्छा है और इससे परमात्मा तो बहुत ही अच्छा है। जब कोई जीव अपने बहुत ही अच्छेपन को छोड़कर प्रकृति के अच्छेपन में लग जाता है तो उसका पतन

भावना-भरी बातें

हो जाता है। यदि अपने में ही मस्त रहे तो कोई विकार नहीं, परन्तु यदि परमात्मा की शरण में चला जाय तब तो बस स्वयं भी अत्युत्तम हो जाये।

ज्ञानप्रकाश—पुत्री ! तुझे अब संसार में क्या वस्तु प्रतीत होती है।

सन्तोष कुमारी—मुझे तो अब सर्वत्र प्रभु की ज्योति भान होती है और कुछ नहीं दीखता।

ज्ञानप्रकाश—यह वर्णाश्रम धर्म क्या है ? जिस आश्रम में तुम हो, यह क्या प्रतीत होता है।

सन्तोष कुमारी—यह सब मनुष्य के पार उतरने के लिए भूमियां हैं और संगठन के लिए समाज का प्रबन्ध है, वरन् कुछ नहीं। मेरे लिए तो अब कोई भी वर्णाश्रम का बन्धन नहीं रहा, प्रभु की लीला द्वारा मुझे पार्ट (भाग) अदा करने के लिए भेजा गया था, वह पार्ट प्रभु ने स्वयं पूरा कर दिया।

यह सुनकर वह चकित हुए और बोले, 'कैसे पूरा कर दिया ? अभी गृहस्थाश्रम तो तुम्हारा अब आरम्भ होगा।'

संतोष कुमारी—मैंने एक दिन आपकी कथा में वेद का यह पवित्र मन्त्र सुना था—

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवानामुतमानुषाणाम्।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्॥

अर्थात् देवों और मनुष्यों को स्वीकार करने योग्य यह भाषण मैं स्वयं बोलता हूं। जिस-जिस को मैं योग्य समझता हूं उसको

मैं तेजस्वी बनाता हूँ, ब्राह्मण बनाता हूं ऋषि बनाता हूं और सुबुद्धिमान बनाता हूं। (अथर्व० का० ४। सू० ३। मं०३।।)

तब मेरी समझ में कुछ न आता था कि यदि प्रभु ही सब कुछ कराते और बनाते हैं तो मनुष्य काहे को कुछ पुरुषार्थ करे। परन्तु अब ध्यान में समझ आई कि यह वेद मन्त्र साधारण मनुष्यों के लिए नहीं। जिन जीवों के पूर्व संस्कार प्रबल उन्नति के होते हैं, उन्हीं को वह स्वयं साधनवान् और समर्थ बनाता जाता है। मुझ से उसे जो कार्य कराना था, कुमारी अवस्था में तो मुझे इसका विचार तक भी न था। देखिए! ऐसे घर में पैदा किया जहां और कोई झमेला ही न था, एक माता और एक मैं। न बाहर की वायु लगी, न कोई संस्कार बैठा। पूर्णरूपेण एक कार्य में संलग्न रही। फिर विवाह हुआ तो ऐसा कार्य सौंपा कि ससुराल प्रतीत ही न हुआ, अपितु माता-पिता का सा लाड़ प्यार रहा। एक ऐसे उत्तम और सुन्दर जीवन वाले परिवार का सङ्ग अपने आप प्राप्त होता रहा। फिर पतिदेव जो मिले वह धर्म शास्त्र की आज्ञा को श्रद्धा से स्वीकार करने वाले, वरन् मैं कुमारी अवस्था में यह शिक्षा और देवियों के सुधार का कार्य कैसे कर सकती? चाहे अब मैं कुमारी कन्या की तरह ही रही, परन्तु विवाहित होने से मुझे कोई अड़चन न थी। फिर प्रभु ने अपने आप ही एक योगिन देवी को को भेज दिया जिससे वह कार्य अब समाप्त हो गया। आपकी आज्ञा से वह कितनी जल्दी और कैसा सुगम हो गया। अब मेरा बन्धन तो सब टूट चुका है क्योंकि बन्धन का कारण जो मोह है

वह मुझे नहीं रहा। अब मुझे प्रत्येक वस्तु में परमात्मा का भान होता है, सब में प्रेम है। अब थोड़े दिनों में यह जीवात्मा शरीर को भी त्यागकर अपने परम लक्ष्य को प्राप्त करने वाला है।

इतना सुनने पर सत्यव्रत, उसकी माता और ज्ञानप्रकाश के आश्चर्य की सीमा न रही और सत्यव्रत तथा उसकी माता तो देर तक एकान्त में रोते रहे। ज्ञानप्रकाश बड़ा अनुभवी व्यक्ति था। उसे दुःख भी हुआ और हर्ष भी शोक तो इसलिए हुआ कि ऐसी साक्षात् देवी दिव्य गुण सम्पन्न प्राप्त करके भी टिका न सके और हर्ष इसलिए कि उनके घर की एक पुत्री इस परम पद को प्राप्त कर गई। परन्तु फिर भी सन्तोष को तो ज्यों-ज्यों वैराग्य और प्रभु प्रेम की मस्ती बढ़ती गई, उनकी व्याकुलता और चिन्ता बढ़ती गई।

प्रेमलता का स्वप्न

प्रथम श्रावण संक्रान्ति का दिन आ रहा है। प्रातःकाल ४ बजे प्रेमलता अपने घर में सोई हुई है। स्वप्न में ही खूब धाय मार-मार कर रोने लगी। माता-पिता जाग पड़े। उसे उठाया, पूछा, पुत्री! क्या है? क्यों डर गई? प्रेमलता धीमी स्वर में बोली, 'बहुत बुरा स्वप्न आया, मानो बहिन सन्तोष कुमारी मर गई और उसके घर वाले सब रो रहे, हैं, इसलिए मेरी चीख निकल गई। परमेश्वर करे मेरा स्वप्न असत्य हो।

दीवानमल—पुत्री! कभी स्वप्न भी सच्चे होते हैं? कहाँ तुम कहां वह? अब देख लेगी, स्वप्न असत्य था अथवा नहीं। यह असत्य ही हुआ करते हैं।

माता—परमात्मा करे, सदा जीवित रहे।

इधर प्रातःकाल तीन बजे से सन्तोष अपने ध्यान में मग्न है, ऐसा हर्ष आ रहा है, खूब स्नान किया. हार शृङ्गार जो कभी न करने वाली थी वह भी किया और नीचे उतर कर अपने कमरे में आकर भीतर से किवाड बन्द कर खूब मस्ती और उच्च स्वर में गाने और नाचने लगी. 'पति लोकं गमेयम् ! पतिं लोकं गमेयम् !! पति लोकं गमेयम् !!!'

तैयारी

बड़ी देर हो गई। सत्यव्रत और उसकी माता बाहर से सुनते रहे। बड़ी सुरीली और मस्त कर देने वाली ध्वनि थी। मस्त भी करती थी और सत्यव्रत का कलेजा भी धड़काती थी। इधर कतिपय दिनों से सत्यव्रत ही यज्ञ का सब कार्य करता रहा। सन्तोष को तो अपनी ही सुध न रहती थी। चौके का कार्य भी सत्यव्रत की माता ही करती रही। सन्तोष ने इन दिनों कोई कार्य किया ही नहीं।

यज्ञशाला में बैठे हुए सब उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। ज्ञानप्रकाश भी 'पति लोकं गमेयम्' सुन रहा है और मन में कह रहा है कि बस अब यह पति प्रम के लोकं को प्राप्त करने वाली है, गई कि गई।

बहुत देर गुजरने के बाद सत्यव्रत की माता गई। बाहर से वेग के साथ द्वार खटखटाया। द्वार तो खुला हुआ था, किसी ने इस विचार से नहीं खोला था कि शायद अन्दर से बन्द होगा। द्वार खुल गया ; संतोष कुमारी के शृङ्गार को देखकर बड़ी चकित

हुई, कहा, 'पुत्री! यज्ञशाला में तुम्हारे पिता जी बैठे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

संतोष अन्दर वृत्ति थी, थोड़ी देर बाद जब वाह्यवृत्ति हुई और यज्ञशाला में चली गई। (जहाँ पहले वह सब की चरण वन्दना करती थी, आज यह मर्यादा सब भूल गई) और आसन पर आ बैठी।

इधर प्रेम की माता ने कहा, 'मैं जाऊं तो सही, सन्तोष को देख तो आऊं'। उसके पति ने कहा. 'चलो मैं भी चलता हूं, प्रेम से कहा 'तुम घर रहो।' परन्तु प्रेम बोला, 'नहीं, मैं भी चलूंगी, मेरी चिन्ता भी दूर हो जायेगी।' चुनांचे तीनों वहां आ गये और यज्ञशाला में बैठ गये, परन्तु सन्तोष सबसे उपराम वृत्ति बनी रही

ज्ञानप्रकाश—पुत्री सन्तोष! आज नियम विरुद्ध यह हार श्रृङ्गार कैसा?

सन्तोष कुमारी—आज मेरा विवाह हो गया है, मैं सदा सुहागिन बन गई हूं। नित्य कर्म और हवन कर लीजिए। मेरा पति प्रीतम प्राणप्रनाथ स्वामी प्रभुदेव मेरी डोली लेने के लिए बहुत उतावले हो रहे हैं। माता-पिता अपनी कन्या को बर के साथ डोली रवाना करते हुए बहुत रोते हैं। आपने वह बात नहीं करनी। यह मेरा स्वयंबर विवाह हुआ है।

सबके सब चकित रह गये। परन्तु सन्तोष ने शीघ्रता से स्वयं प्रार्थना मन्त्र उच्चारण आरम्भ कर दिये। आज इन मन्त्रों में

क्या प्रेमरस भरा हुआ था। सब उपस्थित बेसुध-बुध, तल्लीन और मस्त हो गये। हवन आरम्भ हुआ और समाप्त भी हो गया। पूर्णाहुति हुई तो सन्तोष बोली—

'अब मेरी डोली तैयार है, मैं इसमें आरूढ़ होने लगी हूं। प्रेमलता के दुःख का कारण में बनी थी। उसने मेरे उपदेश से सुपथ पर दृढ़ रहने के लिए यह आपत्ति झेली, परन्तु धन्यवाद है, परमेश्वर ने जहां मेरा जीवन स्वीकार किया, वहाँ प्रेमलता और उसके माता-पिता के मनोरथों को पूर्ण कर दिया। प्रेमलता भी अक्षत है और सत्यव्रत भी अक्षत है। दोनों का विवाह कर देने में अब देरी नहीं करनी चाहिए। मैं अपने दहेज में ओ३म् ओ३म् शान्तिः शान्ति' कहते ही प्राणपखेरू निकलने लगे और एक ज्योति सी ब्रह्मरन्ध्र से निकलती दिखाई दी और लुप्त हो गई

यज्ञशाला में सन्तोष कुमारी 'सौ वर्ष की सोई पड़ी है।' बाहर शोकासन बिछ गये। आन की आन में नगर में समाचार फैल गया। जनता के समूह के समूह आ रहे हैं और बड़े आश्चर्य से वृत्तान्त पूछ रहे हैं। सारे का सारा वृत्तान्त प्रत्येक को विदित हो गया।

ज्ञानप्रकाश ने सन्तोष की माता दयावन्ती के पास आदमी दौड़ाया ताकि वह शीघ्र आकर पुत्री के मुख का दर्शन कर सके। सूचक ने दयावन्ती को मृत्यु का समाचार न सुनाया और शीघ्र चलने को कहा। वह बेचारी कुछ भी न संभली, जैसे खड़ी थी

वैसे ही घर को तालिका लगाकर चल पड़ी। देर होती जा रही थी। सन्तोष के शब को उठाने की तैयारी कर रहे थे, दयावन्ती आ पहुंची। क्या देखती है कि शोकासन बिछे हुए हैं सारा नगर एकत्रित है। सत्यव्रत ने ज्यों ही अपनी धर्ममाता दयावन्ती को देखा, उससे रहा न गया। ज्योंहि उठा जोर की चीख उसके मुखसे निकल गई। इधर ज्ञानप्रकाशजी ने कहा, 'बहिनजी! अपनी सन्तोष को सम्भाल लो। हम से सदा के लिए रूठ गई।' दयावन्ती का इतना सुनना था कि एक पग आगे बढ़ाया और सन्तोष के शव देखकर चारों शाने चित्त गिर पड़ी और वह भी सदा के लिए विदा हो गई।

अब माता और पुत्री दोनों के तख्ते बने और एक साथ दोनों चले और श्मशान भूमि में दोनों का दाह संस्कार वैदिक रीति से हुआ।

वापसी पर सबने मिलकर सद्गति और शान्ति के लिए प्रार्थना की। स्नान करके जब घर पर ज्ञानप्रकाश और सत्यव्रत को पहुंचाया तो सब बिरादरी ने कर जोड़कर कहा कि अब सन्तोष कुमारी की वसीयत को चौथे के बाद तुरन्त पूरा कर दिया जावे। अब इसमें शोक और संकोच का स्थान रखना केवल लोक लज्जा से सत्य को पीठ दिखाना होगा।

चौथे की क्रिया पर सब बिरादरी शामिल हुई, हवन यज्ञ हुआ, अस्थियाँ चुनी गईं। सत्यव्रत और ज्ञानप्रकाश को बाजार में ले आये। अब फिर बिरादरी ने चौधरी दीवानमल और महाशय

ज्ञानप्रकाश को बाधित किया। तिथि निश्चित कर दी गई। सत्यव्रत और प्रेम दोनों का विवाह हो गया। अब सत्यव्रत और प्रेमलता पति-पत्नी रूप में घर में रहने लगे।

ओ३म् शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

ज्वालापुर वानप्रस्थाश्रम — टेकचन्द
आर्यनगर (उ० प्र०) — (प्रभु आश्रित)

ता० ६।५।१६४१ से ता० ८-७-१६४१ तक व्रत।

॥ ओ३म् ॥

प्रभु-आश्रित धर्मार्थ औषधालय
सुभाष नगर नई दिल्ली-२७

ब्रह्मलीन महात्मा प्रभु-आश्रित जी के ब्रह्मधाम जाने के पश्चात् १ अगस्त १९६७ को मैंने पूज्य अग्निहोत्री जी 3। U B जवाहर नगर के सहयोग में "प्रभु आश्रित धर्मार्थ ट्रस्ट" के संरक्षण में आर्य समाज सुभाष नगर में 'प्रभु आश्रित धर्मार्थ औषधालय" आयुर्वेदिक पद्धति से चलाया। उस समय इस पर एक हजार रुपया मासिक खर्चा का वजट था। जो धीरे-२ तीन हजार मासिक से ऊपर आने लगा।

इसमें श्रीमती शकुन्तला गुप्ता श्री अमरनाथ गुप्ता (परिवार) श्री गोपालकृष्ण गुप्ता (अम्बाला) डा० नारायणदास (गोहाटी) श्री रामधारी दीपचन्द गोयल (किरतपुर) श्री वी० के० भाटिया श्री दर्शनकुमार जी (Delite safe) श्रीमहेन्द्र प्रताप नारंग (धनवाद) श्री जीवनदास चावला (मल्कागंज), श्री लोकनाथ रामाप्यारी आदि महानुभावों ने आशातीत सहायता दी। वहाँ श्री देवव्रत गुप्ता (डिफैन्स कालोनी) वालों ने बड़ी उदारता से दान्तों का नया विभाग खोलने के लिए ३०००) वार्षिक सहायता देते हुए इस पुनीत कार्य में मेरा उत्साह बढ़ाया।

इन औषधालयों में वर्ष में २० हजार से अधिक रोगी लाभ उठाते हैं, जिस पर वर्ष में चालीस हजार रुपया व्यय होता है। यह सारा खर्च एक रुपया मासिक से २५०) मासिक तक के सौ सदस्य वहन करते हैं। इस कार्य में डा० राजरानी सचदेवा डा० प्रकाश छावड़ा कुमारी सुनीता का भरपूर सहयोग है। आर्य समाज सुभाष नगर के अधिकारी भी इसमें अपना पूर्ण योगदान देते हैं। जिस के परिणाम स्वरूप १९७५में महाशय चुन्नीलाल धर्मार्थ, ट्रस्ट के सहयोग से म० धर्मपाल जी मालिकान महाशियां दी हट्टी, ने २लाख की लागत से "श्रीमती चननदेवी नेत्र धर्मार्थ चिकित्सालय" की स्थापना कर के सुभाष नगर तथा पश्चिमी दिल्ली की जनता पर महान् उपकार किया है। इस पर वह एक लाख रुपया वार्षिक खर्चा कर रहे हैं। बारह माह आप्रेशन होते हैं। इसका श्रेय श्री ओमप्रकाश जी आर्य तथा म० सुखदेव जी आदि पर है। भगवान् हम सबको शक्ति दे कि जनता जनार्दन के हित में चलने वाले इन चिकित्सालयों द्वारा जनता को शारीरिक मानसिक आत्मिक सुख शक्ति मिले। प्रभु आश्रित धर्मार्थ औषधालय तथा दन्त चिकित्सालय के विस्तार के लिए सहयोग की आवश्यकता है। भगवान् यह कार्य भी उत्साही कार्यकर्त्ताओं के सहयोग से पूर्ण करेंगे। ब्रह्मलीन प्रभु आश्रितजी की सूक्ष्मधारा से मैं यह कार्य अनवरत श्रद्धा-भक्ति से कर रहा हूं। भगवान् मुझे भी उनकी आशीर्वाद से कृतार्थ करें। इसके साथ ही श्री उदय प्रकाश आर्य श्री डा० सत्यानन्द को भी आशीर्वाद दें।

(आचार्य लखपतराय शास्त्री)

परिशिष्ट

ओ३म्

प्रस्तावना

आर्य संस्कृति के महर्षियों का हम मनुष्यों पर अपार उपकार है कि जिन्होंने स्मृतिग्रन्थों के अन्दर संस्कारों की पद्धतियां लिखीं, फिर महर्षि दयानन्दजी महाराज ने उनका क्रम बनाकर संस्कारविधि पुस्तक बनाई। संस्कार विधि में गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक १६ संस्कार हैं। १६ संस्कारों में १३ जीवन विकास के हैं। शेष ३ समेटने के हैं। विकास के संस्कारों में विवाह-संस्कार अन्तिम है। विवाह-संस्कार को विशेषता है कि बाकि संस्कार प्रत्येक नर-नारी के अपने-अपने अलग किये जाते हैं, वह बनने वाले दम्पत्ति का इकट्ठा किया जाता है।

संस्कारों में बिरादरी को, इष्टमित्रों को, बुजुर्गों को बुलाया जाता है। कारण केवल तमाशा महफिल नहीं, परन्तु इसमें गम्भीर फिलासफी निहित है। प्रत्येक संस्कार में प्रतिज्ञायें कराई जाती हैं, एकान्त में की गई प्रतिज्ञा आलस्य प्रमादवश प्रायः छूट जाती है। बिरादरी व बजुर्गों के सामने की हुई प्रतिज्ञायें लज्जावश भी हम पालते हैं। जीवन सफल होता है।

विवाह-संस्कार में वर की चार प्रतिज्ञायें हैं :—

१. हस्तलेवा के छः मन्त्र वर-वधु की सम्मिलित प्रतिज्ञायें हैं।
२. खीलों की क्रिया—भोग इत्यादि के उत्तरदायित्व को स्वीकार करना।

३. मांग भरना, केशों को छूना, बालदेवी की इज्जत का प्रतीक है। वधु की इज्जत की रक्षा का व्रत लेना।

४. हृदय पर हाथ रखकर—मेरा व्रत है तुझे हृदय देता हूँ। तेरा चित मेरे चित के अनुकूल हो—मेरे वचन को एक मन होकर सुन, सेवन कर, प्रजापति ने मुझे तेरे साथ नियुक्त किया है।

वधु के व्रत

सात प्रतिज्ञायें :—

१. अघोरचक्षु, पति अघ्नेधि, शिवा, सुमना, वीर, सुदेवा, ऋृकामा ।

आंख में शर्म, पति से पाप न करना, कल्याण-कारिणी होना, सुन्दर विचार, वीर सन्तान की इच्छा करना । (शन्नो भव द्विष्पदे चतुष्पदे)

घर के मनुष्यों, पशुओं के लिए हितकारी होना । प्रमे पतिमान: पन्था कल्पतां शिवा अरिष्टा पति लोकं गमेयम् ।

जीवन सफलता के लिये पति के पथ पर चलूंगी, कल्याण-कारिणी, स्वस्थता के लिये पति लोक को जाती हूं ।

२. हस्तलेवा के छः मन्त्र हैं—

(क) सौभाग्य की वृद्धि के लिए आपके हाथ को पकड़ती हूं । पकड़ता हूं । हम एक दूसरे के हाथ बिक चुके--अभिप्राय है कि अप्रिय आचरण कभी न करेंगे ।

(ख)धर्मयुक्त मार्ग में प्रेरक मैं तेरे हाथ को ग्रहण करती हूं/करता हूं । धर्म से गृस्थ/गृहणी बनते हैं । मिलकर घर के कामों को करेंगे ।

(ग) पोषण करने योग्य पत्नी सौ वर्ष पर्यन्त सुखपूर्वक जीवन धारण को करे। पोषण वह वधु कर पावेगी जो घर वालों की प्रकृति अनुसार भोजन बना हित में खिलावेगी से की ज्ञाता हो। पोषण का दूसरा साधन संयमी जीवन है। संयम उन्हीं का होगा जिनका जीवन, आहार, पोषाक, विचार शुद्ध होंगे। ब्रह्मचर्य का पालन होगा।

पोषण का तीसरा साधन है जो एक दूसरे के लिये चिन्ता का कारण न बने। चरित्रवान् प्रेमपूर्वक निवास करें।

पोषण का चौथा साधन है जहां आहार पौष्टिक हो वहां उसे पचाने के लिये युक्तियुक्त श्रम करे, घर के काम स्वयं करें।

(घ) वर की प्रसन्नता के लिये सुन्दर वस्त्र व भूषण वर से ही प्राप्त करे। भाव यह है कि शृंगार पति के लिये है संसार को दिखाने के लिये नहीं। वह भी पति से पावे अन्य से नहीं।

(ङ) हम एक दूसरे के आनन्द-ऐश्वर्य को बढ़ावेंगे। आनन्द का आधार सच्चा प्यार है, सेवा है। इस सम्बन्ध में स्वामी रामतीर्थ जी ने बहुत सुन्दर कहा है—

मन से भी एक दूसरे की चोरी की भावना त्याग देंगे, उत्तम पदार्थ का चोरी से भोग न करेंगे। पुरुषार्थ त्याग उत्कृष्ट व्यवहार में एक दूसरे के लिए विघ्नकारी नहीं बनेंगे।

चोरी तो व्यभिचारी करते हैं। सदाचारी कभी चोरी नहीं करते। चोरी धन; वस्त्र की होती है परन्तु रूप व विचारों की भी चोरी होती है। इनसे बचना चाहिये।

३. शिला आरोहण—

(क) पत्थर पर चढ़-पत्थर जब तक पृथ्वी माता की गोद में टिका रहता है तो तूफानों का मुकाबला करता है। जब पृथ्वी की गोद से निकल पड़ता है तो उसका जरा-जरा बनता है; रेत बन जाती है। जब तक धर्म की गोद में रहेंगे हर परिस्थिति का सफलता से मुकाबला कर पावेंगे। जैसे धर्म को त्यागें तो हमारी कोई कीमत संसार में न होगी।

(ख) धातु बड़े मजबूत होते हैं परन्तु किसो न किसी पर पिंघल जाते हैं। पत्थर टूट तो सकता है पिघलता नहीं। भाव है—जीवन खत्म हो सकता है, धर्म को त्यागेगा नहीं। किसी भी भय व प्रलोभन के अवसर आने पर।

[४] खीलों की आहुति (भागाय स्वाहा) :—

जिन से रक्त का रिस्ता है जहां इतनी आयु पर्यन्त इकठ्ठे भोग भोगे वह स्थान व भोग भाग्य के सहारे त्यागती हूं। (यह त्याग की पराकष्ठा है) अब इस पितृगृह में मेहमान के सदृश्य आऊंगी।

[५] सप्त पदी क्रिया :—

(१) ओम् इषे एकपदी भव सा मामनुव्रता भव

विष्णुस्त्वानयतु पुत्रान् विन्दावहै बहूंस्ते सन्तु जरदष्टयः ।

(२) ओम् ऊर्ज्जे द्विपदी भव ।
(३) ओम् रायस्पोषाय त्रिपदी भव ।
(४) ओम् मायोभव्याय चतुष्पदी भव ।
(५) ओम् प्रजाभ्यः पंचपदी भव ।
(६) ओम् ऋतुभ्यः षटपदी भव ।
(७) ओम् सखा सप्तपदी भव ।

पूर्व दिशा
वधु के माता-पिता

उत्तर दिशा वर के माता-पिता	**हवन कुण्ड** **यज्ञ मण्डप**	**दक्षिण दिशा** पुरोहित

पश्चिम दिशा
वर-वधु

(क) सप्तपदी की क्रिया उत्तर दिशा जहां पर वर के माता-पिता बैठे हैं कराई जाती है। भाव यह है कि विवाह उपरान्त वर-वधु के चलन पर वर के माता-पिता की दृष्टि रहेगी।

(ख) यह मन्त्र भी वर बोलेगा । वधु को कहता है मेरे व्रत के अनुकूल बन । स्पष्ट है कि कहने वाला स्वयं पहले व्रतधारी हो । पहले दायां पैर बढ़ाना—जीवन में सीधा कदम हमेशा उठाना ।

(ग) जो परमेश्वर हमारे अन्दर समाया हुआ है उसी ने हमें नियुक्त किया है । उसी की प्राप्ति के लिये हम हमसफर होकर चलेंगे ।

(घ) सन्तान उत्पत्ति भी होगी ।

१. इष-भोग की प्राप्ति हेतु पुरुषार्थ करके उसे प्राप्त करेंगे ।

२. उर्ज-वल प्राप्ति के लिये ब्रह्मचर्य संयम व श्रम हम करेंगे ।

३. रायपोषाय-धनपुष्टी की प्राप्ति-किफायती-शियारी चिन्तारहित होना ।

४. मय—सुख प्राप्ति का साधन सच्चा प्रेम सेवा है ।

५. प्रजा—संतान प्राप्ति = सं + तान—आज्ञाकारी संतान बनाने के लिये वर-वधु एक दूसरे की मानने वाले हों ।

६. ऋतुम्भ—ऋतुगामी होना विवाहित जीवन में भी ब्रह्मचर्य का पालन है ।

७. सखे—सम ख्याति—दोनों गुणवान—मधुर भाषी हों—विचार समान—लक्ष्य एक व्यवहार में सत्यता हो ।

चाहते हैं—

रमण

इस	ऊर्ज	राय
तृप्ति	संयम	सन्तोष

यह तीन अपना-अपना पुरुषार्थ होता है।

प्रजा	ऋतु	सखे
संतान सिद्धि	ऋतुगामी समय की पाबन्दी	मित्रता प्यार समत्व

यह रमण के फल संयुक्त रूप के हैं।

वधु को ध्रुव दिखाना	अरुंधति
धर्म पर स्थिरता	साथ कभी न त्यागे

सूर्य
जीवन प्रकाश का अनुगामी हो

यत् एतद् हृदय तव तदस्य हृदय मम।
यत् इदं हृदय मम तत् अस्तु हृदय तव।

यह जो तेरा हृदय है वह मेरा हृदय होगा।
यह जो मेरा हृदय है वह तेरा हृदय होगा।
यह है एक दूसरे के प्रति आत्म समर्पण करना।

परमेश्वर की उपासना

दो घड़ी रात्रि से लेके सूर्योदय पर्यन्त प्रातः संध्या, सूर्यास्त से लेकर तारों के दर्शन पर्यन्त सायंकाल में सविता अर्थात् सब जगत् की उत्पत्ति करने वाले परमेश्वर की उपासना गायत्रादि मन्त्रों के अर्थविचारपूर्वक नित्य करे। (२।७६।१०१।५६)

जो मनुष्य नित्य प्रातः और सायं संध्योपासन को नहीं करता उसको शूद्र के समान समझकर द्विजकुल से अलग कर के शूद्रकुल में रख देना चाहिए। (२।७८।१०३।५८)

जंगल में अर्थात् एकान्त देश में जा सावधान होके जल के समीप स्थित होके नित्य कर्म को करता हुआ सावित्री अर्थात् गायत्री मन्त्र का उच्चारण अर्थज्ञान और उसके अनुसार अपने चालचलन को करे। (२।७९।१०४।५९)

जैसे दीमक बांबी को बनाती है वैसे सब भूतों को पीड़ा न देकर परलोक अर्थात् परजन्म के सुखार्थ धीरे-धीरे धर्म का संचय करे। (४।२३८।७५)

क्योंकि परलोक में न माता, न पिता, न पुत्र, न स्त्री, न ज्ञाति सहाय कर सकते हैं, किन्तु एक धर्म ही सहायक होता है। (४।२३९।७६)

यद्यपि निर्मली वृक्ष का फल जल को शुद्ध करने वाला है तथापि उसके नामग्रहणमात्र से जल शुद्ध नहीं होता किन्तु

उसको ले; पीस, जल में डालने से ही उस मनुष्य का जल शुद्ध होता है वैसे नाम मात्र आश्रम से कुछ भी नहीं होता किन्तु अपने-२ आश्रम के धर्मयुक्त कर्म करने से ही आश्रम धारण सफल होता है, अन्यथा नहीं। (६।६७।४४)

(१) मरा हुआ धर्म मारने वाले का नाश
(२) रक्षित किया हुआ धर्म रक्षक की रक्षा करता है, इसलिए
(३) धर्म का हनन कभी न करना, इस डर से कि
(४) मरा हुआ धर्म कभी हमको न मार डाले।

(८।१५।१२)

हे कल्याण की इच्छा करने हारे पुरुष! जो तू 'मैं अकेला हूं'' ऐसा अपने आत्मा में जानकर मिथ्या बोलता है सो ठीक नहीं है, किन्तु जो दूसरा तेरे हृदय में अन्तर्यामी रूप से परमेश्वर पुण्य-पाप का देखने वाला मुनि स्थित है, उस परमात्मा से डरकर सदा सत्य बोलाकर। (८।६१।५७)

* * *

वेद

जो पुरुष अर्थ–सुवर्णादि रत्न–और काम--स्त्री सेवनादि में नहीं फंसते हैं उन्हीं को धर्म का ज्ञान होता है। जो धर्म के ज्ञान की इच्छा करे, वे वेद द्वारा धर्म का निश्चय करें क्योंकि धर्म-अधर्म का निश्चय बिना वेद के ठीक-ठीक नहीं होता। (१।१३२।२।१३।९६)

सदैव वेद पढ़ने के आरम्भ और अन्त में 'ओ३म्' का उच्चारण करें। आरम्भ में ओंकार का उच्चारण न करने से पढ़ा हुआ विखर जाता है और बाद में 'ओ३म्' का उच्चारण न करने से पढ़ा हुआ स्थिर नहीं रहता।

(२।४६।७४।४१)

परमात्मा ने 'ओ३म्' शब्द के 'अ', 'उ' और 'म' अक्षरों को ओ३म् तथा 'भू' 'भुव' 'स्व' गायत्री मन्त्र की इन तीन व्याहुतियों को तीनों वेदों से दूहकर साररूप में निकाला है। (२।५१।७६।४२)

गायत्री मन्त्र = य = २२।९, ३६।३

स = ४।६२

ऋ = ३।६२।१०

जो ब्राह्मण, क्षत्रीय और वैश्य वेद को न पढ़कर अन्य शास्त्र में श्रम करता है, वह जीवता हो अपने वंश के सहित शुद्रपन को प्राप्त हो जाता है। (२।१४३ १६८।११३)

द्विज सदा जितना भी अधिक समय लगा सके उसके अनुसार आलस्यरहित होकर वेद का ही अभ्यास करे क्योंकि उस वेदाभ्यास को इस द्विज का सर्वोत्तम कर्त्तव्य कहा है, अन्य सब कर्त्तव्य गौण हैं। (४।१४।३८)

मनुष्य निरन्तर वेद का अभ्यास करने से आत्मिक तथा शारीरिक पवित्रता से तथा तपस्या से और प्राणियों के साथ द्रोहभावना न रखते हुये अर्थात् अहिंसा भावना रखते हुये पूर्वजन्म की अवस्था को स्मरण कर लेता है।

(४।१४८।३९)

पूर्वजन्म की अवस्था का स्मरण करते हुये फिर भी यदि वेद के अभ्यास में लगा रहता है तो निरन्तर वेद का अभ्यास करने से मोक्ष-सुख को प्राप्त कर लेता है।

(४।१४९।४०)

संसार में जितने दान हैं अर्थात् जल, अन्न, गौ, पृथिवी तिल, सुवर्ण और घृतादि इन सब दानों से वेदविद्या का दान अतिश्रेष्ठ है। (४।२३३।७४)

जैसे अग्नितेज से समीप आये काष्ठ आदि इंधन को तत्काल जला देती है वैसे ही वेद का ज्ञाता ज्ञानरूपी अग्नि से सब आने वाली पापभावना को जला देता है = पापसंस्कारों को भस्म कर देता है। (११।२४६।२६)

पालक राजा आदि विद्वान् और अन्य मनुष्यों का वेद सनातन मार्गप्रदर्शक है और वह असत्य अर्थात् जिसे कोई

पुरुष नहीं बना सकता इसप्रकार अपौरूषेय हैं तथा अनन्त सत्यविद्याओं से युक्त है ऐसा निश्चित मान्यता है।

(१२।६४।४६)

जो ग्रन्थ वेदबाह्य, कुत्सित पुरुषों के बनाये, संसार को दुःखसागर में डुबोने वाले हैं, वे सब निष्फल, असत्य, अन्धकाररूप इस लोक और परलोक में दुःखदायक हैं।

(१२।६५।४७)

जो इन वेदों से विरुद्ध ग्रन्थ उत्पन्न होते हैं वे आधुनिक होने से शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। उनका मानना निष्फल और झूठा है। (१२।९६ ४८)

यह जो सनातन वेदशास्त्र है तो सब विद्याओं के दान से सम्पूर्ण प्राणियों का धारण और सुखों को प्राप्त कराता है, इस कारण से हम लोग उसको सर्वथा उत्तम मानते हैं, और इसीप्रकार मानना भी चाहिए क्योंकि सब जीवों के लिए सब सुखों का साधन यही है। (१२।९९।५१)

वेदशास्त्र के अर्थतत्व का ज्ञाता विद्वान् किसी भी आश्रम में रहता हुआ, इसी वर्तमान जन्म से ही ब्रह्मप्राप्ति के लिए अधिकाधिक समर्थ हो जाता है। (१२।१०२।५४)

शिष्ट सब मनुष्य मात्र नहीं होते किन्तु जिन्होंने पूर्ण ब्रह्मचर्य और धर्म से सांगोपांग वेद पढ़े हों और जो श्रुति-

प्रमाण और प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों ही से विधि का निषेध करने में समर्थ, धार्मिक, परोपकारी हों वे ही शिष्ट पुरुष होते हैं। (१२।१०९।५९)

* * *

अन्य मन्त्र

सब देश तथा सब मनुष्यों से ग्रहण करें।

(१) उत्तम स्त्री
(२) रत्न
(३) विद्या
(४) सत्य
(५) पवित्रता
(६) श्रेष्ठ भाषण
(७) कारीगरी (२।२१५)

जो धर्म ही से पदार्थों का संचय करना है वही सब पवित्रताओं में उत्तम पवित्रता अर्थात् जो अन्याय से किसी पदार्थ का ग्रहण नहीं करता वही पवित्र है, किन्तु जल, मृत्तिका आदि से जो पवित्रता होती है वह धर्म के सदृश उत्तम नहीं होती। (५।१०६।१५)

जल से ऊपर के अंग पवित्र होते हैं आत्मा और मन नहीं, मन तो सत्य मानने, सत्य बोलने और सत्य करने से शुद्ध और जीवात्मा विद्या, योगाभ्यास और धर्माचरण ही से पवित्र तथा बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है, जल मृत्तिकादि से नहीं। (५।१०९।१७)

निन्दनीय होता है—

(१) पिता : कन्या को न देने वाला अर्थात् विवाह न करने वाला।

(२) पति : विवाह पश्चात् ऋतुकाल के अनन्तर संगम न करने वाला।

(३) पुत्र : पति की मृत्यु के बाद माता की रक्षा न करने वाला। (६।४।२)

उन दोनों प्रकार के चोरों में नानाप्रकार के व्यापारी जो देखते-देखते माप, तोल, या मूल्य में हेराफेरी करके ठगते हैं वे "प्रकट-चोर" हैं और जो जंगल आदि में छिपे रहकर चोरी करने वाले हैं वे "गुप्तचोर" हैं। (६।२५७।१०६)

सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग ये सब राजा के ही आचार-व्यवहार विशेष हैं अर्थात् राजा जैसा राज्य को बनाता है उस राज्य में वैसा ही युग बन जाता है। वस्तुतः राजा ही "युग" कहलाता है अर्थात राजा ही युग-निर्माता है। (६।३०१।१४७)

* * *

मनुस्मृति—

संन्यासी

संन्यासी अपमानजनक वचनों को सहन करले, कभी किसी का अपमान न करे और इस शरीर का आश्रय लेकर अर्थात् अपने शरीर-मन, वाणी कर्म से किसी से वैर न करे। (६।४७।२६)

यदि एक अकेला सब वेदों का जानने हारा द्विजों में उत्तम संन्यासी जिस धर्म की व्यवस्था करे वही श्रेष्ठ धर्म है। अज्ञानियों के सहस्रों, करोड़ों मिलके जो कुछ व्यवस्था करें, उसको कभी न मानना चाहिए। (१२।११३।६३)

* * *

वर्ण

वेद में पारंगत आचार्य विधिपूर्वक गायत्री संस्कार से इसकी जाति अर्थात् वर्ण या आत्मिक स्वरूप को बनाता है, वही जाति (शरीर जन्म की अपेक्षा) क्षीण न होने वाली

और स्थिर रहने वाली है अर्थात् शिक्षा-प्रदान करके निर्धारित किये गये वर्ण के सस्कार परजन्मों तक रहते हैं।

(२।१२३)

शूद्र ब्राह्मण और ब्राह्मण शूद्र हो जाता है अर्थात् गुण-कर्मों के अनुकूल ब्राह्मण हो तो ब्राह्मण रहता है तथा जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के गुण वाला हो तो वह क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हो जाता है। वैसे शूद्र भी मूर्ख हो तो वह शूद्र रहता और जो उत्तम गुणयुक्त हो तो यथायोग्य ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हो जाता है। वैसे ही क्षत्रिय और वैश्य के विषय में भी जान लेना। (१०।१०।६५।१३)

* * *

पति, पत्नि, पुत्र, पुत्रियाँ

पिता, माता, पति और देवर को योग्य है कि अपनी कन्या, बहन, स्त्री और भौजाई आदि स्त्रियों की सदा पूजा करे अर्थात् यथायोग्य मधुर भाषण, भोजन, वस्त्र, आभूषण आदि से प्रसन्न रक्खें। जिनको कल्याण की इच्छा हो वे स्त्रियों को क्लेश कभी न देवें। (३।५५।३१)

जिस कुल में नारियों की पूजा अर्थात् सत्कार होता है उस कुल में दिव्य भोग और उत्तम सन्तान होते हैं और जिस कुल में स्त्रियों की पूजा नहीं होती है वहां जानो उनकी सब क्रिया निष्फल हैं। (३।५६।३२)

जिन कुल और घरों में अपूजित अर्थात् सत्कार को न प्राप्त होकर स्त्रीलोग जिन गृहस्थों को शाप देती हैं वे कुल तथा गृहस्थ जैसे विष देकर बहुतों को एक बार नाश कर देवें वैसे चारों ओर से नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं।

(३।५८।३४)

मनुष्य को चाहिए कि माता, बहन अथवा पुत्री के साथ भी एकान्त आसन पर न बैठे या न रहे, क्योंकि शक्तिशाली इन्द्रियाँ विवेक व्यक्ति को भी खींचकर वश में कर लेती हैं।

(२।१९० २१५।१४३)

गृहस्थ द्विज को चाहिए कि वह ऋतुकाल होते हुए भी इन दिनों ब्रह्मचारी रहे—

अमावस्या
अष्टमी
पूर्णिमा
चतुर्दशी (४।१२८।२६)

गृहस्थ द्विज का इस संसार में पुरुष की आयु को घटाने वाला ऐसा कोई काम नहीं है जैसा कि परस्त्रीगमन करना है। (४।१३४।३१)

कोई भी स्त्री पिता, पति अथवा पुत्रों से अलग रहने की इच्छा न करे क्योंकि इनसे अलग रहने से यह आशंका रहती है कि कभी कोई ऐसा बात न हो जाये जिससे दोनों पिता तथा पति के कुलों की निन्दा या बदनामी हो जाये। अभिप्राय यह है कि स्त्री को सर्वदा आशंका बनी रहती है। (५।१९४।३४)

बुराई मिलती है—

१. भ्रूणहत्या करने वाला
२. भ्रूणहत्या करने वाले के यहां भोजन करने वाला
३. पति को जिस की व्यभिचारी स्त्री होती है
४. गुरु को बुरे शिष्य की बुराई
५. ऋत्विकगुरू को यजमान की बुराई
६. राजा का चोर को दण्ड न देने की बुराई

(८।३१७।१८८)

प्राणियों की उत्पति में कहीं बीज की प्रधानता होती है कहीं स्त्रीयोनि की प्रधानता होती है किन्तु जहाँ दोनों की प्रधानता होती है वह सन्तान प्रशंसनीय होती है।

(९।३४।१९)

चाहे मरणपर्यन्त कन्या पिता के घर में बिना विवाह के बैठी रहे परन्तु गुणहीन, असदृश दुष्ट पुरुष के साथ कन्या का विवाह कभी न करे। (९।८९।३६)

चाहे लड़का-लड़की मरणपर्यंन्त कुमार रहें परन्तु असदृश अर्थात् परस्पर विरुद्ध-गुण कर्म-स्वभावों वालों का विवाह कभी न होना चाहिए। (९।८९।३६)

जो स्त्री अपनी जाति गुण के घमण्ड से पति को छोड़ व्यभिचार करे उसको बहुत स्त्री और पुरुषों के सामने जीती हुई कुत्तों से राजा कटवाकर मरवा डाले। (८।३७१।२१२)

उसी प्रकार अपनी स्त्री को छोड़के परस्त्री या वैश्या-गमन करे उस पापी को लोहे के पलंग को अग्नि से तपा लाल कर उस पर सुलाके जीते को बहुत पुरुषों के सम्मुख भस्म कर देवे। (८।३७२।२१३)

इस परमात्मा को कोई "अग्नि", कोई प्रजापति परमात्मा को "मनु", कोई "इन्द्र", कोई "प्राण", दूसरे कोई शाश्वत "ब्रह्म" कहते हैं। (१२।१२३।७०)

* * *

इन्द्रियां

सब इन्द्रियों में यदि एक भी इन्द्रिय अपने विषय में आसक्त रहने लगती है तो उसीके कारण इस मनुष्य की बुद्धि ऐसे नष्ट होने लगती है जैसे चमड़े के बर्तन (मशक) में छिद्र होने से सारा पानी बहकर नष्ट हो जाता है। (२।७४।९९।५४)

अधर्मयुक्त आचरण करके मनुष्य जैसे-जैसे अपने पाप को लोगों से कहता है, वैसे-वैसे साँप केंचली के समान उस अधर्म से, अपराध से, मुक्त होता जाता है अर्थात् लोगों में उसके प्रति अपराधी होने की भावना समाप्त हो जाती है।

(११।२२८।१९)

वेदशास्त्र के अर्थतत्व का ज्ञाता विद्वान् किसी भी आश्रम में रहता हुआ, इसी वर्तमान जन्म से ही ब्रह्मप्राप्ति के लिए अधिकाधिक समर्थ हो जाता है। (१२।१०२।५४)

* * *

हिंसा

(१) गृहस्थियों के ये ५ हिंसा के स्थान हैं जिनको प्रयोग में लाते हुए गृहस्थी व्यक्ति हिंसा के पाप से बंध जाता है—

चुल्हा
चक्की
झाड़ू
ओखली
पानी का घड़ा

(२) शरीर से जितना दुर्गन्ध पैदा होके वायु और जल को बिगाड़ कर रोगोत्पत्ति का निमित्त होने से प्राणियों को दु.ख प्राप्त करता है उतना ही पाप उस मनुष्य को होता है।

(३) इन पापों और हिंसा दोषों की निवृत्ति या परि-शोधन के लिये गृहस्था लोगों के प्रतिदिन करने के लिए महर्षियों ने ५ महायज्ञों का विधान किया है––

ब्रह्मयज्ञ : संध्योपासन करना

पितृयज्ञ : माता-पिता की सेवा, भोजन आदि

देवयज्ञ : प्रातः सायं हवन करना

बलिवैश्वदेवयज्ञ : कीटों कुत्तों आदि को भोजन देना

अतिथियज्ञ : अतिथियों का सत्कार, भोजन आदि

(३।६८।४०, ३।७०।४२)

प्राणियों की हिंसा किए बिना कभी मांस प्राप्त नहीं होता। जीवों की हत्या करना सुखदायक नहीं है। इस कारण मांस नहीं खाना चाहिए। (५।४८।१०)

मारने की आज्ञा देने वाला, मांस को काटने वाला, पशु को मारने वाला, पशुओं को मारने लिए मोल लेने और बेचने वाला, पकाने वाला, परोसने वाला, और खाने वाला ये सब हत्यारे और पापी हैं। (५।५१।१२)

❀❀❀